समकालीन हिंदी ग़ज़ल जीवनदर्शन और शिल्प (1975 से अब तक)

Samkaleen Hindi Gazal Jivandarshan Aur Shilp ¼1975 se aab tak½

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पीएच.डी (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबंध

(कला–संकाय)

शोधार्थी

अवधेश कुमार

शोध पर्यवेक्षक
डॉ.प्रभा शर्मा

विभागाध्यक्ष (हिंदी विभाग)

हिंदी विभाग
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय
कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
कोटा (राज.)
2019

CERTIFICATE

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled **“समकालीन हिंदी ग़ज़ल जीवनदर्शन और शिल्प” (1975 से अब तक)** (^^**Samkaleen Hindi Gazal Jivandarshan Aur Shilp** ¼**1975 se aab tak**½ by Avadhesh Kumar under my guidance.

He has completed the following requirements as per Ph.D. regulations of the university.

(A) Course Work as per the university rules.

(B) Residential requirements of the university (200 days)

(C) Regularly submitted annual progress report.

(D) Presented his work in the department committee.

(E) Published / Accepted minimum of two research paper in a referred research journal,

I recommend the submission of thesis.

Date:

Dr. Parbha Sharma

Head Dept. of HINDI

Govt. Arts Girls College,

Kota (Raj)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD Thesis Titled **"समकालीन हिंदी ग़ज़ल जीवनदर्शन और शिल्प" (1975 से अब तक)** (**^^Samkaleen Hindi Gazal Jivandarshan Aur Shilp** ¼1975 se aab tak½** by Avadhesh Kumar has be examined by us with following anti-plagiarism tools. We undertake the follows.

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment or processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented in the research record.

e. The thesis has been checked using https://www.turnitin.com and any other genuine tools/software's found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time of time.

(Name & signature of Research Scholar)

Place:

Date:

(Name & signature and seal of Research Supervioer)

Place:

Date:

Candidate's Declaration

I, hereby, certify that the work, which is being presented in the thesis, entitled **"समकालीन हिंदी ग़ज़ल जीवनदर्शन और शिल्प" (1975 से अब तक)** ("Samkaleen Hindi Gazal Jivandarshan Aur Shilp" (1975 se aab tak) in fulfillment of the requirement for the award of the degree of Doctor of Philosophy, carried under the supervision of Professor/ Dr. Parbha sharma and submitted to the (Department of HINDI Govt. P.G. Girls Arts College, Kota) University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and where others ideas of words have been included. I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any Institutions. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

Avadhesh Kumar

Date:

This is to certify that the above statement made by Avadhesh Kumar Registration No. RS/1426/16 is correct to the best of my knowledge.

Date:

Dr. Parbha Sharma

SUPERVISOR

ikDdFku

गजल उर्दू काव्य की प्रमुख विधा है। उर्दू में गजल पर परंपरा फारसी से आई। फारसी में रौदकी नामक कवि हुए हैं, जिनकी रचनाओं में गजल शैली के दर्शन हुए। यद्यपि गजल को फारसी में अपना स्वतंत्र अस्तित्व मिला, किंतु उसका मूल उत्स अरबी काव्य में मिलता है। अरबी कविगण प्रायः अपने राजाओं की प्रशंसा में कसीदे लिखा करते थे, जिनका प्रारंभिक अंश प्रेम एवं श्रृंगार के भावों से ओतप्रोत रहता था। कसीदे के इसी अंश को फारसी कवियों ने गजल के रूप में स्वीकृत किया। फारसी गजल की परंपरा जब उर्दू में आई तो भारत के विभिन्न साहित्यिक पर इसका विकास एवं परिष्कार हुआ। मुसलमान बादशाहों के दरबारों में विलासिता की सामग्री के रूप में सुंदर–सुंदरी का सदैव बोलबाला रहा। संगीत की महफिलों में सुंदरियां अपने सकोमल एवं सुमधुर कंठ से गजलें गाती रहीं। कालांतर में मौलाना ने परंपरागत प्रेमपरक गजलों के कथ्य एवं शिल्प में परिवर्तन की अपील करते हुए गजल को दरबारी संस्कृति और सभ्यता से निकालकर जन–जीवन के आंगन में उतारने की प्रेरणा दी।

उर्दू–फारसी गजल के समानांतर हिंदी में भी वह परंपरा तेरहवीं शताब्दी से ही स्फुट रूप में विकसित होती आ रही है। अमीर खुसरों की अनेक गजलों में निहित हिंदी रंग ने हिंदी गजल की संभावनाओं को गहरा रंग प्रदान किया। पूर्व भारतेंदु युग से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों के रचना–संसार में यत्र–तंत्र गजल शैली के दर्शन होते हैं। दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर हिंदी गजल को कथ्य के व्यापक आयाम प्रदान किए। उन्होंने हिंदी गजल को सामाजिक जन–चेतना से संबद्ध करके जो लोकप्रियता अर्जित की, उससे प्रभावित होकर हिंदी गजलकारों का एक लंबा काफिला इस क्षेत्र में अवतरिक हुआ। पत्र–पत्रिकाओं के अतिरिक्त मंचों पर भी हिंदी गजल की धूम मचने लगी। हिंदी गजल की लोकप्रियता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हिंदी में गजल की यह समृद्ध एवं संपन्न परंपरा उसके स्वर्णिम भविष्य की द्योतक है।

आज हिंदी में बिखरी हुई गजल की इस संपदा को एकत्र कर इसके अध्ययन, मनन

एवं मूल्यांकन की महती आवश्यकता है। इससे न केवल हिंदी में गजल की परंपरा को नवीन आयाम ही मिलेंगे, अपितु स्थायी विधा के रूप में उसे हिंदी साहित्य में स्थान भी प्राप्त होगा।

आश्चर्य का विषय है कि हिंदी में दोहा, कवित्त, सवैया एवं बरवै साहित्य पर तो अनेक शोध–कार्य हो चुके हैं, किंतु हिंदी गजल पर किसी अध्येता की दृष्टि नहीं गई है। कतिपय गजल संकलनों की भूमिकाओं, पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों एवं परिचर्चाओं के अतिरिक्त हिंदी गजल पर कोई प्रामणिक समालोचनात्मक साहित्य उपलब्ध नहीं है। इस दिशा में चानन गोविंदपुरी कृत 'गजलः एक अध्ययन' नामक पुस्तक अत्यंत उपयोगी एवं सार्थक है किंतु उसमें हिंदी गजल से संबद्ध सामग्री का प्रायः अभाव ही है।

इस अभाव की पूर्ति के उद्देश्य से हिंदी गजल के स्वरूप–विकास एवं शिल्पविधान के संबंध में उपलब्ध सामग्री के आधार पर एक विस्तृत समालोचनात्मक एवं प्रामणिक अध्ययन प्रस्तुत करने की ललक मेरे मानस में विगत एक दशक से रही है। प्रस्तुत शोध प्रबंध 'हिंदी गजलः उद्‌भव और विकास' उसी लगन का प्रतिफल है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस प्रबंध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में प्रस्तावना के रूप में हिंदी गजल और जीवन दर्शन की अवधारणा के सैद्धांतिक पक्ष तथा प्रबंध के उद्‌देश्य की विवेचना की गई है।

गजल के अर्थ एवं व्युत्पत्ति–विषयक तथ्यों के आधार पर अनेक विद्वानों ने अपनी–अपनी दृष्टि से गजल को परिभाषित किया है। उर्दू–फारसी काव्य में गजल का व्यापक क्षेत्र है। सौंदर्य एवं प्रेम–विषयक भावों की अभिव्यक्ति के लिए उर्दू–फारसी की गजल से बढ़कर दूसरा माध्यम नहीं है। गजल नपे–तुले शब्दों में ह्रदय की तीव्रानुभूति को पाठकों अथवा श्रोताओं तक संप्रेषित करने में सहायक है। कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से परंपरागत गजल अंग्रेजी के सॉनेट और मैड्रिगाल छंदों के समीप है। कुछ लोगों ने गजल का हिंदीकरण 'गीतिका' अथवा 'अनुगीत' के रूप में किया है, किंतु इनमें पर्याप्त साम्य एवं वैषम्य है।

उर्दू–फारसी में गजल की लोकप्रियता से प्रभावित होकर हिंदी कवियों ने भी गजल को अभिव्यक्ति के माध्यम से रूप में अपनाया और आज उसकी परंपरा इतनी समृद्ध है कि

वह हिंदी साहित्य में विधा के रूप में प्रतिष्ठित होती जा रही है। उर्दू–फारसी गजल के स्वरूप, विकास एवं शिल्प पर तो कई समालोचनात्मक ग्रंथों में सामग्री उपलब्ध है, किंतु उर्दू–फारसी गजल की पृष्ठभूमि पर आधारित हिंदी गजल के उद्भव और विकास की समीक्षात्मक विवेचना प्रस्तुत करनेवाले ग्रंथ का सर्वथा अभाव है। अतः उर्दू–फारसी गजल से आधुनिक हिंदी गजल तक की अविच्छिन्न परंपरा का मौलिक एवं प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करना ही इस प्रबंध का मूल मंतव्य है।

प्रबंध के द्वितीय अध्याय में समकालीन हिंदी गजल के वर्तमान प्रमुख हस्ताक्षर गजलकार का जीवन चरित्र और उनके स्वरूप, शिल्प एवं संक्षिप्त इतिहास का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रायः सभी गजलकार हिंदी प्रसंगों को अपनी गजलों के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे थे। अतः परंपरागत प्रेमपरक गजलों के कथ्य में एकरसता एवं संकीर्णता–सी आ गई थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में मौलाना हाली ने गजल के कथ्य को यर्थाथवादी सामाजिक चेतना से जोड़ने तथा शिल्प को सरल बनाने के लिए आह्वान किया। फारसी गजलों की भाषा समास–गुंफित एवं शब्द–विन्यास जटिल है, जबकि उर्दू गजलों में उर्दू–फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है। कालांतर में मौलाना हाली के प्रयत्नों के फलस्वरूप परवर्ती उर्दू कवियों ने अपनी गजलों में सरल उर्दू अथवा दैनिक बोलचाल की हिंदुस्तानी भाषा का प्रयोग किया। उर्दू–फारसी गजल का शिल्प–विधान फारसी व्याकरणशास्त्र में वर्णित बहों या लयखंड़ों पर आधारित है। उर्दू–फारसी में हिंदी की भांति मात्रिक छंदों के स्थान पर अलग–अलग वजन के चार–पांच शब्द प्रचलित हैं, जिनको अदल–बदल कर रखने से नई बहें बन जाती हैं। खलील–बिन अहमद बसरी ने उर्दू–फारसी कविता के लिए पंद्रह बहें निर्धारित कीं। कालांतर में इन बहों या लयखंड़ों की संख्या 19 हो गई। उदू–फारसी गजल के लिए तो यह बहों या लयखंड प्राण ही हैं। गजल के अन्य अंगों में काफिया, रदीफ, शेर, मतला, मकता, मिसरा आदि प्रमुख हैं। इन अंगों तथा बहों का ज्ञान होना उर्दू–फारसी गजलकार के लिए अत्यंत आवश्यक है।

दसवीं शताब्दी में ईरान में रौदकी नामक कवि हुआ, जिसने सर्वप्रथम फारसी में गजल विधा को जन्म दिया। रौदकी की गजलें प्रिय–प्रदत्त विरहजन्य भावनाओं से ओत–प्रोत हैं। फारसी में रौदकी से लेकर सादी शीराजी तक गजल की विशाल परंपरा मिलती है। सादी,

अमीर खुसरों और हाफिज शीराजी की गजलें फारसी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उर्दू गजल साहित्य का इतिहास अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत एवं संपन्न है। प्राचीन काल में दक्षिणी केंद्र के शायरों से लेकर खाने आरजू और उनके समकालीन कवियों ने इस विधा को समृद्ध बनाया। मध्यकाल में सौदा और मीर से लेकर दाग और अमीर मीनाई के समय तक के कवियों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। अमीर मीनाई के काल से 1960 ई. की गजलकारों ने आधुनिक काल के अंतर्गत अपने कृतित्व से उर्दू साहित्य के भंडार को भरा। 1960 ई. के बाद की उर्दू गजल को साठोत्तरी उर्दू एवं हिंदुस्तानी गजल भी कह सकते हैं। लोकप्रियता के नए आयामों से युक्त विगत ढाई दशकों का समय उर्दू गजल साहित्य का अत्याधुनिक काल कहा जाएगा। इस काल की गजलों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता कथ्य की व्यापकता एवं भाषा की सरलता है।

उर्दू–फारसी की अन्य काव्य–शैलियों यथा नज्म, रुबाई, कतआ, कसीदा, मरसिया, मस्नवी आदि से गजल की तुलना करने पर कथ्य एवं शिल्प के विचार से अनेकानेक मौलिक अंतर दृष्टिगोचर होते हैं।

तृतीय अध्याय में समकालीन हिंदी गजल में जीवनदर्शन और प्रमुख प्रवृत्तियों का उद्‌भव और विकास के संबंध में प्रकाश डाला गया। गजल उर्दू–फारसी का काव्य–रूप होते हुए भी हिंदी में क्यों अपनाई जाने लगी, यह एक विचारणीय प्रश्न है। वास्तव में उर्दू में गजल को जो प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता मिली, उससे हिंदी कवि प्रभावित हुए बिना न रह सके। इसके अतिरिक्त हिंदी में विभिन्न प्रकार की कविताओं के दौर आते रहे। हिंदी में द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक कविता की प्रतिक्रियास्वरूप छायावादी कविता का प्रादुर्भाव हुआ। इसके साथ–साथ गीत एवं प्रगीत काव्य का भी विकास हुआ। तत्पश्चात वायवीय कल्पनाओं एवं रोमानी भावधाराओं से ऊबकर प्रगतिवादी कवियों ने सर्वहारा वर्ग की समस्याओं एवं पूंजीवादी सभ्यता के विरोध को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया। प्रगतिवादी के पश्चात् प्रयोगवादी कवियों ने अपनी कविता में शब्दों को काट–छांट तथा तराशकर नए प्रतीकों, बिंबों एवं उपमाओं को स्थान दिया। नई कविता भी प्रायः इसी ध रातल की देन है। हिंदी में प्रचलित इन विभिन्न काव्यधाराओं की प्रतिक्रिया एवं सामयिक परिवर्तन से प्रभावित होकर अगले कदम के रूप में गजल की महत्ता को स्वीकारते हुए

अपनाया गया। गजल में थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कह जाने की क्षमता भी विद्यमान है। अतः गजल में संक्षिप्तता एवं अनुभूति की तीव्रता के कारण रचनाकारों को अपने अंतस के भावों को जनमानस तक संप्रेषित करने में यह विधा काफी उपयोगी प्रतीत हुई। हिंदी गजल का भाव, भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से उर्दू गजल का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

यद्यपि व्यापक स्तर पर हिंदी गजल का विकास सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और दुष्यंत के समय से ही हुआ, किंतु स्फुट रूप में गजल के तत्त्व हिंदी पद्य साहित्य के इतिहास में पूर्व भारतेंदु युग से ही मिलते रहे हैं। महात्मा कबीर ने आम आदमी की बोलचाल की भाषा में कतिपय गजलें लिखी हैं। इसी दृष्टि से एम.ए. गनी महोदय ने कबीर को हिंदी गजल का जनक माना है, किंतु कबीर ने यह परंपरा बीज रूप में अपने पूर्ववर्ती कवि अमीर खुसरों से प्राप्त की। अमीर खुसरो यद्यपि फारसी कवि हैं, किंतु हिंदी के विकास में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अपनी कतिपय गजलों के शेरों में एक पंक्ति फारसी भाषा तथा दूसरी पंक्ति तत्कालीन हिंदी भाषा में लिखकर उन्होंने हिंदी कवियों को हिंदी में गजल की संभावनाओं से अवगत कराया। उपलब्ध जीवन–साक्ष्यों के आधार पर अमीर खुसरों का समय कबीर से पूर्व 1253ई. से 1325ई. तक पाया जाता है। अतः अमीर खुसरो को ही हिंदी गजल की संभावनाओं को रंग देने तथा कवियों को हिंदी गजल के लिए भावभूमि व भाषा–रूप प्रदान करने का श्रेय प्राप्त है।

चतुर्थ अध्याय में समकालीन हिंदी गजलों का वर्गीकरण किया गया है जिसमें प्राचीन और मध्यकालीन गजलों को आधार बनाकर समकालीन हिंदी गजलों, उर्दू गजलों और पाश्चात्यकालीन गजलों के स्वरूप एवं विकास संबंधी सामग्री प्रस्तुत की गई है। वस्तुतः हिंदी गजल हृदय की मार्मित अनुभूतियों की संक्षिप्त, सारगर्भित एवं सशक्त काव्याभिव्यक्ति है, जिसकी अपनी निजी भाषा, निजी चिंतन प्रक्रिया एवं निजी उपमाएं हैं। अनेक विद्वानों एवं हिंदी गजलकारों ने अपनी मान्यताओं के अनुरूप हिंदी गजल को परिभाषित करते हुए इसके स्वरूप को रेखांकित किया है। हिंदी गजल के कथ्य को आधुनिक संदर्भों तथा सामाजिक जन–चेतना से जोड़ दिए जाने की परिणामस्वरूप उनका वर्ण्य विषय अत्यंत व्यापक हो गया। वर्ण्य विषय की दृष्टि से हिंदी गजल के निम्न रूप किए जा सकते हैं–1. प्रेमपरक हिंदी गजल, 2. हास्य व्यंग्यपरक हिंदी गजल, 3. चिंतन–प्रधान हिंदी गजल, 4.

हिंदी बाल गजल।

पांचवे अध्याय में समकालीन हिंदी गजल के शिल्प पर विशेष ध्यान दिया गया और शोध में संस्कृत हिन्दी छंद, उर्दू–फारसी की बहरें, गजल में प्रयुक्त परिभाषिक शब्दावली, गजल में गुणदोष, रस अंलकार इत्यादि को विशेष संदर्भ में प्रेषित किया गया है।

हिंदी गजल के शिल्प–विधान तथा उर्दू–फारसी गजल से सामय एवं वैषम्य–विषयक चर्चा की गई है। वास्तव में साहित्य की प्रत्येक विधा का अपना अलग शिल्प–विधान होता है। यद्यपि शिल्प–विधान की दृष्टि से हिंदी गजलकारों ने नए–नए आयाम तलाश किए हैं, फिर भी किसी रूप में उन्हें उर्दू–फारसी व्याकरण का सहारा लेना ही पड़ा है। हिंदी गजल के शिल्प विधान में भाषा, छंद, अलंकार एवं रस–परिपाक का विशेष महत्त्व है।

जिससे पाठक अथवा श्रोता को केवल श्रृंगारिक भावधारा में ही अवगाहन नहीं कराती, अपितु उसे नवीन जीवन दर्शन प्रदान करके संघर्ष से जूझने की प्रेरणा भी देती है। हिंदी गजल की विकास–यात्रा पूर्व भारतेंदु युग से आंरभ होकर अद्यावधि अनवरत रूप से जारी है। इस यात्रा में प्रमुख पड़ाव के रूप में दुष्यंत कुमार का नाम भी उभरकर आता है। अतः हिंदी साहित्य के इतिहास में निर्धारित काल–विभाजन ही यहां पर उपयुक्त होगा। पूर्व भारतेंदु युग में अमीर खुसरों, संत कबीर, प्यारेलाल शोकी, गिरिधर दास आदि ने अपने काव्य में हिंदी गजल के बीज बोए। भारतेंदुयुगीन कवियों में भारतेंदु हरिशचंद्र, पं. प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन एवं उनके कतिपय अनुयायियों पर हिंदी गजल का गहरा रंग है। द्विवेदी युग के कवियों में श्रीधर पाठक, हरिऔध, नाथूराम शंकर शर्मा के अतिरिक्त लाला भगवानदीन, पं. नारायण प्रसाद बेताब तथा स्नेही–मंडल के कवियों में हितैषीजी ने भी हिंदी गजल की परंपरा को समृद्ध बनाया। शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की कुछ गजलें भी भोगे हुए यथार्थ को रूपायित करने में समर्थ सिद्ध हुईं। छायावादी हिंदी गजलकारों में निराला, प्रसाद एवं माखनलाल चतुर्वेदी के नाम उल्लेख्य हैं। छायावादोत्तर काल में रामेश्वर शुक्ल अंचल, रामस्वरूप सिंदूर आदि गजल की परंपरा को

समृद्ध बनाया।

प्रयोगवादी कवियों में शमशेरबहादुर सिंह पर हिंदी गजल का गहरा प्रभाव है। यद्यपि उनकी देवनागरी लिपि में प्रकाशित गजलें उर्दू गजल के अधिक समीप हैं, किंतु काव्य एवं शिल्प की दृष्टि से इन गजलों का अपना अलग महत्त्व है। इनके अतिरिक्त गिरिजाकुमार माथुर, त्रिलोचन शास्त्री आदि ने भी हिंदी गजल को प्रयोगवादी आयाम प्रदान किए। अत्याधुनिक युग की गजलों को साठोत्तरी हिंदी गजल की संज्ञा देना उचित ही है। विगत ढाई दशकों में हिंदी गजल की परंपरा का बहुमुखी विकास हुआ है। दुष्यंत ने इस युग में आगे बढ़कर सर्वहारा वर्ग द्वारा भोगे जा रहे यथार्थ, थोथी व्यवस्था के प्रति विद्रोही एवं ंहासोन्मुख सामाजिक व नैतिक मूल्यों की नींव पर हिंदी गजल की सुदृढ़ भित्ति निर्मित की। इस समय के अन्य हिंदी गजलकारों में निरंकारदेव सेवक, चंद्रसेन विराट, कुंअर बेचैन, भवानी शंकर, जहीर कुरैशी समेत शताधिक कवियों के नाम उल्लेख हैं। पंचम अध्याय में हिंदी गजल साहित्य की उपलब्धियों का आकलन किया गया है। आलोचना के निकष पर डॉ.बशीर बद्र, अमीर हनफी, बेकल उत्साही, हरिकृष्ण प्रेमी, शमशेरबहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार, सूर्यभानु, चंद्रसेन विराट, शेरजंग गर्ग, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप राही, रूद्र काशिकेय तथा इतर साहित्यकारों के गजल साहित्य की अध्ययन–मूल्यांकन करने पर कथ्य के व्यापक आयाम, समग्र रूप में हिंदी गजल साहित्य का अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि हिंदी गजल जन–चेतना से संबद्ध एक सफल विधा है, जिसके माध यम से राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य समसामयिक संदर्भों, बदलते हुए जीवन–मूल्यों, आधुनिक महानगरीय सभ्यता के दुष्परिणामों तथा सर्वहारा वर्ग के जीवन से गृहित क्षणों की यथार्थ प्रस्तुति हो सकी है। उर्दू में गजल एक व्यक्तिपरक और रोमानी विध ाा रही है, किंतु हिंदी में आधुनिक भावबोध और सामाजिक संचेतना की संवाहिका के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। हिंदी गजल में बोलचाल की भाषा और लोकजीवन से संबद्ध मुहावरों को ग्रहण किया जाना चाहिए। निस्संदेह हिंदी गजल की परंपराएं एवं उपलब्धियां अक्षुण्य हैं।

षष्ठ अध्याय में समकालीन गजल और जीवन दर्शन की विभिन्न चुनौतियों को आधार बनाकर इस अध्याय की रचना की गई जिसमें समकालीन गजल और मंचीय सभ्यता को विशेष रूप से संकेत किया गया है। विभिन्न चुनौतियों के आधार जैसे राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, भाषिक संरचना की दृष्टि से हिंदी में गजलों के तीन स्वरूप उपलब्ध होते हैं। प्रथम प्रकार की वे हिंदी गजलें हैं, जिनमें फारसी व्याकरण–शास्त्र पर आधारित समास–गुफिंत उर्दू–फारसी शब्दावली का खुलकर प्रयोग हुआ है। भारतेंदु हरिशचंद्र के अतिरिक्त शमशेरबहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार आदि अनेकानेक कवियों की गजलें प्रायः इसी कोटि में आती हैं। द्वितीय प्रकार की हिंदी गजलों में संस्कृतनिष्ठ तत्सम हिंदी भाषा के दर्शन होते हैं। निराला, प्रसाद, बेचैन, चंद्रसेन विराट, भवानीशंकर आदि कवियों ने अपनी अधिकांश गजलों की रचना विशुद्ध हिंदी में संस्कृतनिष्ठ तत्सम की पृष्ठभूमि पर की है। निश्चय ही हिंदी के इन गजलकारों ने उर्दू–फारसी भाषा एवं व्याकरण से बचते हुए हिंदी गजल को हिंदी परिधान में आवृत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। तृतीय प्रकार की हिंदी गजलों में दैनिक बोलचाल की हिंदुस्तानी भाषा का प्रयोग मिलता है। निरंकारदेव सेवक, जहीर कुरैशी, बलबीर सिंह रंग, रामावतार चेतन आदि की हिंदी गजलें आम आदमी की भाषा का आश्रय लेकर जन–मानस में लोकप्रिय हो सकीं।

सप्तम अध्याय में समकालीन हिन्दी और उर्दू–फारसी गजलों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जिसमें हिंदी की भांति वर्णिक एवं मात्रिक छंदों के स्थान पर फारसी छंदशास्त्र में निर्धारित बहों या लयखंडों का प्रयोग करना अनिवार्य है। हिंदी गजल चूंकि उर्दू–फारसी से आई है, अतः हिंदी गजलकारों ने इन बहों अथवा लयखंडों को अपनाने पर विशेष बल दिया है। नए प्रयोगों की दृष्टि से हिंदी गजल को दोहा, मंदाक्रांता आदि छंदों में भी लिखने के प्रयास जारी हैं। इसके अतिरिक्त हमारे हिंदी गजलकार नई–नई बहों की खोज भी कर रहे हैं। गजल के शिल्प–सौष्ठव के आकलन में अलंकारों को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता है, फिर भी कथ्य को प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से हिंदी गजलों में भारतीय परिवेश एवं पौराणिक संदर्भों से गृहित प्रतिकों, बिंबों एवं अछूती उपमाओं का

प्रयोग किया गया है। इन प्रयोगों के कारण प्रायः उपमा एवं रूपक अलंकार का निर्वाह हिंदी गजल साहित्य में सफलता से हुआ है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास एवं अर्थालंकार के अन्य विभेदों के उदाहरण भी हिंदी गजल साहित्य में मिलते हैं। हिंदी गजल में रसानुभूति कराने की क्षमता भी विद्यमान है। हिंदी गजलों में प्रेम, सौंदर्य, सुकुमारता, माधुर्य एवं संगीतात्मकता के साथ–साथ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के स्वर मुखरित होने के कारण श्रृंगार रस के साथ–साथ अन्य रसों का परिपाक भी हुआ है। हिंदी गजल की लोकप्रियता से प्रभावित नवादित कवियों की भीड़ द्वारा अध्ययन के अभाव में लिखी जा रही गजलों में प्राय यतिभंग, शब्दांतरण, जटिलता, अश्लीलत्व, नीरस लय–संयोजन, सर्वनाम–दोष, तुकांत दोष आदि काव्य–दोष आ जाते हैं, जिनसे गजल रचनाधर्मियों को सावधान रहना चाहिए।

भाव भाषा छंद आदि की दृष्टि से हिंदी गजल और उर्दू–फारसी गजल के शिल्प–विध ाान में पर्याप्त साम्य एवं वैषम्य दृष्टिगोचर होता है। उर्दू–फारसी गजल अपनी कोमलता, माधुर्य एवं संगीतात्म्मकता से लोगों के दिलों में उतरने की सामर्थ्य रखती है, जबकि हिंदी गजल सामाजिक जन–चेतना से जुड़कर जनमानस से भावतादात्म्य स्थापित करने में सक्षम है।

उपसंहार के रूप में समकालीन हिंदी गजल की संभावनाओं एवं उसके भविष्य पर चर्चा करते हुए उनके उन्नयन एवं विकास में हिंदी पत्र–पत्रिकाओं के योगदान का आकलन किया गया है। उर्दू–फारसी गजल के समानांतर विकसित होती हुई हिंदी गजल की परंपरा का जो स्वरूप आज हमारे सम्मुख विद्यमान है, उसे देखकर लगता है कि हिंदी गजल आज पाटली हथेलियों पर चित्रित मेहंदी की दंतकथा नहीं, अपितु भाषा के भोजपत्र पर अंकित विप्लव का बीजमंत्र है। अंधेरी सुरंग में जलती हुई मशाल जैसा अस्तित्व रखनेवाला हिंदी गजल का स्वरूप विलासिता के रंग में रंगी दरबारी सभ्यता एवं संस्कृति से पूर्णतया विच्छिन्न है, जो दीर्घकाल तक नायिका के शरीर का भूगोल बांचती रही और पीड़ितों की कराहों से नहीं, आशिकों की आहों से संबद्ध रही।

वास्तव में समकालीन हिंदी गजल ज्वालामुखी की आंख से विस्सृत अश्रुओं का अनुवाद ही नहीं, महान नगरीय सभ्यता के बंद द्वार पर परिचय की दस्तक भी है। हिंदी गजल घने अंधकार में प्रकाश की प्रथम किरण ही नहीं, निद्रा–निमीलित नेत्रों का सुकुमार सपना भी हैं हिंदी गजल मरूभूमि के तृषित अधरों पर उतरती हुई शीतल तरंग की उमंग ही नहीं, अपितु गुलाब की पंखुड़ी पर अवस्थित सुगंध का मौन स्पर्श भी है। पूर्व भारतेंदु युग से चली आ रही हिंदी गजल की परंपरा को अत्याधुनिक युग में दुष्यंत कुमार ने सामाजिक चेतना से संबद्ध करके विकास–यात्रा को नई दिशा दी है।

यही कारण है कि हिंदी गजल रनिवासी वीथिकाओं से निकलकर तपती हुई सड़क पर नंगे पांव चल रहे आदमी के साथ–साथ चल रही है। हिंदी गजल के उन्नयन एवं विकास में विभिन्न स्तरीय, मध्यम एवं लघु पत्र–पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। दुष्यंत कुमार के समकालीन और परवर्ती कवियों का लंबा काफिला हिंदी गजल की रथयात्रा में समर्पित एवं संकल्पित भाव से सम्मिलित है। निस्संदेह कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से हिंदी गजल का स्वरूप एवं भविष्य उज्ज्वल है और शनैःशनैः वह हिंदी साहित्य में एक स्थायी विधा के रूप में प्रतिष्ठित होती जा रही है।

शोध प्रबंध के परिशिष्ट–1 में हिंदी चलचित्रों में प्रयुक्त गजलों का साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। निस्संदेह गजल गायन की एक सदाबहार शैली है। अपने समय में वह दरबारों और महफिलों में अत्यंत लोकप्रिय हुई। आज भी संगीत संबंधी आयोजनों में गजल की महत्ता स्वीकार की जाती है। इससे प्रभावित होकर व्यावसायिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु हिंदी चलचित्रों में अच्छी गजलें दी जाने लगी हैं, जिनका साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से अपना पृथक महत्त्व है।

vkHkkj&in'ku

प्रस्तुत पीएच.डी. शोध प्रबंध की सामग्री अत्यंत अल्प होने के कारण यह शोध प्रबंध अत्यंत श्रम साध्य कार्य हो गया था, इस शोधप्रबंध की परिपूर्णता में अनेक ईश्वरतुल्य महानुभावों का योगदान रहा है ,जिनका ऋण मैं इस जन्म में तो शायद नहीं उतार पाउँगा उन सब महानुभावों का ईश्वरीय प्रसाद और कृपा का सिर्फ़ आभार ही व्यक्त कर सकने में सक्षम हूँ।

इस शोध–प्रबंध यज्ञ की पूर्णाहुति में मैं सबसे पहले प्रातः स्मरणीय मेरी शोध निर्देशिका डॉ. प्रभा शर्मा मैम (विभागाध्यक्ष,हिंदी विभाग ,राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा) अत्यंत आभारी हूँ जिन्होंने विषय चयन से ले कर शोध–प्रबंध यज्ञ की पूर्णाहुति तक पूर्ण मनोयोग, स्नेहिल भाव से निर्देशन, आशीर्वाद, प्रोत्साहन प्रदान किया, मैं ये तो नहीं जनता कि ईश्वर माँ और पुत्र का सम्बन्ध कैसे बनाता है, पर आपके निश्छल सहयोग और मार्गदर्शन ने माँ के रूप में ईश्वर के होने का सुबूत दे दिया है ,मैं सपरिवार आपका अजन्म ऋणी रहूँगा।

मैं इस शोध प्रबंध लेखन में उन राष्ट्रिय,अंतरराष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं और संस्थाओं का विशेष आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने समय समय पर मेरे द्वारा लिखे शोध प्रबंध के अंशो को अपने पत्र–पत्रिकाओं में स्थान देकर देश–विदेश तक मेरे कृत्य को पहुँचाया है जिनमे प्रमुख है, मालती अंतरराष्ट्रीय पत्रिका, जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका, हस्ताक्षर अंतरराष्ट्रीय पत्रिका, हिंदी खबर –दक्षिण अफ्रीका, प्रयास अंतरराष्ट्रीय पत्रिका, अंजुमन ,छमाही (इलहाबाद), दिल्ली विश्वविद्यालय, कोटा विश्वविद्यालय, राष्ट्र किंकर, राजस्थान साहित्य अकादमी, साहित्यांचल, कत और मुक्तक, जवाहर लाल नेहरु पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज ,कोटा, राजस्थान पुस्तक पर्व, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय ,जोधपुर , डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान सा.न.अधि.मंत्रालय दिल्ली, स्वामी विवेकानन्द शोध पीठ ,कोटा विश्वविधालय, जश्ने–ऐ–ग़ज़ल अंजुमन प्रकाशन, पि.जी.डी.ऐ.वी.,कॉलेज,दिल्ली विश्वविद्यालय।

इस शोध की यात्रा में मैं भाई श्री मनीष टेलर का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने

मुझे कोटा विश्वविध्यालय में पीएच.डी करने के लिए प्रेरित किया ,जब मेरा साक्षात्कार पूर्ण हो गया तब कोटा शहर में एक महीने का कोर्स–वर्क पूर्ण करना था ,तब सबसे बड़ी समस्या कोटा शहर में एक महीने रहने और खाने की आयी,उस वक्त देवदूत बन कर श्री दिनेश जी कुमावत और श्रीमती अरूणा जी कुमावत ने एक दिव्य पुरूष श्रीमान आर.जे. कुमावत साहब से मेरा परिचय कराया जिनके घर में रह कर और उन्ही के यहाँ भोजन करके मैं मेरा एक महीने का कोर्स–वर्क पूर्ण कर सका आपके परिवार का स्नेह सम्बल और निःस्वार्थ प्रेम का ऋण मैं कैसे उतार सकूंगा यह बड़ी दुविधा है,आभार आपके लिए बहुत ही छोटा शब्द है शायद।

कहा जाता है की इस चराचर जगत में खून के रिश्ते से भी बड़ा सर्वश्रेष्ठ यदि कोई रिश्ता है तो वह है मित्रता का रिश्ता ,कोर्स वर्क के दौरान एक महीना कोटा शहर में रहना था अंजान शहर में अपनों के नाम पर कोई नहीं था ,सोच रहा था एक महिना कैसे कटेगा? उस समय मेरे भाग्य में मित्रता का बासंती बयार लेकर आये श्रीमती मधु जी मीणा,सुश्री अनुकृति जी तम्बोली,श्रीमती कृष्णा जी 'कमसिन'और भाई श्री शिव कुमार सोनी तथा कोर्स वर्क के समस्त शोधार्थीयों का भी बहुत बहुत आभार ज्ञापित करता हूँ ,मधु जी मीणा का एहसान तो शायद मुझसे इस जन्म में उतर ही नहीं पायेगा ,सच्ची मित्रता की जीती जागती परिभाषा हैं आप ,आभार आपका इस शोध को पूर्णता तक पहुचने के लिए।

कोटा विश्वविद्यालय के तात्कालिक कुलपति प्रो.पी.के.दसोरा साहब का बहुत बहुत आभार आपके कुशल संचालन और निर्देशन में यह असाध्य कार्य समय पर परिपूर्ण हो सका।

मेरे अराध्य गुरुदेव डॉ.भैरूं लाल गर्ग और प्रो.शम्भुनाथ नाथ तिवारी (अलीगढ मुस्लिम विश्वविध्यालय ,उत्तर–प्रदेश) का ह्रदय से आभार व्यक्त करता हूँ ,आपके सद प्रेरणा से ही मुझ जैसा अयोग्य ,गरीब,अकिंचन भी अब सम्मान का जीवन जी सकने में सक्षम हो पायेगा।

प्रथम पाठशाला परिवार, ईश्वर रुपी मेरे पिताजी–माताजी श्री हरिश्चंद्र जी जौहरी और श्रीमती कीर्तन देवी जौहरी ने जितने दुःख देखे मुझे यहाँ तक लाने के लिए मैं समझता

हूँ यदि ईश्वर साक्षात पृथ्वी पर होता तो शायद मेरे लिए इतना कुछ वो भी नहीं कर सकता था,बहुत बड़ा भाग्यशाली हूँ की मुझे आप जैसे माँ–बाप मिले बहुत–बहुत आभार आपका।

यहाँ मैं मेरे अर्द्धांगिनी श्रीमती मन्नो रानी वर्मा का एहसान जग जाहिर करना चाहता हूँ ,छोटे से फेक्ट्री में एक मामूली से मज़दूर को फेक्ट्री से निकाल कर प्रोफ़ेसर बना देने की जादुई क्षमता रखने वाली देवी रूपेण पत्नी ,को जीवन में पा कर मैं मेरे भाग्य पर फूला नहीं समाता हूँ आपने इतनी कुशलता से मेरे इस शोध प्रबंध को पूरा कराय की मुझे एहसास ही नही हुआ की मेरे शोध प्रबंध को पाँच वर्ष बीत गए , अतः मैं आपका भी आभारी हूँ मेरे प्यारे बेटे निलय जौहरी और ओम जौहरी जब भी मैं उदास निराशा और एकाकी होता था तब तुम्हारा मासूम चेहरा और शरारत भरी बाते याद करके मैं सब भूल के शोध में लग जाता था अतः तुम्हारा भी बहुत बहुत–बहुत आभार।

इस शोध प्रबंध लेखन में अनेक विद्वान् विदुषी महानुभावों का सहयोग मिला ऐसे विज्ञ लेखकों में शुमार जिला साहित्कार परिषद् भीलवाड़ा और भीलवाड़ा साहित्यजगत से श्रीमान गुलाब जी मीरचंदानी साहब, श्रीमान दयाराम मेठानी ,श्रीमान राजेन्द्रगोपाल जी व्यास,श्रीमान श्यामसुन्दर 'सुमन', श्रीमती रेखा लोढ़ा 'स्मिथ', श्रीमती सुधा तिवारी'सखी' श्रीमान योगेन्द्र जी शर्मा, श्रीमान नरेन्द्र जी दाधीच, श्रीमान अरूण 'अजीब', श्री ओम जी तिवाड़ी , मामा जी श्रीमान राधेश्याम जी शर्मा, श्रीमान जयप्रकाश भाटिया 'सागर' ,डॉ.एस. के. लोहानी 'खालिस', श्री रामनिवास 'रोनी' मेरे गुरुदेव श्रीमान डॉ.पयोद जोशी का अत्यंत आभारी हूँ आप सभी का स्नेह और सम्बल मुझे निरंतर मिलता रहता है।

कोटा के बड़े शायर चाँद शेरी साहब, पुरूषोत्तम 'यकीन' साहब, श्रीमान विज्ञानं व्रत साहब, "गज़ल के बहाने" पुस्तक के यशस्वी सम्पादक श्रीमान दरवेश "भारती" साहब, श्रीमती डॉ. प्रभा दीक्षित मैंम, ज़ाहिर कुरैशी साहब, कमल किशोर "श्रमिक" साहब 'ग़ज़ल दुष्यंत के बाद' पुस्तक के यशस्वी रचयिता श्रीमान दीक्षित दनकौरी साहब, समकालीन ग़ज़ल के इन्टरनेट पर चलने वाले श्री के. पी. अनमोल साहब, श्रीमान नीरज गोस्वामी साहब, यूं ट्यूब के माध्यम से श्रीमान कुमार विश्वास साहब,ज़नाब राहत इन्दौरी साहब का

बहुत बहुत आभार व्यक्त करना चाहता हूँ ,आप सब ने इस शोध प्रबंध के लिए न केवल मुझे सम्बल प्रदान किया,अपने अमूल्य समय से समय निकाल कर न केवल मार्गदर्शन प्रदान किया अपितु आपने अपने प्रकाशित पुस्तकों का सेट भेज कर भी मेरे इस श्रमसाध्य कार्य को सरल बनाने में सहयोग प्रदान किया है आपका अनन्त आभार।

इस शोध प्रबंध लेखन में सामग्री उपलब्ध कराने वाले तमाम महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों, पुस्तकालय प्रभारियों और कर्मचारियों का धन्यवाद और आभार ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मुझे इस असाध्य कार्य को करने में मेरा सहयोग प्रदान किया।

साथ ही स्पष्ट, कुशल,और स्नेह पूरित बड़े भाई श्रीमान वेदांत जी प्रभाकर का धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ, जिन्होंने कम्प्यूटर द्वारा सम्पादित टंकण से मेरे इस शोध प्रबंध को बिना किसी अशुद्धि के समय पर पूरा कर दिया आपके सम्पूर्ण "बालवाटिका" परिवार का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ।

यह शोध प्रबंध दस वर्षों के अत्यंत गहन चिंतन और मनन का परिणाम है। अल्प विषय वास्तु और दुर्लभ सामग्री होने के उपरांत भी "समकालीन हिंदी ग़ज़ल जीवन दर्शन और शिल्प" (१९७५ के बाद) विषय के प्रति न्याय करने में मैं कितना सफल हो पाया हूँ, इसके निर्णय का पूर्ण अधिकार विज्ञ और मनीषी विद्वानों को है। मैं तो सिर्फ़ विषय की गंभीरता तथा अछूते विषय पर मौलिक कार्य को करने मात्र से ही आत्मविभोरित महसूस कर रहा हूँ। अन्जाने में हुयी त्रुटियों के लिए ह्रदय के अनन्त तल से क्षमा प्रार्थी भी हूँ।

अंत में मैं यह शोध प्रबंध मेरी अर्द्धांगिनी श्रीमती मन्नो रानी वर्मा को समर्पित करता हूँ क्योंकि आपने अपने अस्तित्व को,अपने सपनों को भूलकर मेरे सपनो को उड़ान भरने के लिए यथार्थ का धरातल और हौसले का आसमान प्रदान किया है।

सबका कुछ न कुछ उधार है। बस इसलिए सबका आभार है।।

(अवधेश कुमार जौहरी)

ledkyhu fgnh xty thoun'ku vkj f'kYi ¼1975 ls vc rd½

vuØef.kdk

v/;k; dk uke	'kh"kZd	i"B Øekad
अध्याय पहला	हिंदी गजल का सैद्धांतिक पक्ष (1975 से अब तक)	1 – 48
अध्याय दूसरा	समकालीन गजल के प्रमुख हस्ताक्षर (1975 से अब तक)	49 – 76
अध्याय तीसरा	समकालीन गजल में जीवन दर्शन और प्रमुख प्रवर्तियाँ	77 – 89
अध्याय चौथा	समकालीन गजलों का वर्गीकरण	90 – 111
अध्याय पांचवां	'समकालीन हिंदी गजल शिल्प	112 – 159
अध्याय छठा	समकालीन गजल और जीवन दर्शन की चुनौतियां (1975 से अब तक)	160 – 177
अध्याय सातवां	हिंदी और उर्दू गजल का तुलनात्मक अध्ययन	178 – 202
परिशिष्ट	1. संदर्भग्रंथ –सूची	226 – 229
	2. गजलकार मुकेश परवाना का साक्षात्कार	I - XI

fo"k; lwph

ledkyhu fgUnh xty thoun'ku vkSj f'kYi

¼1975 ls vc rd ½

igyk v/;k; &

हिंदी गजल का सैद्धांतिक पक्ष (1975 से अब तक)

(क) हिंदी गजल का अर्थ और स्वरूप ,परिभाषा.

(ख) हिंदी गजल का इतिहास ,विकास यात्रा .

(ग) हिंदी गजल की उपयोगिता .

nwljk v/;k; &

समकालीन गजल के प्रमुख हस्ताक्षर . (1975 से अब तक)

rhljk v/;k;

समकालीन गजल में जीवन दर्शन और प्रमुख प्रवर्तियाँ .

(क) प्रेम विषयकव्यात्मक अभिव्यक्ति.

(ख) आम आदमी का सजीव चित्रण.

(ग) रूढ़ीवादिता और दकियानूसी विचारों का विरोध .

(घ) भ्रष्ट व्यवस्थाओं के विरुद्ध मोर्चा .

(ङ) विवशता में भी प्रेम की छटा .

pkSFkk v/;k;

समकालीन गजलों का वर्गीकरण .

(क) प्राचीन और मध्यकालीन गजलों का आधार.

(ख) समकालीन गजल का आधार .

(ग) हिंदी गजलों का आधार.

(घ) उर्दू की गजलों का आधार .

(ङ) पश्चात्य गजलों का आधार .

ikpok v/;k;

'समकालीन हिंदी गजल शिल्प .

(क) संस्कृत हिंदी छंद और उर्दू की बहरे.

(ख) गजल में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली.

(ग) समकालीन हिंदी गजल की विशेषता .

(घ) गजल में प्रयुक्त गुण दोष ,रस ,अलंकार.

(ड.)गजल का मूल छंद विधान (बहरे)

NBk v/;k;

समकालीन गजल और जीवन दर्शन की चुनौतियां . (1975 से अब तक)

(क) चुनौतियों के आधार

(ख) सामजिक चुनौती .

(ग) राजनितिक परिवेश .

(घ) भाषिक और धार्मिक चुनौती ,

(ङ) समकालीन गजल और मंचीय सभ्यता.

lkrok v/;k;

हिंदी और उर्दू गजल का तुलनात्मक अध्ययन .

mi lgkj

(क) समकालीन गजल में जीवन और शिल्प के प्रश्न .

(ख) आधुनिक पत्र–पत्रिकाओं और मंचो पर गजल विश्लेषण .

(ग) समकालीन गजल की भविष्यगत सम्भावना.

(घ) निष्कर्ष.

igyk v/;k;

ledkyhu fgUnh xty dk l)kfrd i{k ¼1975 ls vc rd ½

(क) हिंदी गजल का अर्थ और स्वरूप ,परिभाषा.

(ख) हिंदी गजल का इतिहास ,विकास यात्रा .

(ग) हिंदी गजलकी उपयोगिता .

igyk v/;k;

iLrkouk&dk0; e xty

समकालीन हिंदी गजलों को जिन अनेकानेक गजलकारों ने उंचाईयां प्रदान किया है, उसे नए तेवर दिए है और भारतीय जन मानस में प्रतिष्ठित किया है, उन गजलकारो की एक लम्बी श्रृंखला हमारे सामने उपस्थित है, नये गजलकार या समकालीन गजलकार हिंदी गजल को नये तेवर एनई तड़प, नयी चिंतनएएक प्रश्नाकूलता से लबरेज करते हए निरंतर दिखाई देते है पिछले 40 वर्षों में (1975–2019) हिंदी गजल और गजलकारो में हिंदी गजल के प्रति जो अनुराग उत्पन्न हुआ है वह वर्णनातीत है, आज की हिंदी गजल का सम्बन्ध आज के भयानक और निर्लज्ज यथार्थ से है, अमूर्त और वायवीव कल्पनाओं से नहीं मसलन भूमंडलीकरण के विभिन्न रूपों, प्रभावों और दुष्प्रभावों से उपजे विमर्श को अपने शब्द देते हुए आज के गजलकार जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यों का समर्थन कर रहे है आज के गजलकार समानधर्मा है इसलिए इनकी गजलों में भाषा और चेतना के नए आयाम प्रस्तुत हो रहे है, उन्हें आज समझने की आवश्यकता है।

हिंदी में सवैया, घनाक्षरी, कुंडलिया, सोरठा, बरवै आदि अनेक छंदों के होते हुए भी थोड़े में बहुत कह जाने अथवा 'अरथ अमित अरू आखर थोरे' की पंक्ति को चरितार्थ करने के लिए कवियों ने दोहा छंद का प्रयोग किया है। इसी प्रकार उर्दू–फारसी एवं अरबी की विधाओं में गजल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गजल की लोकप्रियता इतनी अधिक बढ़ी कि उसे हिंदी, संस्कृत, बंगला, पंजाबी, कश्मीरी, पश्तो, गुजराती एवं अन्य भाषाओं में भी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जाने लगा और आज उसका इन सभी भाषाओं में भव्य स्वागत हो रहा है।

वाणी की अभिव्यक्ति के माध्यम गद्य या पद्य होते हैं। जिस प्रकार गद्य पर अंकुश लगाने के लिए व्याकरण आवश्यक है, उसी प्रकार पद्य पर अंकुश के लिए पिंगल–शास्त्र की आवश्यकता होती है। हिंदी में प्रारंभ में सवैया, घनाक्षरी, कुंडलिया, सोरठा, दोहा, बरवै

आदि छंदों के माध्यम से काव्य का विकास हुआ। आधुनिक काल के द्विवेदी युग में संस्कृत के अनेक छंदों के माध्यम से काव्य का विकास हुआ। आधुनिक काल के द्विवेदी युग में संस्कृत के अनेक छंदों–इंद्रवज्रा, उपंद्रवज्रा, भुजंगप्रयात, आदि को भी हिंदी में अपनाया गया और अद्यतन काल में अन्य अनेक छंद शैलियों तथा गीतिका, अनुगीत, नवगीत, प्रगीत, गजल आदि को भी अपनाने का सफल प्रयास किया जा रहा है।

1- fgUnh xty dk vFkZ

अब प्रश्न यह उठता है कि गजल का आरंभ कहां से हुआ, उसका शब्दिक अर्थ क्या है? उर्दू–फारसी एवं अरबी साहित्य के सिंहावलोकन से अनेक कथ्य हमारे समक्ष प्रकट होते हैं।

¼d½ fgUnh xty dh O;qRifÙk

गजल की व्युत्पत्ति के संदर्भ में कुछ के मतानुसार अरब में गजल नामक एक कवि था, जिसने अपनी सारी आयु प्रेम एवं मस्ती में ही बिता दी। उसकी कविताओं का वर्ण्य विषय सदैव प्रेम ही हुआ करता था। अतः कालांतर में इस गजल नामक कवि के नाम पर इस प्रकार की प्रेमपरक कविताओं को गजल की संज्ञा दी गई।

कुछ विद्वान गजल का संबंध अरबी के ही अन्य शब्द 'गजाल' से मानते हैं, जिसका अर्थ है– मृग। अंतः यह हो सकता है कि हिरन जैसे नेत्रोंवाली सुंदरियों के संबंध में लिखी गई छंदोमय प्रेम कविताएं ही गजल की संज्ञा से अभिहित की जाने लगी हों, परंतु गजल का व्युत्पत्ति विषयक संबंध गजल या मृग से जोड़ना समीचीन नहीं प्रतीत होता, क्योंकि भारत में मृग के नेत्र सुंदरता की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ अवश्य ही दिखाई देते हैं, जबकि अरब या ईरान में नरगिसी नेत्र को महत्त्व दिया जाता है अतः यह तथ्य शांतिपूर्ण प्रतीत होता है।

इस प्रकार गजल के शाब्दिक अर्थ एवं व्युत्पत्ति के संबंध में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गजल शब्द अरबी भाषा का ही है, जो प्रेमी और प्रेमिका के वार्तालाप के अर्थ

में प्रयोग किया जाता रहा है।

धीरे–धीरे गजल प्रेम की संकीर्ण परिधि से बाहर निकलकर प्रेम के व्यापक रूप में प्रयोग की जाने लगी। दरबारी संस्कृति एवं सभ्यता के प्रभाव में आकर गजल, जो वासनात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम बन चुकी थी, परवर्ती कवियों ने उसे व्यापक आयाम प्रदान किया और गजल के अंतर्गत प्रेमिका की कंघी, चोटी, अंगिया, कुर्ती के वर्णन के स्थान पर पवित्र प्रेम यथा पारिवारिक प्रेम, ईश्वर प्रेम, देश–प्रेम आदि भावनाओं की अभिव्यंजना होने लगी। इस प्रकार गजल अपने संकुचित शब्दिक अर्थ से हटकर व्यापक स्वरूप में कवियों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी।

कुछ भी हो गजल अरब एवं ईरान जैसे विदेशी पर्यावरण में पलकर भी अपने में इतनी मधुरता, इतनी मादकता, इतनी ध्वन्यात्मकता एवं इतनी प्रभावोत्पादकता संजो सकी कि वह भारत के बहुभाषी कवियों का कंठहार बन गई।

¼[k½ fgUnh xty dh ifjHkk"kk ,oa {k= dh O;kidrk

जैसा हम पहले कह चुके हैं कि गजल एक प्राचीन, किंतु लोकप्रिय विधा रही है। गजल की व्युत्पत्ति विषयक धारणा को लेकर प्रायः गजल मर्मज्ञों में थोड़ा बहुत मतांतर रहा है, किंतु वे सभी इस बात से सहमत हैं कि गजल प्रेमाभिव्यक्ति का सशक्त एवं प्रभावोत्पादक माध्यम है। अनेक विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से गजल को परिभाषित किया है।

गजल अरबी भाषा का (स्त्रीलिंग) शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है प्रेमी तथा प्रेमसी का वार्तालाप। प्रेमी तथा प्रेयसी के मध्य अनेक प्रेम दशाएं जैसे अनुनय, विनय, मिलन, वियोग, जलन, पीड़ा उपालंभ आदि आती हैं। अतः अपने आरंभिक रूप में गजल के माध्यम से इन्हीं प्रेम भावनाओं का अभिव्यक्तिकरण किया जाता है।

रूद्र काशिकेय के शब्दों में वस्तुतः कोश के अनुसार गजल का शाब्दिक अर्थ बार–बार बातचीत करना है।

हिंदी साहित्य कोश, भाग 1 (पारिभाषिक शब्दावली) में भी गजल का अर्थ नारियों से प्रेम की बात करना ही मिलता है।

उर्दू साहित्य के सुप्रसिद्ध समालोचक एवं गजल के पुनरूत्थान के पक्षधर मौलाना अल्ताफ हुसैन अली के मतानुसार जहां तक गजल की मूल प्रकृति का संबंध है, उसका विषय प्रेम के अतिरिक्त कुछ और नहीं। उन्होंने एक अन्य स्थान पर गजल की व्याख्या करते हुए लिखते है, गजल में जैसा कि विदित है, किसी विषय का क्रमबद्ध वर्णन नहीं होता, अपितु अलग–अलग विचार, अलग–अलग पद्यों में व्यक्त किए जाते हैं। अपने वर्तमान रूप में गजल का प्रचलन पहले ईरान में और कोई डेढ़ सौ वर्ष से भारत में हुआ। यद्यपि मूलतः गजल की रचना जैसी कि गजल शब्द से प्रकट है, केवल प्रेम संबंधी विषयों की अभिव्यक्ति के लिए हुई थी, किंतु बहुत दिनों के बाद उसका यह रूप सुरक्षित न रह सका।

उक्त परिभाषा के अनुसार हमें यह ज्ञात होता है कि अपने आरंभिक काल में गजल का संबंध प्रेम भावनाओं के चित्रण से था। गजल के अलग–अलग पदों में प्रेम की अलग–अलग दशाओं के चित्र मिलते थे, किंतु दरबारी संस्कृति के पश्चात कालांतर में प्रेम भावनाओं के अतिरिक्त परिवेशजन्य समस्याओं का चित्रण भी गजल के अंतर्गत किया जाने लगा। हाली ने गजल के संबंध में अपनी पुस्तक 'मुकद्दमा–ए–शेरो–शायरी' में अनेक सुझाव भी प्रस्तुत किए हैं, जिनसे गजल के वर्ण्य विषय में परिवर्तन हुआ और वह राजनीतिक, सामाजिक एवं व्यंग्यात्मक स्वरों को भी अपने प्राचीन छंद–बंध में बांध सकने में समर्थ हुई।

उर्दू साहित्य के ही एक दूसरे आलोचक एवं कवि श्री फिराक गोरखपुरी ने गजल के विषय में लिखा है– गजल असंबद्ध कविता है। गजल का मिजाज मूलतः समर्पणवादी होता है।

वास्तव में गजल का प्रत्येक शेर अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखना है। किसी एक गजल

में एक ही केंद्रीय भाव की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न शेरों के अंतर्गत अनेक शब्दचित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। वास्तव में यदि देखा जाए तो शेर छंदः शास्त्र के नियमों में आबद्ध एक ही भाव के अनेक शब्दचित्र हैं। जब हम एक ही तथ्य को अनेक दृष्टांतों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं तो उसकी प्रभावोत्पादकता में अभिवृद्धि होती है। ठीक यही स्थिति गजल की है। गजल का प्रत्येक शेर असंबद्ध होते हुए भी केंद्रीय भाव को प्रदर्शित करने में अपना योगदान देता है। फिराक साहब की उक्त परिभाषा के अनुसार गजल का स्वभाव मूलतः समर्पणवादी होता है। वास्तव में गजल का प्रारंभिक स्वरूप प्रेमालाप से ओतप्रोत था। प्रेम का समर्पण से अत्यंत ही निकट का संबंध है। कोई लेन–देन अथवा व्यापार की भावना नहीं है। प्रायः यह देखा गया है कि हम जिससे प्रेम करते हैं, उसके प्रति हमारे हृदय में बिना किसी लालसा के समर्पण की भावना निहित रहती है। इसलिए गजलकार जब लेखनी चलाता है तो निश्चय ही उसकी रचना में प्रिय के प्रति समर्पण की भावना का प्रतिबिंब मिलता है।

गजल के विषय में प्रोफेसर ख्वाजा अहमद फारूकी का कथन है कि गजल के माने उस कराह के भी हैं, जो गिजाल (हिरन) तीर चुभने के बाद बेकसी के आलम में निकालता है। इसलिए गजल में दुनिया की नापायदारी और दर्दमंदी का अक्सर जिक्र किया गया है। हकीकत यह है कि गजल का दामन विशाल है और उसमें हर विषय पर शेर कहे गए हैं। गजल की खास खूबी उसकी संक्षिप्तता है।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने अपने ग्रंथ 'उर्दू जबान संक्षिप्त इतिहास' में गजल का अर्थ जवानी का हाल बयान करना अथवा माशूक की संगति और इश्क का जिक्र करना बताते हुए लिखा है कि एक गजल में प्रेम के भिन्न–भिन्न भावों के शेर लाने का नियम रखा गया है। किसी शेर में आशिक अपनी मनोवेदना प्रकट करता है, जिससे माशूक पर उसका कुछ प्रभाव पड़े। किसी शेर में वह माशूक की प्रशंसा करता है, जिससे वह प्रसन्न हो। किसी शेर में वह माशूक की वफा और जफा का जिक्र करता है और किसी में रकीब की शिकायत करता है। मतलब यह कि जिन बातों के कहने से माशूक के प्रसन्न होने या और कोई खास

नतीजा मिलने की आशा होती है, वहीं बातें गजल में आती हैं।

हिंदी के सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ. नागेंद्र ने भी इसी संबंध में कहा है—गजल उर्दू का सर्वाधिक सुप्रसिद्ध और सरस भेद है। उसका स्थायी भाव प्रेम है, जिसमें रहस्यानुभूति, मस्ती, रिन्दी, धार्मिक विद्रोह आदि भावनाएं संचारी रूप में ओतप्रोत रहती हैं। विषय के अनुरूप उसका एक विशिष्ट काव्यरूप भी है, जो मतला, मकता, गिरह, काफिया और रदीफ में परिबद्ध रहता है।

गजल साहित्य के अनुभवी अध्येता श्री चानन गोविंदपुरी के शब्दों में गजल उर्दू कविता का सर्वश्रेष्ठ अनूठा और सशक्त काव्य रूप है। इसका जन्म फारसी भाषा में हुआ, फिर उर्दू वालों ने इसको अपनाया और इसने हमारे देश में आकर अपने रचनात्मक स्वरूप के शिखर बिंदुओं को छुआ।

गजल के विषय में सुप्रसिद्ध गजलकार श्री रुद्र काशिकेय का मत है कि गजल कभी अपने शाब्दिक अर्थ में सीमित नहीं रही। इसकी व्यापकता की परिधि सदैव भिन्न–भिन्न प्रकार के भावों और विचारों से भरी–पूरी रही है। गजल के कवियों ने ईश्वरीय प्रेम के साथ ही सांसरिक प्रेम की भी अभिव्यंजनाएं की हैं।

डॉ. नरेंद्र वशिष्ठ का मत है कि गजल का मूल क्षेत्र नारी विषयक भावों से संबंधित हैं। दरअसल गजलगोई का अधिकतर संबंध विरहजन्य व्यथा से रहा है। अतः इसमें हृदय को छू लेने की क्षमता को बहुत ऊंचा गुण माना गया है।

उर्दू और हिंदी के तुलनात्मक अध्ययनकर्ता डॉ. नरेश ने अपने शोध प्रबंध में लिखा है कि गजल में प्रेम भावनाओं का चित्रण होता है। गजल की असली कसौटी भावोत्पादकता मानी जाती है।

इस प्रकार अनेक विद्वानों द्वारा गजल की परिभाषाएं दी गई हैं, उनसे उसके किसी न किसी पक्ष का उद्घाटन होता है। कोई गजल को प्रेमाभिव्यक्ति का माध्यम मानता है तो कोई इसे गेयात्मक विधा बताता है। कोई गजल में प्रभावोत्पादकता के दर्शन करता है

तो किसी को गजल गागर में सागर भरने वाली तरूणी के समान प्रतीत होती है। डॉ. फिराक गोरखपुरी ने एक स्थान पर इसे दर्दभरी तथा दिल की गहराई से निकली हुई आवाज कहा है।

दरबारी संस्कृति में पली गजल के अपनी परंपरागत परिधि को तोड़कर व्यापकता की ओर अग्रसर हो के संबंध में मुंशी जगत मोहन खां ने उसके महत्त्व को इस प्रकार काव्य रूप में परिभाषित किया है–

अल्ला अल्लाह रे ये वसअते दामाने गजल,

बुलबुलों गुल ही पे मौकूफ न है शाने गजल,

खत्म लेता है दो आलम पे नेपायाने गजल,

पूछे कोई हाफिजे शीराज से इमकाने गजल,

जब्त है आइनये राजे हकीकत इसमें।

ये वो कूचा है कि दरिया की वसअत इसमें।

अब प्रश्न उठता है कि क्या इसमें से कोई ऐसी परिभाषा है, जो गजल के विभिन्न गुणों की शाश्वत व्याख्या कर सके। उत्तर नकारात्मक ही मिलता है। तब हमें समन्वयता दृष्टिकोण से ऐसी परिभाषा खोजनी होगी, जो गजल की वैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत कर सके। गजल पर प्रस्तुत उपयुक्त अनेकानेक परिभाषाओं एवं टिप्पणियों के समग्र अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गजल वह गेयात्मक काव्य विधा है, जिसमें प्रेम की विभिन्न दशाओं के शब्द चित्र शेरों के माध्यम से प्रस्तुत कर प्रेम की क्रीड़ा–ब्रीड़ा एवं कोमल अनुभूतियों के स्वर हों अथवा सामाजिक, राजनीतिक एवं हास्य व्यंग्यात्मक भावभूमि पर आम आदमी के मानस में दबी पीड़ा व छटपटाहट की वाणी दी गई हो और जो विषयवस्तु की दृष्टि से व्यापक होते हुए भी संक्षिप्तता एवं प्रभावोत्पादकता के गुणों से युक्त हो।

¼2½ fgUnh xty dh izd`fr ,oa mldk Lo:i

गजल की प्रकृति एवं उसके स्वरूप को समझने के लिए गजल की भावगत एवं शिल्पगत विशेषताओं के विशद अध्ययन की आवश्यकता है। गजल न केवल प्रेमाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, अपितु वह तीव्रानुभूति की संप्रेषणीयता में सहायक भी है। शिल्प की दृष्टि से वह न केवल अंग्रेजी साहित्य में प्रयुक्त मैड्रिगाल एवं सानेट छंदों के समीप है, अपितु हिंदी गीतिका से भी उसका निकट का संबंध है। यहां हम विविध बिंदुओं के अंतर्गत गजल की प्रकृति एवं उसके स्वरूप की विवेचना करेंगे।

¼d½ fgUnh xty izekfHkO;fDr dk ek/;e

प्रेम की अभिव्यक्ति जितना अच्छा गजल हो सकती है, उतना कोई अन्य विधा नहीं। इसलिए प्रेम का स्वरूप समझना आवश्यक है।

प्रेम एक अत्यंत ही व्यापक शब्द है, जिसका प्रयोग श्रीमद्भावत व नारद भक्तिसूत्र आदि में मिलता है। अनेक कोशकारों एवं मनीषियों ने प्रेम को सूक्ष्म एवं उदात्त भवानाओं का वाहक बताया।

स्वामी रामतीर्थ के अनुसार 'सच्चा प्रेम सूर्य की तरह आत्मा के प्रकाश को फैलाता है। प्रेम का अर्थ है वास्तविक सौंदर्य का दर्शन...यह है कि जिसने कभी प्रेम नहीं किया, उसे ईश्वर की प्राप्ति हो ही नहीं सकती।'

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ वह सात्विक रूप प्राप्त करता है, जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं।'

पंडित सद्गुरूशरण अवस्थी के शब्दों में 'प्रेम ऐहिक सान्निध्य की पार्थिव आकांक्षा है। अन्य प्रवृत्तियों की भांति वह भी नितांत भौतिक है।'

इस प्रकार प्रेम मन की एक कोमल एवं पवित्र भावना है, जिसकी अनुभूति से ही आत्मा का उन्मीलन होता है और आनंद की प्राप्ति होती है। प्रेम ही जीवन का प्राण है। प्रेम के

अभाव से संसार की समस्त छटाएं सूनी एवं अस्तित्वहीन प्रतीत होती हैं। जिस प्रकार जल के अभाव में हरी–भरी वसुंधरा मरुभूमि बन जाती है, वैसे ही प्रेम से शून्य हृदय प्रस्तर से भी कोठर हो जाता है। उसमें स्निग्धता अथवा माधुर्य का एक भी उत्स नहीं फूट सकता। प्रेम एक मधुर ऊष्मा के समान है, जो हृदय को ऊष्ण एवं आप्लावित रखती है और अवर्णनीय तृप्ति प्रदान करती है। प्रेम के अंतर्गत लेन–देन की भावना नहीं होती है। प्रेम का मंदिर तो त्याग की नींव पर ही खड़ा हो सकता है। यह स्थान केवल नायक का नायिका के प्रति ही नहीं भक्त का भगवान के प्रति, माता या पुत्र के प्रति, देश–प्रेमी का मातृभूमि के प्रति, मित्र का मित्र के प्रति भी हो सकता है। इस प्रकार प्रेम के अनेक स्वरूप हमारे समक्ष दृष्टिगोचर होते हैं।

काव्य जगत में रसानुभूति के लए कवियों एवं आचार्यों ने नायक–नायिका के मध्य उत्पन्न होनेवाले प्रेम को ही मूल रूप से कवि का वर्ण्य विषय बनाया है। यों तो मनुष्य अनेक वस्तुओं से प्रेम रख सकता है, किंतु प्रेम की यह भावना जितनी स्पष्ट, जितनी पूर्ण और जितनी प्रभावशालिनी परस्पर प्रेमाकृष्ट नायक–नायिका के प्रेम संबंध में प्रकट होती है, उतनी अन्यत्र नहीं। जीवन में अनुभूत काम भावनायुक्त यही प्रेम काव्य की मूलभूत प्रेरणा का अविरल निर्झर बन सकता है। प्रेम भावना का चित्रण ही श्रृंगार का मूलाधार है। इसलिए श्रृंगार को रसराज कहा गया है। श्रृंगार के अंतर्गत संयोग और वियोग दो पक्ष आते हैं। दोनों का ही अपना–अपना महत्त्व नायक–नायिका के परस्पर नेत्रों का सम्मेलन, वाग्विलास, छेड़छाड़ एवं अन्य कामोद्दीपन से युक्त क्रियाएं संयोग श्रृंगार की परिधि में आती हैं तथा प्रेम पात्र से वियुक्त हो जाने पर उसके लिए रोना, आंसू बहाना तथा तिल–मिल कर जीवन को समाप्त कर देना या फिर कयामत तक प्रिय की प्रतीक्षा करना आदि दशाएं वियोग श्रृंगार को स्वर प्रदान करती हैं।

इस प्रकार व्यावहारिक जीवन में संयोग ही आनंद की पूर्णानुभूति कराता है, किंतु काव्य में वियोग श्रृंगार का महत्त्व अधिक माना गया है। वियोग में प्रेमियों को जिन स्थितियों का सामना करना पड़ता है, वे उनके हृदय को स्निग्ध एवं मधुर बनाकर अधिक व्यापक एवं

उदात्त बनाती हैं। इसलिए वे ही काव्य अधिक मार्मिक सिद्ध हुए हैं, जिनमें प्रभावशाली वियोग वर्णन की प्रमुखता है।

हिंदी साहित्य के अतिरिक्त उर्दू–फारसी काव्य में भी प्रेम को वर्ण्य विषय का आवश्यक तत्त्व माना गया है। गजलों के लिए तो प्रेम का महत्त्व और भी अधिक है, क्योंकि गजलों के माध्यम से आशिक और माशूक का वार्तालाप एवं प्रेम भावनाओं का अभिव्यक्तिकरण आंरभिक काल से ही होता रहा है। कवियों और शायरों ने हुश्न, इश्क, मोहब्बत, तनहाई एवं जुदाई की स्थितियों पर आधारित गजलगोई के जो नमूने प्रस्तुत किए हैं, वे प्रशंसनीय हैं। मौलाना हाली के पूर्व गजलों में आपको प्रेम की नाना दशाओं की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त कुछ न मिलेगा। वास्तव में गजल की विधा प्रेमाभिव्यक्ति के लिए ही थी। मिर्जा गालिब अपनी एक गजल में फरमाते हैं।

'लो हम मरीजे–इश्क के तीमारदार हैं,

अच्छा अगर न हो तो मसीहा का क्या इलाज है?'

उर्दू गजल के बादशाह जिगर मुरादाबादी की गजलें प्रेमाभिव्यक्ति में कितनी सफल हुई हैं, यह उनकी एक गजल के माध्यम से देखिए–

'यादे–जाना भी अजब रूह फजा आती है।

सांस लेता हूं तो जन्नत की हवा आती है।

मर्गे नाकामे–मोहब्बत मिरी तक्सीर मुआफ,

जीस्त बन–बन के मिरे हक में कजा आती है।

नहीं मालूम वो खुद हैं कि मोहब्बत उनकी

पास ही से कोई बेताब सदा आती है।

मैं तो इस सादगी–ए–हुश्न पे उसके सदके

न जफा आती है जिसको न वफा आती है।

हाय क्या चीज है ये तक्मिका–ए–हुश्नो–शबाब

अपनी सूरत से भी अब उनको हया आती है'

उपरोक्त गजल में प्रेमाभिव्यक्ति की सामर्थ्य को खोजते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इसके प्रत्येक शेर का एक–एक शब्द प्रेम की अतीव पुलकन एवं मस्ती से संपूरित है। कवि के लिए प्रेमिका की स्मृति इतनी प्राणवर्द्धक है कि उसे सांस द्वारा ली गई वायु भी जन्नत की हवा के समान प्रतीत होती है। असफल प्रेम की मृत्यु भी कवि के लिए नवजीवन का संदेश देती है। कवि के अंतर से उठनेवाली कोई मूक एवं व्याकुल आवाज उसे प्रेमिका और उसके प्रेम का बोध करा जाती है। कवि प्रेयसी के उस अबोध सौंदर्य की सरलता पर अपने को न्यौछावर करता है, जो जफा और वफा दोनों की भाव–दशाओं से अनभिज्ञ है। कवि प्रेयसी की सुंदरता और यौवन की प्रशंसा करते हुए कहता है कि वह अपने सौदंर्य एवं यौवनागम पर स्वयं ही लजा उठती है। इस प्रकार जिगर के संपूर्ण वाड्मय का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उनकी प्रत्येक गजल प्रेम के एक नवीन पक्ष का उद्घाटन करती है।

उर्दू साहित्य के रोमांसवादी शायर जनाब जोश मलिहाबादी, जिनकी क्रांति की उद्भावना भी शत–प्रतिशत रोमांसयुक्त है, कि गजलें भी प्रेम–भावनाओं की अभिव्यक्ति में सहायक हैं। प्रिय के द्वारा प्रदत्त पीड़ा के वे मूक आघात, जिन्हें कवि ने अपने ह्रदय पर सहा है, ठंडी हवा चलने पर स्मृति के रूप में कसक उठते हैं। कवि के शब्दों में–

'दिल की चोटों ने कभी चैन से रहने न दिया

जब चली सर्द हवा, मैंने तुझे याद किया।

सौंदर्य और यौवन लोगों के ह्रदय में प्रेम–पादप को अंकुरित कर ही देता है। न जाने कितने लोग अपने प्रेम–पात्र को सुंदरता और जीवन को देख–देखकर हाथ मलते रहते हैं

और उनके हृदय प्रेम की मधुर पीड़ा से घायल हो जाते हैं। कवि के शब्दों में–

'बला से कोई हाथ मलता रहे।

तिरा हुस्न सांचे में ढलता रहे।

हर इक दिन चमके मोहब्बत का दाग।

वे सिक्का जमाने में चलता रहे।'

अपने साहित्य के द्वारा पाठक की हृदयगत भावनाओं से तादात्म्य स्थापित करने और अपने अश्रुओं से जन–जन के नेत्रों को आप्लावित करनेवाले मुगल सल्तनत के अंतिम बादशाह बहादुरशाह जफर की साधारण भावभूमि पर कही गई गजलों में भी प्रेमाभिव्यक्ति के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। अपनी प्रेयसी का चुंबन लेकर भी प्रिय अपना अपराध नहीं स्वीकार करता, अपितु इसके लिए व्याकुल हृदय को ही दोषी ठहराता है। कवि की एक गजल का शेर देखिए–

'बेखुदी में ले लिया बोसा, खता कीजै मुआफ,

ये दिले–बेताब की सारी खता थी, मैं न था।'

सच्चा प्रेमी अहर्निश प्रिय की स्मृति में तड़पता रहता है। उसे संभवतः मृत्यु के अतिरिक्त कोई शांति देने वाले नहीं। इसी भावभूमि पर आधारित जफर की एक गजल से उद्धृत शब्दचित्र देखिए–

'सुबह रो–रो के शाम होती हैं,

शब तड़पकर तमाम होती हैं।'

प्रेम की विरहजन्य पीड़ा का उपहार कवि ने प्रिय के मिलन और चुंबन में ही तुलाब किया है। कवि कहता है–

'बोसा तेरे लब का मर्जे गम की दवा है,

क्यों और को देता है कि बीमार तो मैं हूं।'

उपरोक्त पंक्तियां 'तुम्हीं ने दर्द दिया है तुम्हीं दवा देना' के भाव को चरिताथ करती हैं।

प्रेम एवं राजनीतिक प्रवंचनाओं में कवि को कहीं भी सुख की एक किरण दृष्टिगोचर न हुई। वह न तो किसी के नेत्रों से समा सका और न ही किसी के हृदय में स्थान पा सका। उसका जीवन मुट्ठी–भर धूल के समान बन गया, जो किसी काम न आ सकी। वह उस शाश्वत पतझरवाले वन का वसंत बन गया, जिसका कोई अस्तित्त्व नहीं होता–

'न किसी की आंख का नूर हूं, न किसी के दिल का करार हूं,

जो किसी के काम न आ सके, मैं वो एक मुश्ते गुबार हूं।

मेरा रंग रूप बिगड़ गया, मेरा यार मुझते बिछुड़ गया,

जो चमन खिजां से उजड़ गया, मैं उसी की फस्ले बहार हूं।'

इस प्रकार जफर की गजलों में वियोगजन्य प्रेम की शाश्वत अभिव्यक्ति हुई है।

उर्दू के प्रसिद्ध कवि जनाब शेख मोहम्मद इब्राहीम जौक की गजलों में भी प्रेम की नवीन अनुभूतियां दृष्टिगत होती हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

'आंख मिरी तलवों से वो मल जाएं तो अच्छा,

है हसरते पाबोस निकल जाए तो अच्छा।'

उक्त शेर में कवि ने प्रेम का एक मौलिक शब्दचित्र प्रस्तुत किया है। प्रिय चाहता है कि उसकी प्रेमिका अपने तलवों से उसकी आंखों को मल जाए ताकि उसके हृदय में प्रेमिका के चरणों का चुंबन लेने की इच्छा पूर्ण हो सके।

इतना ही नहीं, प्रेमिका के वियोग में प्रिय के श्वास का तार कांटे के समान खटकता है। वह मृत्यु की असहनीय पीड़ा को प्रिय वियोग से श्रेष्ठ समझता है।

'फुर्कत में तिरी, तारे नफ्स सीने में मेरे,

कांटा–सा खटकता है, निकल जाए तो अच्छा।'

यह प्रिय से मिलन की कामना तो हृदय में संजोए हैं। प्रिय के मिल जाने पर उससे वार्तालाप में समय का व्यवधान पसंद नहीं करता–

'वो सुबह को आएं तो करूं बातों में दोपहर,

और चाहूं कि दिन थोड़ा–सा ढल जाए तो अच्छा।'

सुप्रसिद्ध पाकिस्तानी उर्दू शायर जनाब फैज अहमद फैज की गजलें भी प्रेमाभिव्यक्ति करने में सफल हुई। उनकी गजलें भी विरह की चाशनी में पगी हुई हैं। प्रिय को अपने प्रेम पात्र की स्मृति इतनी मधुर लगती है कि पीड़ा के घाव भर जाने पर भी वह पुनः किसी–न–किसी रूप में उसकी स्मृति सरिता में गोते लगाकर मधुर पीड़ा के आनंद को अनुभव करने लगता है–

'तुम्हारी याद से जब जख्म भरने लगते हैं,

किसी बहाने तुम्हें याद करने लगते हैं।'

कवि के विचार में पीड़ा की परिभाषा को प्रेम से अपरिचित व्यक्ति भला कैसे अनुभव कर सकता है। प्रेमिका को प्रत्येक चितवन से प्रिय के जीवन का संबंध जुड़ा हुआ हैं इसे या तो वह जानता है अथवा उसी के समान कोई अन्य भुक्तभोगी। कवि के शब्दों में–

'तुम्हारी हर नजर से मुन्सलिक है रिस्ता–ए–हस्ती,

मगर ये दर्द की बातें कोई नादान क्या समझे।'

प्रेम को जीवन के लिए आवश्यक मानते हुए अपनी एक गजल में प्रसिद्ध उर्दू शायर स्वर्गीय साहिर लुधियानी कहते हैं–

'मिलती है जिंदगी में मुहब्बत कभी–कभी,

होती है दिलबरों की इनायत कभी–कभी।

तनहा न कट सकेंगे जवानी के रास्ते,

पेश आएगी किसी की जरूरत कभी–कभी।'

उर्दू गजल को हिंदी कवि का रंग देनेवाले सुप्रसिद्ध कवि डॉ. बशीर अहमद बद्र की गजलें भी प्रेम की कोमल कल्पनाओं से ओत–प्रोत हैं। कवि प्रेमिका के दोनों अधरों को शेर के दो मिसरे और प्रेमिका को गजल की जान समझ बैठता है–

'वो लब हैं कि दो मिसरे और दोनों बराबर के,

तारों भरी पलकों की, भरमाई हुई गजलें।

उस जाने–तमज्जुल ने, जब भी कहा कहिए

मैं भूल गया अक्सर, याद आई हुई गजलें।'

उर्दू–गजल को नया मोड़ देकर हिंदी गजल के रूप में प्रवर्तित करने वाले गजलकार स्वर्गीय दुष्यंत कुमार, जो मौलाना हाली तथा शमशेरबहादुर सिंह से प्रभावित थे, ने भी प्रेमाभिव्यक्ति करानेवाले कुछ परंपरागत गजलें कहीं हैं।

इसी प्रकार शुद्ध हिंदी में गजल कहनेवाले कवि श्री निरंकारदेव सेवक की कुछ परंपरागत गजलें प्रेमाभिव्यक्ति में शत–प्रतिशत सफल हुई हैं उनकी सन् 1939–40 के आसपास लिखी हुई एक गजल की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं, जिनमें प्रिय अपनी प्रेमिका से प्रणय याचना करता है। वह चाहता है कि उसकी जीवन वीणा पर कोई कोमल कण्ठ प्रणय का मधुर राग गा उठे या उसके मानस रूपी मरूस्थल में कोई प्रेम का मधुरस बरसा दे। कवि के शब्दों में–

'तुम मेरी जीवन वीणा पर, संगीत मधुर गाती जाओ।

तुम मेरे मन के मरुस्थल में, मधुरस कण बरसाती जाओ।'

किंतु कवि प्रणय में चिर तृप्ति की आकांक्षा नहीं करता है। उसे अतृप्ति में जो आनंद है, वह तृप्ति में कहां। वह कहता है–

'इच्छा करने में जो सुख है, सब कुछ पाने में प्राप्त कहां,

मैं तुमसे मांगूं, तुम दाने–दाने को तरसाती जाओ।'

इसी प्रकार पूर्ण या आंशिक रूप में प्रायः सभी उर्दू अथवा हिंदी के गजलकारों ने प्रेम की अपनी गजलों का वर्ण्य विषय बनाया है। कुछ लोग तो गजल को प्रेमकाव्य की एक विधा ही मानते हैं। मौलाना हाली से पूर्व तो पूर्णतया गजलें ही प्रेमाभिव्यक्ति का माध्यम रहीं। यह बात और है कि समय और परिवेश के परिवर्तन के साथ–साथ गजलों का वर्ण्य विषय भी परिवर्तित हुआ और नई–नई जमीनों पर नए–नए रदीफ–काफियों के साथ नई–नई गजलें कही जाने लगीं। इन गजलों में व्यंग्य की मार सामाजिक और राजनीतिक शब्दचित्र तथा हास्य की मुद्राएं तो मिल सकती हैं, किंतु प्रेम का वह आत्मिक आनंद कहां मिलेगा, जो पंरपरागत गजलों में मिलता है। वास्तविकता तो यह है कि सच्चे अर्थों में गजलें तो वही हैं, जिनमें प्रेम की विविध भावदशाओं की अनुभूति कराने की क्षमता हो और जिनका उद्देश्य प्रेमाभिव्यक्ति में निहित हो।

¼[k½ fgUnh xty dk bfrgkl vkSj fodkl ;k=k

गजल भारत के लिए एक आयतित विधा है। हिंदी के पूर्व उर्दू–फारसी भाषाओं में इसने अत्यंत लोकप्रियता अर्जित की है। उर्दू में तो यह समस्त काव्य–शैलियों की जान समझी जाती रही। आज भी उर्दू साहित्य का भंडार निरंतर गजलों से भरा जा रहा है। उर्दू साहित्य में गजल की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। प्रारंभ से ही अनेक कवियों ने इसका पालन–पोषण एवं संवर्द्धन किया। वास्तव में प्रारंभ से ही अनेक कवियों ने इसका पालन–पोषण एवं संवर्द्धन किया। वास्तव में भावपक्ष एवं कलापक्ष की दृष्टि से उर्दू साहित्य में भी गजलें अपने विकास की चरम सीमा पर पहुंचीं, किंतु गजल का उद्भव उर्दू भाषा में न होकर फारसी भाषा में हुआ। अतः यदि कहा जाए कि गजल का बीजांकुरण फारसी भाषा से होकर उसका प्रस्फुटन व पल्लवन उर्दू भाषा में हुआ तो अत्युक्ति न होगी। अतः गजल के ऐतिहासिक अध्ययन के लिए उर्दू तथा फारसी दोनों भाषाओं के इतिहास का सम्यक् अवलोकन करना होगा।

(क) फारसी गजलों का संक्षिप्त इतिहास

गजल शब्द अरबी भाषा का है। इस कारण अनेक लोगों की यह धारणा है कि गजल का उद्‌भव अरबी से हुआ, किंतु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। अरबी साहित्य में प्रेम भावना का निरूपन अवश्य हुआ है, किंतु इसका स्वरूप गजल का न होकर 'तश्बीब' अथवा 'नसीब' नामक विधा का है। यद्यपि इन विधाओं में भी गजल की भांति प्रेम और यौवन से संबंधित भावनाओं का चित्रण किया जाता है, किंतु मूल यप में यह कसीदे का ही अंग है। इस प्रकार अरबी कवियों एवं साहित्यकारों के मन में गजल की स्पष्ट कल्पना अवश्य थी, किंतु वह अरबी काव्य का साकार स्वरूप नहीं बन सकी।

सर्वप्रथम गजलें ईरान के फारस प्रांत में बोली जानेवाली फारसी भाषा में कही गई है। प्रारंभ में इनका वर्ण्य विषय प्रेम, श्रृंगार, मदिरा आदि तक सीमित था। गजल साहित्य में वर्णित इन विषयों से प्रभावित होकर जब मनुष्य कुमार्गों पर जाने लगे, प्रेम की पवित्रता, विषयों–वासना एवं विलासिता की सीमा का स्पर्श करने लगी तो गजल को इससे बचाने के लिए एक नए परिवर्तन की आवश्यकता हुई और यह परिवर्तन सूफी मत के रूप में सामने आया। फलतः लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो गया और नीति तथा दर्शनिक विषयों पर भी गजलें लिखी जाने लगीं इस प्रकार गजल के वर्ण्य–विषय में भी परिमार्जन हुआ और गजल फारसी साहित्य की निधि बन गई

दसवीं शताब्दी में ईरान में रौदकी नामक अंधा कवि हुआ है, जिसने सर्वप्रथम इस विध ा को जन्म दिया। इस संबंध में यह किंवदंती है कि एक बार रौदकी तत्कालीन बादशाह के साथ किसी युद्ध पर गया। बादशाह वहां जाकर एक व्यस्त हो गया कि उसे घर लौटने की बात ध्यान में न आई। कुछ समय पश्चात जब बसंत ऋतु आई, चारों ओर फूल खिल गए तथा सुगंधित समीरण प्रेमिका के केशों का स्मरण दिलाने लगी तो रौदकी के हृदय से अनायास ही कुछ पंक्तियां फूट पड़ीं, जिनसे प्रभावित होकर बादशाह स्वदेश लौट आया। कालांतर में इस प्रकार की कविताएं ही गजल कहलाईं।

फारसी भाषा में गजल के जन्म के संबंध में एक अन्य मतानुसार सामंती युग में वहां

के बादशाहों की प्रशंसा में जो कसीदे लिखे जाते थे, उनमें काव्य का एक टुकड़ा 'तश्बीब' के नाम से पुकारा जाता था। इस टुकड़े में कवि को अपने मन की बात कहने की स्वतंत्रता रहती थी। इसमें वह प्राकृतिक सौंदर्य, प्रेम व वियोग आदि भवनाएं व्यक्त करता था। कसीदे का यह टुकड़ा ही उससे अलग होकर गजल बन गया। 'तश्बीब' में शेरों में अपरापर संबंध नहीं होता था और अधिकतर शेर–प्रेम–वार्तालाप पर आधारित होते थे। इसलिए यह शायरी गजल के नाम से पहचानी जाने लगी और अपना अलग अस्तित्व स्थापित कर लिया।'

मोहतरिमा माजिदा हसन ने भी फारसी में गजल का जन्म अरबी कसीदे के प्रारंभिक स्परूप से माना है।

फारसी में गजल की उपरोक्त अवधारणाओं के अतिरिक्त रौदकी से लेकर सादी शीराजी तक गजल की विशाल परंपरा भी मिलती है। फारसी में रौदकी के अतिरिक्त दकीकी, वाहिदी, निजामी, कमाल, बेदिल, फैजी, शेख, सादी, अमीर खुसरो, हाफिज शीराजी, शाहजहांकालीन चंद्रभान ब्राह्मण आदि ने गजल साहित्य को समृद्ध किया।

रौदकी की गजलें प्रिय प्रदत्त विरहजन्य भावानाओं से सुसंपन्न हैं। वह अपनी प्रिया के प्रेम में व्याकुल है और उससे एक बार दर्शन दे जाने का निवेदन करता हुआ कहता है–

'अय जान–ए–मन आज आरजू–ए–तो पझमान,

बिन भाय एकी रूप बि बणाय बरी जान।'

सुप्रसिद्ध फारसी कवि दकीकी की गजल के अनुसार लोग कहते हैं कि धैर्य से काम लो। धैर्य का फल मधुर होता है। हां, होता होगा, किंतु इस सांसार में नहीं, किसी अन्य संसार में। उदाहरण के लिए–

'गोयंद सब्र कुन कि लोग सब्र बर दिहद।

आरी दिहद व लोक व उभरे दिगर दिहद।'

वाहिदी की गजलों में प्रेम के अलौकिक पक्ष का निदर्शन होता है। उनके मतानुसार

लोग प्रिय का पता पूछते हैं और अनेकानेक निशानियों के बावजूद उस तक नहीं पहुंच पा रहे हैं। एक गजल का शेर प्रस्तुत है–

'खलके निशान–ए–दोस्त तलब मी कुनंद बाज,

अज दोस्त गाफिल अंद व चंदी निशां के हस्त।'

निजामी की गजलें भी प्रेम, सौंदर्य एवं श्रृंगार की भावनाओं से ओत–प्रोत हैं। अपनी एक गजल में प्रिय को संबोधित करते हुए वह कहते हैं कि मुझे केवल इस बात का दंड मत दो कि मैं तुम्हारा प्रेमी हूं। यदि तुम स्वयं अपना चंद्रमुख दर्पण में देखोगे तो मुग्ध हो जाओगे। गजल का शेर द्रष्टव्य है–

'सरजनिशम मकुन कि तु शीत्फातर ज मन शवी,

गर निगरी दर आइना रूप चूं माह–ए–रवीशरा।'

कमाल की गजलों में वियोग भावना का प्राधान्य है। उन्हें प्रिय की आंखों से आहें झलकती दिखाई देती हैं, जो उन्होंने कल रात तक उसकी स्मृति में भरी थीं। गजल का शेर उद्धरणीय है–

'अज–चश्म–ए–नीम ख्वाब–ए तोइमरोज खैशान अस्त,

आं नासा हो कि दर गुम–ए–तो दोश कर्दा इम।'

अट्ठारहवीं शताब्दी में बेदिल नाम के फारसी के एक कवि हुए हैं, जिनकी कविता की विशेषता भावों की प्रचुरता नहीं, अपितु जटिलता रही है। यह अपने रंग के बेजोड़ कवि हुए हैं। इनकी गजलों में क्लिष्ट शब्दों एवं जटिल भावनाओं के दर्शन होते हैं। संक्षेप में इनकी गजलों में पांडित्य–प्रदर्शन का मंतव्य दृष्टि–गोचर होता है। इनका अनुसरण करने के कारण की गालिब की रचनाएं क्लिष्टता की पराकाष्ठा पर पहुंच सकी हैं।

फारसी गजल साहित्य के इतिहास में इन कवियों के साथ–साथ तीन अन्य ऐसे कवि हुए हैं, जिनकी गजलें साहित्य संसार में अमर हो चुकी हैं। रौदकी ने यदि फारसी गजल की नींव रखी है तो सादी शराजी, अमीर खुसरो और हाफिज शीराजी ने उस पर गजल

का भव्य महल निर्मित किया है।

यद्यपि सादी तथा अनेक कवियों ने फारसी गजलें लिखी हैं, किंतु वास्तव में गजल को पूर्ण स्वरूप प्रदान करने का श्रेय सादी को ही मिलता है। इन्होंने ऐसी भूमि पर बैठकर रचना की, जहां की भाषा, परवेश और सामाजिक तथा सांस्कृतिक परंपराएं फारसी गजल की प्रकृति के अनुकूल थीं! इसीलिए उनकी गजलें फारसी साहित्य की अमर निधि हैं। सुप्रसिद्ध फारसी कवि सादी ह्रदय से सूफी थे। अतः उनकी गजलों में प्रेम के लौकिक एवं अलौकिक रूपरूप में दर्शन होते हैं। सादी कहते हैं कि प्रेम का सानंद वह क्या जाने, जिसे जीवन में कभी प्रिय के आस्तां से सिर टकराने का अवसर न मिला हो। उदाहरणार्थ–

'हदीस–ए–इश्क चि दानद कसे कि दरहमां उम्र

वसरन को फ्ता बाशद दा–ए–सराई रा।।'

एक अन्य स्थान पर सादी शीराजी अपने प्रिय को संबोधित करते हुए कहते है–'मेरे मित्र कहते हैं कि मैंने अपना दिल तुझे क्यों दिया? उन्हें पहले तुझसे पूछना चाहिए कि इतना सुंदर क्यों हुआ?' शेर प्रस्तुत है–

'दूस्तां मनअ कुनंदम किचरा दिल बतू दादम,

वायद अव्वल बतू गुफ्तन कि चुनी खूब चराई।'

सादी की गजलों में प्रिय प्रदत्त पीड़ा के अनेकानेक शब्दचित्र अंकित हुए हैं। प्रिय की निष्ठुरता से पीड़ित होकर वे अपनी एक गजल में उसे संबोधित करते हुए कहते हैं–'कभी तो एक दृष्टि हमारी ओर करो। तुमने दर्द दिया है, भूले से दवा भी दे दो। तुमने वादाखिलाफी बहुत की है, कभी भूलवश ही वादा–वफाई भी कर दो। हम तो नित्य ही तुम्हें याद करते हैं। तुम भी एक–आध दिन हमें याद करके देखों यह गलत सिद्धांत छोड़ो। इस गलत स्वभाव को त्याग दो, जिसे तुम मार देना चाहते हो, दो–एक दिन उसे अपनी सेवा में रखकर भी देखो। सादी, जब हरीफ से मुक्ति हीं तो फिर इसको सहन कर ही लो और निर्णय भाग्य पर छोड़ दो।' मूल रूप में गजल इस प्रकार है–

'आखिरी निजहे बसू–ए–मा कुन,

दर्देब तफक्कुदी दवा कुन।

बिसियार खिलाफ वाइदा कर्दी,

आखिर बिगलत यके वकाकुन।

मारा तोबखतिरी हमा रोज,

यके रोज तो नेज याद–ए–माकुन।

ईकाइदा–ए–खिलाफ बिगुजार,

बी खूए मुअनदत रिहा कुन।

सादी चू हरीफ–ए–नागुजोश्त,

तन दर हि वचश्म दरजा कुन।

जेबा न बुवद शिकायत अज दोस्त,

जेबा हमारोज गो जफा कुन।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि फारसी गजल साहित्य के इतिहास में सादी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने न केवल फारसी को सजाया और संवारा, अपितु उसे पूर्णता भी प्रदान की है। इसलिए सादी को फारसी साहित्य का होमर कहा गया है।

इन्हीं की प्रेरणा से अमीर खुसरो गजल के क्षेत्र में आए। उनकी गजलों में सादी का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उनकी गजलों में प्रेम और माधुर्य के दर्शन होते हैं। उनकी गजलों में विरह की तीव्रानुभूति ही नहीं, एक पीड़ाकुल ह्रदय की करूण पुकार भी मिलती है। सईद नफीस द्वारा संपादित 'दिवान–ए–कामिल अमीर खुसरो' में खुसरो की गजलों की संख्या कुल 1726 बताई गई है।

उनकी गजलों में प्रेम और सौंदर्य के अतिरिक्त मदिरा की मस्ती को भी स्वर मिला है। इतना ही नहीं, परंपरागत लीक से हटकर उन्होंने अपनी गजलों के अध्यात्म ज्ञान,

हितोपदेश, नीतिपाठ और उच्चकोटि के नैतिक मूल्यों के भी दर्शन कराए हैं।

सर्वप्रथम हम उनकी प्रेमपरक गजलों का अध्ययन करेंगे। प्रेम की पीड़ा ने उन्हें व्याकुल कर रखा है। वे अपने प्रिय के वियोग में मर रहे हैं, जबकि उनका प्रिय उनसे कुशल–क्षेम तक नहीं पूछता। वे अपने प्रिय को सलाम भेजना चाहते हैं, पर उनका कोई अंतरंग मित्र नहीं। प्रिय उनके हृदय का चुराकर निश्चिंत और निष्ठुर बन बैठा है, जबकि उनका संसार प्रिय के अभाव में वीरान हो गया है। वे अपने प्रिय के सौंदर्य के प्रेमी हैं और उसे पाने के अतिरिक्त उन्हें अन्य कोई कामना नहीं है। इन्हीं भावों को खुसरो ने अपनी गजल में कितनी विशेषता के साथ प्रस्तुत किया है–

'ज इश्कत बेकरा राम बा के गोयम।

ज हिजरत रब्बार ओ जारम बा के गोयम ।

न मी मुरबी ज अहवालम कि चुनी,

परेशां रोजगारम वा के गोयम।

हमी ख्वाहम बिफिरिस्तम सलामें,

चूंपक मुहरम न दारम बा के गोयम।

दिल बुर्दी गम कारम् न खुर्दी,

बखरास्त रोजगारम बा के गोयम।

नदारज जुज तमन्नाए तो खुसरो,

जमानत दोस्त दारिम बा के गोयम।'

निस्संदेह उनकी प्रेमपरक गजलों में दर्द भी है, गम भी है, तड़प भी है, बेचैनी और बेकरारी भी है और वे सभी विशेषताएं विद्यमान हैं, जो एक प्रेमी के हृदय में समय–समय पर जन्म लेती हैं। वस्तुतः उनकी ये गजलें एक भग्न हृदय की करूण पुकार हैं।

मदिरा को वे जिंदगी की उलझनों से मुक्ति दिलानेवाली मानते हैं, क्योंकि मदिरा नशे

में मनुष्य ऐब भूल जाता है। जीवन की पीड़ाएं भी उसके सम्मुख आनंद–मग्न होकर नाच उठती हैं। साकी को अपना पूज्य मानते हुए वे कहते हैं–

'अगर अतहाब–ए–इशरत में पारस्तंद,

बियासकी कि मन साकी पारस्तम।

तआला अल्लाह अगीं बहतरिवि बाशद,

कि अज नंग–ए–खुद बिरूत्तम।'

अमीर खुसरो ने अपनी गजलों में अध्यात्मक ज्ञान के अनेक रहस्यों का उद्घाटन भी किया है। चूंकि ये सूफी मतावलंबी थे, अतः अपने अलौकिक प्रिय को संबोधित करते हुए वे कहते हैं– शरीर से काम निकाल लिया और जान ही में छिपे हुए हो। तुमने बहुत दर्द दिए हैं और इसकी दवा तुम्हीं हो। तुमने सार्वजनिक रूप में मेरे हृदय को बेध दिया और इसी में अपना स्थान भी बनाया है। तुमने कहा था, दोनो संसार देकर मुझे ले लो, अपना मूल्य बढ़ाओं, क्योंकि तुम सस्ते प्रतीत होते हो। हम रो–रोकर नमक की तरह घुल और तुम हंस–हंसकर मिसरी की डली बने जा रहे हो। यह वृद्धावस्था और इश्कबाजी कोई अच्छी वस्तु नहीं है। खुसरो कब तक इन उलझनों में पड़े रहोगे। गजल मूल रूप में प्रस्तुत है–

'दिल अज तन बुर्दी व दर जानी हनूज,

दर्द हा दादी व दरनामी हनूज।

आशकारा सीना अम विशिगायंती,

हम चुनां दए सीना पिनहानी हनूज।

हर दो आलम कीमत–ए–खुद गुफ्ताई,

निर्ब वाला कुन कि अर्जानी हनूज।

माज गिरिजा चूं तमक विगुदास्तीम,

तू बधंदा शकर सितानी हनूज।

पीरी जो शाहिद परस्ती नारखुश,

अस्त खुसरवां के परेशानी हनूज।'

एक अन्य गजल में वे संसार की नश्वता एवं ईश्वर की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, 'हमने प्रेम के पंथ पर पग रखने के पश्चात आराम और आराइश को त्याग दिया है। हम प्रेम के पंथ पर पड़ चुका है, हम उसके रास्ते में दृग बिछाते हैं, क्योंक अस्तित्व की स्थिरता भ्रम है। हमने लुप्तता का आश्रय लिया है। इस सृष्टि के निर्माण से पूर्व ही तुम स्वामी हो। अतः हमने कभी इस लोक को तुम्हारे सम्मुख कोई महत्त्व नहीं दिया। उदाहरणार्थ–

'मा कि दर नाहे गम कदमजदा ईम,

बरख्ते आफियत कलमजदा ईम।

मा ब तूफाने इश्क गर्का शुदीम,

बर सरे नुह फलक कलमजदा ईम।

कदम को बराहे इश्क शिताफ्त,

दीदावार राहे आं कदमजदा ईम।

चूंकि अंदर वुजूद नस्त सवात,

दस्त दर नामा–ए–अदम जर्दा ईम।

अज सरे नीस्ती सु सुलतानी,

हस्ती–ए–हरदो कौन कम जदाईम।'

इन गजलों में खुसरो ने 'ईश्वर की पहचान', 'सब कुछ वही है', 'संसार की अस्थिरता', 'साधक का स्थान', 'चिरजीवित और विनाश का प्रश्न' तथा 'दो जगत की सत्यता' जैसे आध्यात्मिक संदर्भों का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त उनकी गजलों में उच्च नैतिक मूल्यों का प्रस्तुतीकरण भी हुआ है। एक स्थान पर वे कहते हैं कि यह सांसरिक ध

ान–संपत्ति बच्चों को खुश करनेवाला एक खेल है। मूर्ख हैं वे लोग जो इस खेल से धोख खाते हैं। ऐ खुसरो! इन दुनिया वालों से भागो। आज वफादारी नहीं रही। ये लोग भी दुनिया की ही तरह बेवफा हो चुके हैं। मूल गजल इस प्रकार है–

'बाजीचा ईस्त तिफ्ल फरेब ई मता–ए–दहर,

बे अकिल मदु मां की बदीं मुबतिला शुदंद।

खुसरो गुरेज कुन कि वफा रक्तई जमां,

ज अहले जाहं कि हम चूं जहां बेवफा शुदंद।'

खुसरो की गजलों में जीवन और मूल्यो की सत्यता, सांसारिकता में लीन होने का परिणाम, मित्रों को धोखा, धर्म के नाम पर धोखा, सांसरिक ऐश्वर्य की क्षणभंगुरता, अच्छाई और बुराई का स्तर आदि नीति विषयक तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

प्रयोग की दृष्टि से खुसरो ने कुछ ऐसी भी गजलें लिखी हैं, जिनके शेरों में फारसी और हिंदी दोनों की ही शब्दावली प्रयुक्त हुई है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी–

'जे हाल मिस्कीं मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाय बतियां

कि ताबे हिजरां न दारम ए जां न लेहो काहे लगाए छतियां।'

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि खुसरो की भाषा सुंदर और लालित्यपूर्ण है। उनकी गजलों में शब्द–संगठन और मुहावरों का प्रयोग अत्यंत कलात्मक एवं सुंदर है। उनमें एक लय और संगीत भी है। काव्य एवं शिल्प की दृष्टि से उनकी गजलों का फारसी काव्य क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ स्थान है।

अमीर खुसरो से पश्चात हाफिज शीराजी ने फारसी गजल साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने इस दिशा में सादी और अमीर खुसरो का अनुकरण कियां कहना न होगा कि हाफिज शीराजी का गजलों पर उक्त दोनों कवियों की स्पष्ट छाप पड़ी। उनकी गजलों में जो जीवन, जो गुण और जो जादू है, वह सादी और खुसरो की प्रेरणा का परिणाम है।

एक स्थान पर हाफिस शीराजी अपने उल्लास की एक विशेश मनःस्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं– रात अंधेरी है, लहरें डरावनी हैं और भंवर इतनी भयानक है कि हमारी इस दशा को किनारे पर खड़े चिंतारहित व्यक्ति क्या जानें? गजल का शेर प्रस्तुत है–

'शबे तारीको–बीमे–मौजो–गिरदावे धुनी हायल,

कुजा दानंद हाले मा सुबुक साराने साहिल हा।'

उनकी गजलों में आध्यात्मिकता का स्वर भी झंकृत होता है। उनके गुरू ने बताया है कि ईश्वर की लेखनी से कोई त्रुटि नहीं हुई। वह पवित्र दृष्टि बधाई के योग्य है, जो त्रुटियों की उपेक्षा करती है। उन्हीं के शब्दों में–

'पीरे मा मुफत खतादार कलमे लनअ न रफ्त

आफरी बर नजरे पाक खता वोशिश वाद।।'

उन्होंने संसार की भौतिक संपन्नता की नश्वरता अपनी गजलों में प्रमाणित की है। पाखंडयुक्त पवित्रता से पाप को श्रेष्ठ समझते हुए वे कहते हैं–

'साकी बयार बादा कि माहे सयाम रफ्त,

दरदिह कदह कि मोसिमे–नामूसोनाम रफ्त।

वक्ते–अजीज रफ्त–बया ता कजा कुनेम,

उम्रे कि बेहुजरे सुराही–ओ–जाम रफ्त।'

इस प्रकार हाफिज की गजलों में सामाजिक चेतना और आध्यात्मिक दर्शन के अतिरिक्त उच्च नैतिक मूल्यों के प्रतिबिंब भी मिलते हैं। गजल के क्षेत्र में उन्होंने सादी और अमीर खुसरो द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर उसे प्रशस्त किया।

हाफिज के पश्चात राजनीतिक उथल–पुथल के कारण लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक फारसी गजलों के संसार में सन्नाटा छाया रहा, किंतु सफवी काल में पुनः शांति की स्थापना के पश्चात गजल संसार के द्वार पुनः खुल गए और अनेकानेक कवि विच्छिन्न

परंपरा के प्रवर्त्तन में सन्नद्ध हो गए।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि फारसी गजल का श्रीगणेश दसवीं शताब्दी के कवि रौदकी ने किया। इस परंपरा के प्रवर्त्तन में दकीकी, वाहिदी, निजामी, कमाल, बेदिल, फैजी, शेख सादी, अमीर खुसरो, हाफिज, शीराजी तथा चंद्रभान ब्राह्मण के अतिरिक्त उर्फी, नजीरी, नीशांपुरी, साकिब, सिफाई सफाहानी आदि फारसी कविता ने तीन श्रेष्ठ गजलकारों को ही जन्म दिया। इनके नाम हैं–शादी, खुसरो और हाफिज। वास्तव में इन्होंने लक्ष्य एवं शिल्प की दृष्टि से फारसी गजल को चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया। यही कारण है कि हाफिज के पश्चात गजल क्षेत्र में लगभग 150 वर्ष तक सन्नाटा छाय रहने पर भी फारसी गजल की यह परंपरा पुनः जीवित हो उठी और आज भी फारसी भाषा में अच्छी गजलें लिखी जा रही हैं। उर्दू और हिंदी की भांति ही फारसी गजलों का भविष्य निस्संदेह उज्जवल है।

(ख) उर्दू गजलों का इतिहास

मध्यकालीन इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का दक्षिण विजय से दक्षिण में मुसलमान राज्यों की स्थापना का श्रीगणेश हुआ, तत्पश्चात मुहम्मद तुगलक ने दौलताबाद को राजधानी बनाकर उत्तर भारत की मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति को सुदूर दक्षिण में पहुंचा दिया। इस प्रकार उत्तरी भारत में विकसित उर्दू भाषा का प्रचार–प्रचार दक्षिण में हो गया। इसके अतिरिक्त दक्षिण में तत्कालीन शासकों ने महत्त्वपूर्ण पदों पर अच्छी संख्या में अधिकाधिक महत्त्व देना आरंभ किया। यही कारण है कि जिस समय उर्दू भारत में बाजारू बोली से अधिक महत्त्व न रखती थी, उस समय दक्षिण में वह सांस्कृतिक माध्यम से रूप में प्रतिष्ठापित हो गई।

फलतः उर्दू में साहित्य सृजन का शुभारंभ दक्षिण से ही हुआ। अन्य काव्य–शैलियों के अतिरिक्त उर्दू–साहित्य में गजल का विकास भी अनवरत रूप से होता रहा। उर्दू साहित्य में गजल के क्रमिक विकास के अध्ययन के लिए संपूर्ण उर्दू साहित्य के इतिहास को कई कालों में विभाजित करना होगा। सुप्रसिद्ध उर्दू कवि एवं समालोचक डॉ. रघुपति सहाय

फिराक गोरखपुरी ने उर्दू काव्य के इतिहास को निम्न खंडों में विभक्त किया है–

1. दक्षिण देशीय काव्य,
2. दिल्ली में उर्दू काव्य का विकास,
3. लखनवी कविता,
4. दिल्ली की मध्यकालीन कविता,
5. दरबारों के बचे–खुचे प्रभाव,
6. सामाजिक चेतना और नई कविता,
7. गजल का पुनरुत्थान,
8. प्रगतिवादी युग।

निस्संदेह इस विभाजन के अनुसा लेखक ने उर्दू काव्य के इतिहास पर विस्तार से विचार किया है। इस संदर्भ में बाबू ब्रजरत्नदास कृत उर्दू साहित्य का इतिहास' में प्रस्तुत काल–विभाजन भी उल्लेख्य है–

1. उर्दू साहित्य का दथ्क्षण में आरंभ,
2. दिल्ली साहित्य केंद्र का आरंभ काल,
3. दिल्ली साहित्य केंद्र का पूर्व मध्यकाल,
4. दिल्ली साहित्य केंद्र का उत्तर मध्य काल,
5. दिल्ली साहित्य केंद्र का उत्तर काल
6. लखनऊ साहित्य केंद्र–नासिख का आतिश,
7. लखनऊ साहित्य केंद्र–मर्सिए और मर्सिएगो,
8. उर्दू साहित्य के अन्य केंद्र,
9. उर्दू साहित्य का वर्तमान काल।

चूंकि बाबू ब्रजरत्नदास की यह कृति सन् 1934 के लगभग प्रकाशित हुई, अतः इसके पश्चात के साहित्य का विवरण इसमें नहीं मिलता है। फिर भी इन दोनों ग्रंथों के अध्ययन से उर्दू–गजलों के इतिहास के विषय में हमें पर्याप्त एवं सम्पक् जानकारी उपलब्ध होती है।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान उर्दू–गजलों का विभाजन दो खंडों में करते हैं यथा–1. प्राचीन काल, 2. अर्वाचीन काल।

कुछ अन्य समालोचकों ने इसे चार खंडों में विभाजित किया है।

1. प्राचीन काल,
2. मध्य काल,
3. आधुनिक काल,
4. अत्याधुनिक काल।

हिंदी साहित्य के इतिहास में काल–विभाजन उस काल विशेष के आधार स्तंभ अथवा प्रवर्तक के नाम से किए जाने की परंपरा रही है। इसीक्रम में उर्दू गजलों के संक्षिप्त इतिहास का अध्ययन करने के लिए सुविधा और सरलता की दृष्टि से हम निम्न प्रकार के काल–विभाजन को उचित मानते हैं–

1. प्राचीन काल (दक्षिण केंद्र के शायरों से खाने आरजू तक)
2. मध्य काल (सौदा और मीर से दाग और अमीर के समय तक)
3. आधुनिक काल (अमीर मीनाई से 1960 ई. तक)
4. अत्याधुनिक काल (साठोत्तरी उर्दू एवं हिंदुस्तानी गजल)

(ग) गजलः मैड्रिगाल और सॉनेट छंद के समीप

कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से गजल मैड्रिगाल तथा सॉनेट में अनेक समानताएं मिलती हैं। मैड्रिगाल फ्रांसीसी भाषा एक छंद है। गेयता उसकी पहली विशेषता है। इसके माध्यम से सौंदर्य एवं प्रेममय भावनाओं की अभिव्यक्ति की जाती है। दूसरे शब्दों में मैड्रिगाल का

वर्ण्य–विषय प्रेम होता है। चूंकि यह एक छोटा गेय पद होता है, अतः इसकी प्रत्येक पंक्ति में अनेकानेक भाव समाहित होते हैं। मैड्रिगाल में थोड़े में बहुत कुछ कह जाने की अर्थात् 'अरथ अमित अरु आखर थोरे' की उक्ति चरितार्थ करने की क्षमता निहित होती है।

जहां तक शिल्प का प्रश्न है, मैड्रिगाल में शब्द–विन्यास लघु–गुरु के आधार पर किया जाता है। इसमें कम से कम छह और अधिक से अधिक तेरह पंक्तियां होती हैं। इसमें तीन तुकांत होते हैं। इस छंद के लेखन में फ्रांस के मान्ट्रयूल और मोन्क्रिफ, इटली के पैटार्क और टैसो, जर्मनी के हेजडार्न, वौसइश्कलेजेल और गेटे तथा ब्रिटेन के लाज विदर्स कैर्‌यू और सकलिंग ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है।

इसी प्रकार सॉनेट अंग्रेजी का एक सुप्रसिद्ध छंद है। सॉनेट शब्द की व्युत्पत्ति इटली के 'Sonetto' शब्द से मानी गई है, जिसका अर्थ लघु ध्वनि अथवा लय से है। मूल रूप में सॉनेट एक छोटी कविता थी, जिसका संगीत के साथ पाठ किया जाता था। यद्यपि विद्वान लोग सिसली और प्रोबेंस को सॉनेट का उद्‌गम स्थान मानते हैं, फिर भी यह सर्वप्रथम इटली में तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मिली। आगे चलकर सॉनेट के दो रूप हो गए–

1. इटैलियन सॉनेट, 2. इंगलिश सॉनेट।

इटैलियन सॉनेट मात्र चौदह पंक्तियों की एक कविता होती है, जिसमें एक स्वतंत्र विचार या भावना का वर्णन होता है। शिल्प की दृष्टि से इसके दो भाग होते हैं। प्रथम भाग, जो आठ पंक्तियों का होता है ऑक्टेव (Octave) कहलाता है। इसमें दो तुकबंदियां होती हैं। प्रथम पंक्ति का तुक चौथी, पांचवी और आठवीं पंक्ति में तथा दूसरी पंक्ति का तुक तीसरी, छठी और सातवीं पंक्ति से होता है। द्वितीय भाग, जिसके छह पंक्तियां होती हैं। सेस्टेट (Sestet) कहलाता है। इसमें भी प्रायः दो तुकबंदियां होती हैं। प्रथम पंक्ति का तुक तीसरी और पांचवीं पंक्ति से तथा दूसरी पंक्ति का तुक चौथी और छठी पंक्ति से होता है। ऑक्टेव (Octave) में वर्णित विचारों को सेस्टेट (Sestet) में संक्षिप्त करके नई दिशा प्रदान की जाती है। मिल्टन कृत सॉनेट– 'When the Assault was in-

tended to the city' इटैलियन सॉनेट का सुंदरतम उदाहरण है।

अंग्रेजी सॉनेट की रचना सर्वप्रथम इंग्लैंड में सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई। इसके सर्वप्रथम प्रयोक्ता स्योरी (Surrey) के नवाब एवं राजनीतिज्ञ थामस वाट तथा हेनरी हावर्ड हुए हैं। कालांतर में इसका श्रेय शेक्सपीयर को प्राप्त हुआ और उसके नाम पर इसे शेक्सपेरियन सॉनेट भी कहा जाने लगा। इसका शिल्प विधान इटैलियन सॉनेट से भिन्न है। इसमें चार–चार पंक्तियों के तीन चतुष्पद होते हैं तथा अंत में एक उपसंहारात्मक द्विपद भी होता है। प्रत्येक चतुष्पद में तो तुकबंदियां होती हैं। प्रथम पंक्ति का तुक तीसरी पंक्ति से तथा दूसरी पंक्ति का तुक चौथी पंक्ति से होता है। द्विपद की दोनों पंक्तियां में एक ही तुक होता है। शेक्सपेरियन सॉनेट में विचार या भाव का प्रवाह प्रथम पंक्ति से लेकर उपसंहारात्मक द्विपद तक उत्तरोत्तर विकसित होता रहता है। द्विपद पर पहुंचकर कवि के विचारों का चरमोत्कर्ष होता है, जहां कवि की व्यथा सार्वजनीन हो जाती है। इस संदर्भ में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए शेक्सपीयर की 'Remembernce' नामक सॉनेट का अध्ययन किया जा सकता है।

आगे चलकर एक अन्य प्रकार की सॉनेट भी प्रचलित हुई, जिसे स्पेंसेरियन सॉनेट कहा गया। इसके जन्मदाता सपेन्सर महोदय थे। इन्होंने शेक्सपीरियन सॉनेट के स्वतंत्र चतुष्पदों को परस्पर संबद्ध करके एक नवीन रूप प्रस्तुत किया। इन्होंने बारह पंक्तियों को संयुक्त कर उनमें चार तुकबंदियां रखीं। प्रथम पंक्ति का तुक तीसरी से, दूसरी पंक्ति का तुक चौथी, पांचवीं और सातवीं से, छठी पंक्ति का तुक आठवीं, नवीं और ग्यारहवीं से तथा दसवीं पंक्ति का तुक बारहवीं पंक्ति से होता है। उपसंहारात्मक द्विपद इस प्रकार के सॉनेट में भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। 'Ye Tradeful Merchants' नामक सॉनेट स्पेंसेरियन सॉनेट का उदाहरण है।

जहां तक सॉनेट के वर्ण्य विषय का प्रश्न है, इसकी विषयवस्तु के संबंध में कोई सीमा निश्चित नहीं है। एलिजाबेथ काल के अनेक कवियों ने इसे प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। शेक्सपीयर के सॉनेट्स में उनका प्रेम एक रहस्यमयी 'Dark Lady' के प्रति

व्यक्त किया गया है। शेक्सपीयर ने 154 सॉनेट्स लिखे हैं, जो मात्र प्रेमबद्ध नहीं हैं। मिल्टन ने सॉनेट को प्रेम की संकीर्ण परिधि से निकालकर उसे व्यापक आयाम प्रदान किए। इस प्रकार परवर्ती कवियों ने प्रेम के साथ–साथ अन्य अनेकानेक मानवीय भावनाओं, अनुभवों एवं सामयिक समस्याओं को भी सॉनेट का वर्ण्य विषय बनाया।

अपने आरंभिक स्वरूप में गजल भी प्रेमाभिव्यक्ति का माध्यम थी। गजल का शब्दिक अर्थ तो नारियों से प्रेम की बात करना ही माना गया है। गजल में प्रेम और सौंदर्य की भावनाएं वास्तविक एवं प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत की जाती रही हैं। प्रायः गजल में 5 से 17 शेर तक पाए जाते हैं, किंतु आजकल जो गजलें देखने में आ रही है, उनमें 5 से 7 शेर ही पाए जाते हैं। चूंकि संक्षिप्तता और प्रभावोत्पादकता गजल की प्रमुख विशेषता है, अतः शेरों का कम कर दिया जाना स्वाभाविक एवं न्यायोचित ही है। गजल की प्रत्येक पंक्ति को मिसरा कहते हैं तथा दो मिसरे मिलकर शेर बन जाते हैं। गजल के प्रत्येक शेर में एक स्वतंत्र भाव निहित होता है। गजल में तुकबंदी का मूल आधार रदीफ और काफिया होते हैं। हर शेर के अंत में जितने शब्द बार–बार आएं, उन्हें रदीफ कहते हैं। रदीफ के पहले एक ही ध्वनिवाले शब्दों को काफिया कहते हैं। जिगर मुरादाबादी का एक शेर देखिए–

'हर इक सूरत हर एक तस्वीर मुबहम होती जाती है,

इलाही क्या मिरी दीवानी कम होती जाती है।'

उक्त शेर में होती जाती है' रदीफ और तथा 'मुबहम' और 'कम' काफिया है।

प्रायः गजल के पहले शेर के दोनों मिसरे एक ही काफिया और रदीफ में होते हैं। इस प्रकार के शेर को मतला कहते हैं। गजल के अगले शेरों की अंतिम पंक्तियां प्रथम शेर में प्रयुक्त रदीफ और काफिया का निर्वाह करती चलती हैं। शेरों की प्रथम पंक्तियों में परस्पर तुकबंदी की कोई आवश्यकता नहीं होती, किंतु उन्हें गजल में प्रयुक्त बह (छंद) के अनुभव होना चाहिए। गजल का अंतिम शेर, जिसमें शायर या कवि का तखल्लुस अथवा उपनाम हो, 'मक्ता' कहलाता है।

इस प्रकार गजल के कथ्य एवं शिल्प का संक्षिप्त निरीक्षण करने के उपरांत यदि हम

सात शेरोंवाली गजल को प्रामाणिक गजल मानकर उसकी पंक्ति में निहित तुकबंदी का विचार करें तो पाएंगे कि प्रथम और द्वितीय पंक्तियों का तुक चौथी, छठी, आठवीं और चौदहवीं पंक्ति से होता है।

गजल के सफल प्रयोक्ताओं में वली से लेकर मीर, गालिब, जौक, दाग, अमीर मीनाई, बहादुरशाह जफर, जिगर मुरादाबादी, फिराक गोरखपुरी आदि प्रमुख हैं। हिंदी में जिन गजलकारों को सफलता मिली है, उनमें भारतेंदु बाबू, हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, निराला, दिनकर, शमशेरबहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार, त्रिलोचन शास्त्री आदि सर्वोपरि हैं।

तुलनात्मक दृष्टि से गजल मैड्रिगाल के अधिक समीप ठहरती है। गजल और मैड्रिगाल दोनों ही सौंदर्य एवं प्रेमयुक्त भावनाओं के माध्यम हैं। दूसरे शब्दों में वर्ण्य–विषय की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त समानता है। गेयता की दृष्टि से भी मैड्रिगाल और गजल एक–दूसरे के समीप हैं। इतना ही नहीं, गजलें तो अनेक राग–रागिनियों में स्वरबद्ध करके गाई जा रही हैं। संक्षिप्तता एवं प्रभावोत्पादकता का गुण भी मैड्रिगाल एवं गजल दोनों में समान रूप से विद्यमान है।

शिल्प की दृष्टि से दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि मैड्रिगाल में कम से कम 6 तथा अधिक से अधिक 13 पंक्तियां होती हैं जबकि प्रायः गजल में दस से लेकर चौदह पंक्तियां होती हैं। अपवादस्वरूप इससे कम और अधिक पंक्तियों वाली गजलें भी मिल जाती हैं। मैड्रिगाल में तीन तुकांत होते हैं, जबकि गजल में एक ही रदीफ और काफिया का निर्वाह तुकबंदी के रूप में होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिल्प की अपेक्षा कथ्य की दृष्टि से तथा शब्दों एवं भावों की कसावट के विचार से गजल मैड्रिगाल के अधिक निकट है।

अब हमें सॉनेट और गजल के तुलनात्मक स्वरूप पर विचार करना हैं। सॉनेट का वर्ण्य विषय भी प्रेम पर ही आधारित है। एजिलाबेथ काल के कवियों तथा शेक्सपीयर की सॉनेट्स में प्रेम का परिष्कृत स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। प्रेम की उत्पति हदय से होती है और प्रेम के क्षण सदैव के लिए अमर होते हैं। रोजेटी के अनुसार सॉनेट आत्मा की अमरता

द्वारा प्रदत स्मारक है। वह एक ऐसे क्षण का स्मारक है, जो बीत जाने पर भी अमर रह गया है–

'A sonet is a moments' memunet memorial from the soul's eternity to one dead death less hour'.

इस प्रकार सॉनेट का वर्ण्य–विषय प्रायः प्रेम ही रहा है। आगे चलकर मिल्टन ने इसके वर्ण्य विषय को व्यापक स्परूप प्रदान किया।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि गजल का वर्ण्य विषय भी प्रेम और सौंदर्य ही रहा है। कालांतर में हाली जैसे सुप्रसिद्ध समालोचक एवं शायर ने इसे नई दिशा प्रदान की और गजलों के माध्यम से सामाजिक, राष्ट्रीय, यथार्थपरक व व्यंग्यपरक भावनाओं को भी अभिव्यक्त किया जाने लगा।

निष्कर्षतः वर्ण्य विषय की दृष्टि से सॉनेट और गजल में पर्याप्त सामीप्य है। सॉनेट में 14 पक्तियां होती हैं गजल में भी प्रायः 14 पक्तियां या सात शेर होते हैं। सॉनेट में तीन भेद पाए जाते हैं। इटैलियन सॉनेट के दो भाग होते हैं। प्रथम आठ पंक्ति का ऑक्टेव (Octave) तथा द्वितीय छह पंक्ति का सेस्टेट (Sestet) कहलाता है। इसी प्रकार अंग्रेजी सॉनेट या शेक्सपेरियन सॉनेट में चार–चार पक्तियोंवाले तीन चतुष्पद तथा दो पंक्तिवाला एक द्विपद होता है।

गजल में सॉनेट जैसे भेद नहीं पाए जाते हैं। संपूर्ण गजल में दो–दो पंक्ति वाले प्रायः सात भाग होते हैं। प्रत्येक भाग को शेर कहते हैं।

तुकबंदी की दृष्टि से सॉनेट और गजल में पर्याप्त अंतर होता है। इटैलियन सॉनेट के ऑक्टेव (Octave) में प्रथम पंक्ति का तुक चौथी, पांचवीं और आठवीं तथा दूसरी पंक्ति का तुक तीसरी, छठी और सातवी पंक्ति से होता है। इसी प्रकार सेस्टेट (Sestet) में प्रथम पंक्ति का तुक तीसरी और पांचवी तथा दूसरी पंक्ति का तुक चौथी और छठी पंक्ति से होता है।

अंग्रेजी सॉनेट अथवा शेक्सपेरियन सॉनेट के तीन चतुष्पदों में प्रथम पंक्ति का तुक तीसरी तथा द्वितीय पंक्ति का तुक चौथी पंक्ति से होता है। अंत के द्विपद में एक ही तुक होता है। स्पेंसेरियन सॉनेट में स्वतंत्र चतुष्पदों को तुकबंदी के द्वारा परस्पर संबद्ध कर दिया गया है, जिसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। अंत का द्विपद तुकांत की दृष्टि से शेक्सपेरियन सॉनेट जैसा ही होता हैं।

पंक्तियों के अनुसार गजल में प्रथम और द्वितीय पंक्ति का तुक चौथी, छठी, आठवीं, दसवीं बारहवीं और चौदहवीं पंक्ति से होता है। शेष पंक्तियों के लिए तुकांत की आवश्यकता नहीं है। उन्हें बह के नियमानुसार चलना पड़ता है। वैसे गजल में रदीफ और काफिया के अनुसार तुकांत का निर्वाह होता है।

गजल और सॉनेट में एक और महत्वपूर्ण अंतर होता है। गजल का प्रत्येक शेर भाव की दृष्टि से अपने में स्वतंत्र होता है। दूसरे शब्दों में गजल के प्रत्येक शेर में एक स्वतंत्र भाव निहित होता है, जबकि संपूर्ण सॉनेट का एक ही केंद्रीय भाव होता है। स्पष्ट रूप से हम यह कह सकते हैं कि गजल शेरों के रूप में अनेक भावों का संकलन है, जबिक सॉनेट केवल एक ही भाव को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं।

हिन्दी में सॉनेट शैली में चतुर्दशपदी गीत लिखने की जो परंपरा चली है, वह वास्तव में तो सॉनेट की कसौटी पर ही खरी उतरती है और न ही हम उसे गजल की संज्ञा दे सकते हैं। हां, अपवाद रूप में प्रसाद, निराला, प्रभाकर माचवे, रामइकबाल सिंह राकेश, त्रिलोचन शास्त्री आदि को हिन्दी सॉनेट लिखने में अवश्य सफलता प्राप्त हुई है। निरालाजी ने विजय लक्ष्मी पंडित, महादेवी वर्मा, संत रविदास आदि पर अत्यंत रोचक चतुर्दशपदियां या हिन्दी सॉनेट लिखे हैं, जो 'अणिमा'में संकलित हैं।

अंततः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गजल, मैड्रिगाल एवं सॉनेट के मध्य कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से अनेक समानताएं एवं विभिन्नताएं पाई जाती हैं।

वर्ण्य विषय गेयता, संक्षिप्तता एवं प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से गजल मैड्रिगाल से अधिक निकट है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से सॉनेट भी गजल के निकट है, किंतु गजल अनेक

स्वतंत्र भावों का संकलन है, जबकि सॉनेट एक ही केंद्रीय भाव की अभिव्यक्ति करता है। शिल्प की दृष्टि से गजल मैड्रिगाल और सॉनेट मे आंशिक सामीप्य के अतिरिक्त कोई महत्त्वपूर्ण समानता दृष्टिगोचर नहीं होती।

(घ) गजल और गीतिका

एक छंद के रूप में जिस गीतिका की चर्चा पिंगलशास्त्रियों ने की है, उसके प्रत्येक चरण में छब्बीस मात्राएं होती हैं। प्रत्येक चरण के अंत में लघु गुरू होता है। चौदह और बारह मात्राओं पर यति होती है। इसकी तीसरी, दसवीं और चौबीसवीं मात्राएं सदा लघु रहती हैं। वास्तव में यह 'गीतिका' छंदशास्त्र के नियमों के आबद्ध, अभिव्यक्ति की एक शैली है, जबकि गजल उर्दू–फारसी छंदशास्त्र के अनुरूप एक विधा है, जिसके माध्यम से हृदयगत भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है।

एक अन्य अर्थ में 'गीतिका' का प्रयोग संक्षिप्त गीतों, प्रगीतों या लघु गीतों के रूप में किया जा सकता है। साधारण रूप में सुख–दुःख की भाववेशमयी अवस्था विशेष या गिने–चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। दूसरे शब्दों में गीत यह विधा है, जिसके माध्यम से कवि अपने अंतर की पीड़ा एवं भावानुभूतियों को नपे–तुले शब्दों में इतने प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करता है कि उसकी पीड़ा जन–जन की पीड़ा बन जाती है।

यद्यपि हिंदी साहित्य में विस्तृत आयामवाले गीत भी मिलेंगे, किंतु चूंकि संक्षिप्तता गीत की विशेषता है, अंत उन्हीं गीतों को सफलता प्राप्त होती है, जो संक्षिप्त होते हुए भी तीव्रानुभूति कराने में सक्षम हों। ऐसे ही संक्षिप्त गीतों को कभी–कभी लघु गीत या गीतिका की संज्ञा दे दी जाती है। 'निशा–निमंत्रण' में संकलित बच्चनजी के अति संक्षिप्त गीत ऐसे ही हैं। इन्हें लघु गीत या गीतिका कहा जा सकता है। इन गीतों का मुख्य वर्ण्य विषय प्रेम का वियोग पक्ष है, क्योंकि यह कवि की प्रथम पत्नी के देहावासन के पश्चात की मनःस्थिति के हैं, जिनमें पीड़ा की छटपटाहट, विरह–व्याकुलता, शोक एवं अवसाद के मिले–जुले स्वर मुखरित होते हैं। संक्षिप्तता इन गीतों की मूल विशेषता है। यह गीत तेरह पंक्तियों के हैं।

प्रत्येक गीत में चार–चार पंक्तियोंवाले तीन पद हैं। प्रत्येक गीत में एक स्वतंत्र भाव निहित हैं। गीत के तीसरे पद में गीत का मर्म अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाता है। इस संदर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है–

'बीत चली संध्या की बेला।

धुंधली प्रति पल पड़ने वाली,

एक रेख में सिमटी लाली,

कहती है, समाप्त होता है सतरंगे बादल का मेला।

बीत चली संध्या की बेला।।

नभ में कुछ द्युतिहीन सितारे,

मांग रहे हैं हाथ पसारे,

रजनी आए, रवि किरणों से हमने है दिन भर दुःख झेला।

बीत चली संध्या की बेला।।

अंतरिक्ष में आकुल आतुर,

कभी इधर उड़, कभी उधर उड़,

पंथ नीड़ का खोज रहा है, पिछड़ा पंछी एक अकेला।

बीत चली संध्या की बेला।'

उपर्युक्त गीत में संध्या के पश्चात आनेवाली रात्रि के दार्शनिक निष्कर्ष उसकी व्याकुलता से प्रतीक्षा और शोक एवं अवसादपूर्ण वातावरण का चित्रण किया गया है। गीत के अंतिम चरण में मानो कवि ने एक अकेले पक्षी के माध्यम से अपनी मनःस्थिति को प्रकट कर दिया है।

बच्चनजी की इन गीतिकाओं की भावभूमि परंपरागत गजलों के समकक्ष ठहरती है।

दानों का ही वर्ण्य विषय मूल रूप से प्रेम पर आधारित है। संक्षिप्तता की दृष्टि भी वह गीतिकाएं गजल के आसपास दिखाई देती हैं। औसत रूप में गजल लगभग चौदह पंक्ति की होती है। बच्चनजी की यह गीतिकाएं भी दस या तेरह पंक्तियों के लगभग हैं। जहां तक छंदशास्त्र एवं शिल्पगत विशेषता का प्रश्न है, इस दृष्टि से दोनों में पर्याप्त वैषम्य दृष्टिगत होता है, जबकि गीतिका के सभी पद मिलकर एक केंद्रीय भाव की पुष्टि करते हैं। गजल उर्दू–फारसी छंद–शास्त्र के नियमों में आबद्ध रहती है जबकि गीतिका की अपनी पृथक शिल्पगत विशेषताएं हैं।

सुप्रसिद्ध कवि एवं नाटककार श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने अपनी काव्य–कृतियों 'रूप–दर्शन' एवं 'रूप–रेखा' में क्रमशः 139 व 152 गजलें प्रस्तुत की हैं। इन्हें स्वयं कवि ने गजलों की संज्ञा दी है, किंतु गजल की शिल्पगत विशेषताओं की दृष्टि से इनका अध्ययन करने पर ये गजल की कसौटी पर खरी नहीं उतरती हैं। उदारहणस्वस्प इस गजल को ही ले लें–

'एक मधुरता अपरिचित मद पिला दिल को गई,
एक आंचल उड़ गया था, पास से अनजान में,
एक हल्की–सी हवा थी जो खिला दिल को गई।
पी लिया मैंने गरल छवि की नजर का शौक से,
वह हलाहलमय नजर थी जो जिला दिल को गई।
ढालने में हाथ कांपे जाम में छलकी सुरा।
एक प्यारी–सी अदा थी जो हिला दिल को गई।
याद मदिरा की न आती याद आती है नजर,
एक मीठे दर्द से जो है मिला दिल को गई।'

उपर्युक्त गजल में चार शेर हैं, जिनमें रदीफ और काफिया का विधिवत प्रयोग किया गया है। यहां पर 'दिल को गई' रदीफ तथा 'पिला', 'खिला', 'जिला', 'हिला', 'मिला' में

काफिया का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। बह की दृष्टि से भी गजल की कसौटी पर खरी उतरती है। एक विशेष दोष जो प्रस्तुत गजल में है, वह है मतला का अभाव। हम पहले कह चुके हैं कि मतला गजल के प्रथम शेर को कहते हैं कि जिनकी दोनों पंक्तियों में एक ही रदीफ और काफिये का निर्वाह होता है। गालिब की एक गजल के मतले से यह बात स्पष्ट हो जाएगी–

'दर्द मिन्नत–कशे–दवा न हुआ,

मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ।'

इससे गजल में जान आ जाती है और उसका काव्यगत सौंदर्य बढ़ जाता है। उपर्युक्त प्रेमीजी की गजल में मतला के स्थान पर गीत या गीतिका के ढंग पर केवल एक पंक्ति ही है, जिसका तुकांत अगले चारों शेरों की अंतम पंक्तियों में मिलाया गया है। प्रेमी जी को दोनों काव्यकृतियों में इसी प्रकार की गजलें संगृहीत हैं। वास्तव में मतला के अभाव में इन्हें हम पूर्ण रूप से गजल नहीं कह सकते, क्योंकि जिस प्रकार के सिर के अभाव में शरीर का अस्तित्व नहीं रह जाता, वैसे ही मतला के अभाव में गजल का सौंदर्य नष्ट हो जाता है, अतः कवि के आग्रह को स्वीकारते हुए हम इन्हें भले ही गजल मान लें, किंतु वास्तव में ये गजलें नहीं हैं। इन्हें संक्षिप्त गीत या गीतिका की संज्ञा देना अधिक उचित होगा। गीतिका के रूप में यह रचनाएं गजल की काफी–समीप हैं।

इधर पत्र–पत्रिकाओं में गजलिका या गीतिका के नाम से अनेक रचनाएं प्रकाशित होने लगी हैं, जो न तो गजलिका हैं और न गीतिका ही हैं। गजलिका नामक छंद तो आज तक प्रकाश में नहीं आया है। संभव है कवियों ने गजल रूपी नायिका को नए परिधानों से आवृत कर गजलिका के रूप में प्रस्तुत किया हो, क्योंकि यह उनकी अपनी विशेषता होती है। गीतिका भी साधारण अर्थों में छंद विशेष या संक्षिप्त गीत की परिचायिका हैं अतः यह रचनाएं वास्तव में इस श्रेणी की नहीं हैं।

'सुकवि विनोद' मासिक पत्रिका के अनेक अंकों में इस प्रकार की गीतिकाएं प्रकाशित हुई हैं, जिन्हें हम गीतिका न कहकर गजल या हिंदी गजल कह सकते हैं। वास्तव में

गजल का हिंदी अनुवाद गीतिका नहीं। फिर जब हिंदी में गजल विधा का प्रयोग होने ही लगा है, गीत ने गजल की ओर मैत्री का हाथ बढ़ा ही दिया है तो फिर नाम को लेकर यह भेदभाव क्यों? हिंदीवालों से यह अपेक्षा है कि वह हिंदी भाषा में गजलें लिखें, किंतु गजल या गीतिका के भेदभाव के चक्कर में न पड़ें। हिंदी भाषा में लिखी गई गजलों को गजल ही रहने दें। फिर भी यदि उन्हें संतोष न हो तो हिंदी गजल कह लें, किंतु गजल को गीतिका कहना किसी भी दशा में उचित नहीं प्रतीत होता। एक उदाहरण के द्वारा हम इसे स्पष्ट करना चाहेंगे–

'मन के आंगन में, प्रणय भाव जगाए रखिए,
कल के स्वागत की व्यवस्था भी बनाए रखिए।
रीति अनुबंध की चलती ही रही है अब तक,
बन चतुर इससे स्वयं को तो बचाए रखिए।
आनेवाली है उषा फिर प्रभात भी होगा,
गोद कलियों धरा की तो सजाए रखिए।
होने वाला है अनायास बड़ा परिवर्तन,
शक्ति संचय के लिए हाथ बटाए रखिए।
फिर कोई एक भगीरथ है बढ़ा श्रम के हित,
युक्ति सामर्थ्य के शंकर को मनाए रखिए।
तपनेवाला है दिवाकर भी गगन मंडप में,
कर्म वेदी को सरल ध्येय से छाए रखिए।'

कवि महेंद्र कुमार शास्त्री 'सरल' की उपर्युक्त गीतिका गजल की कसौटी पर खरी उतरती है। छह शेर की इस गजल में मतला और मक्ता यथास्थान विद्यमान हैं। मक्ता में कवि का उपमान सरल प्रयुक्त हुआ है। यहां पर 'रखिए' रदीफ तथा 'जगाए', 'बनाए', 'सजाए', 'बटाए', 'मनाए' तथा 'छाए' काफिया के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

एक अन्य गीतिका कवि वेद हिमांशु की है, जो अत्यंत संक्षिप्त होते हुए भी अनुभूति की तीव्रता एवं उक्ति–वैचत्र्य से परिपूर्ण है।

'उनको हम पर इस कदर प्यार आया है,

नशा उतरने से पहले खुमार आया है।

वक्त की डाक ने दी दर्द की बैरंग चिट्ठी

हम समझते इसे खुशियों का तार आया है।

उनके होठों को छुआ भी नहीं मैंने, फिर भी,

जिक्र में नाम मेरा बार–बार आया है।

शक के तीरों के हो शिकार हम संभल हैं गए,

तुम ये समझो कि प्रीति में निखार आया है।''

हम देखते हैं कि उक्त गीतिका में चार शेर हैं। रदीफ के रूप में 'आया है' तथा काफिया के रूप में 'प्यार', 'खुमार', 'तार', 'बार', 'निखार' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। बह का भी सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। कथ्य भी परंपरागत गजलों से प्रभावित है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गीतिका छंद एवं संक्षिप्त गीतों या लघु गीतों से अभिप्राय रखनेवाली गीतिका का गजल से कोई साम्य नहीं है। बच्चनजी के संक्षिप्त गीत, जिन्हें हम गीतिका भी कह सकते हैं, कथ्य की दृष्टि गजल के समीप रखे जा सकते हैं, किंतु शिल्प की दृष्टि से उनमें पर्याप्त असमानता है। कवि हरिकृष्ण प्रेमी की गजलें वास्तव में गजलें ही होतीं, यदि उनमें गजल की भांति प्रथम शेर मतला के रूप में प्रयोग किया जाता। ऐसा न करके कवि ने अपनी गजलों में प्रथम शेर या मतला के स्थान पर गीति शैली में एक पंक्ति का प्रयोग टेक के रूप में प्रयोग किया है। अतः इस त्रुटि के कारण हम इन गजलों को गीतिका के रूप में ही अधिक सार्थकता प्रदान कर सकते हैं। इसके विपरीत इधर पत्र–पत्रिकाओं में कुछ ऐसी गीतिकाएं प्रकाशित हो रही हैं, जो कथ्य एवं शिल्प दोनों की दृष्टि से गजल की कसौटी पर खरी उतरती हैं। संभवतः गजल का हिंदीकरण करने के उद्देश्य ये कवियों ने इन्हें गीतिका की संज्ञा प्रदान की है। प्रसिद्ध कवि

नीरज ने भी इसी रूप में मान्यता दी है। अन्य ऐसे कवियों में महेंद्रुमार शास्त्री सरल, ओंकार तिवारी,वेद हिमांशु के अतिरिक्त रंजन सरोज, महेश चंद्र मिश्र विधु का उल्लेख किया जा सकता है। वास्तव में इनकी गीतिकाएं गजलें ही हैं, जो शुद्ध हिंदी भाषा में ही लिखी गई हैं। कहीं–कहीं हिन्दह–उर्दू मिश्रित शब्दावली भी आ गई है। यह गीतिकाएं गजल के इतने समीप हैं कि इन्हें गजल अथवा हिन्दी गजल के नाम से संबोधित किया जा सकता है। ऐसे कवियों को चाहिए कि वे गजल का हिन्दी अनुवाद गीतिका न करके गजल को गजल ही रहने दें। यदि हिन्दीकरण करना ही चाहें तो हिन्दी गजल के रूप में इन्हें मान्यता प्रदान कर सकते हैं। सच तो यह है कि आजकल हिंदी में गजलें बहुतायत से लिखी जा रही हैं। अतः ऐसी दशा में गजल को गीतिका से अलग रखना ही होगा, क्योंकि गजल गीतिका नहीं हो सकती और गीतिका गजल नहीं हो सकती। वस्तुतःदोनों के कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से अनेक समानताएं हैं। फिर भी अपने–अपने स्थान पर दोनों का महत्त्व असंदिग्ध है।

¼3½ izc/kd dk mnn'; ,o {k= dk foLrkj

उर्दू–फारसी से जो काव्यशैलियां हिंदी में आई, उनमें गजल सबसे अधिक लोकप्रिय हुई। इसका मुख्य कारण उनकी संक्षिप्तता एवं भाव गांभीर्य है। संगीत के नियमों में आबद्ध होकर तो गजल अवर्णनीय आनंद की सृष्टि करती है। सवैया, दोहा और बरवै जैसे छंद भी संक्षिप्तता एवं भावगांभीर्य के लिए प्रसिद्ध हैं।

उर्दू–फारसी की गजलों में भारी–भरकम शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया गया है, जिनके अर्थबोध के लिए शब्दकोश ही एकमात्र आश्रय रह जाता है। फारसी, गजलकारों में रोदकी, फिरदौसी, अविसेन्ना, हाफिज, शीराजी, जामी आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

उर्दू में गजलें फारसी से आयातित की गई हैं। उत्तर–मुगलकाल में उर्दू का विकास तथा प्रचार–प्रसार बड़े पैमाने पर हुआ। अनेक कवियों ने उर्दू काव्य शैलियों में रचना की। बादशाहों की महफिलें सजाने के लिए गजलें ही अधिक उपयुक्त पाई गईं, क्योंकि वे संगीत की राग–रागिनियों में आबद्ध करके कोकिल कंठी गायिकाओं द्वारा गाई जा सकने योग्य थीं। इन गजलों की परंपरा की भावभूमि सौंदर्य एवं प्रेम की परिधि में सीमित थी। उर्दू

गजल की परंपरा में अमीर खुसरो एवं वली दक्खिनी से लेकर खाने आरजू, मीर, सौदा, दाग, गालिब, इकबाल आदि अनेक कविगण आते हैं। आधुनिक उर्दू गजलकारों में फिराक गोरखपुरी, फैज अहमद फैज, जोश मलिहाबादी, डॉ. खुर्शीदुल इस्माल, कतील शिफाई, डॉ. मायाराजे खन्ना आदि शताधिक नाम आते हैं। उर्दू के दिवंगत गजलकारों में शाह अमीजाबादी, आशी गाजीपुरी, हसरत मोहानी, यगाना चंगेजी, फानी बदायूंनी, असगर गोंडवी, जिगर मुरादाबादी, राज बरेलवी, जैब बरेलवी, साहिर लुधियानवी आदि प्रसिद्ध हैं।

इसके अतिरिक्त उर्दू पत्र–पत्रिकाओं में आए दिन पर्याप्त गजल सामग्री प्रकाशित होती रहती है।

उर्दू में गजलों की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर हिंदी की पत्र–पत्रिकाओं तथा काव्य संकलनों में गजलें प्रकाशित होने लगीं। इसे हम हिंदी में गजलों का श्रीगणेश कह सकते हैं। यह गजले पूर्णतया उर्दू गजलें थीं, किंतु देवनागरी लिपि में प्रकाशित होने के कारण उर्दू न जाननेवाले पाठक शब्दकोश एवं पाद टिप्पणियों की सहायता से उन्हें हृदयंगम करने में सक्षम हो सके। अनेक उर्दू कवियों के दीवान हिंदी में प्रकाशित हुए। इस दिशा में सर्वाधिक प्रशंसनीय कार्य सुप्रसिद्ध संपादक श्री प्रकाश पंडित ने उर्दू के अनेक सुप्रसिद्ध कवियों के साहित्य का सफल संपादन एवं प्रकाशन करके किया। रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्या प्रसाद गोयलीय आदि के प्रयास भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

इस प्रकार उर्दू–फारसी गजल की सरिता हिंदी की काव्यभूमि पर बह निकली। अनेक हिंदी कवियों एवं पाठकों ने इसमें अवगाहन किया। अनेक समालोचकों का मत है कि जो आनंद उर्दू गजल अपनी लय, लोच एवं प्रभावोत्पादकता के माध्यम से प्रदान करती है, वह हिंदी गजल प्रदान कर सकने में असमर्थ है। ऐसे सुधीजन यदि विकल साकेती, चंद्रसेन विराट रामावतार त्यागी, भवानी शंकर, विद्यासागर वर्मा आदि की गजलें पढ़े तो उन्हें अपनी पूर्व धारणा में परिवर्तन करना होगा।

कहना न होगा कि शुद्ध हिंदी भाषा में आजकल जितनी सफलता से गजलें लिखी जा रही हैं, वह हिंदी वाङ्मय के लिए निश्चय ही एक गौरव का विषय है।

यद्यपि कुछ कविगण गजलों के माध्यम से उर्दू और हिंदी के मध्य सेतु का कार्य कर

रहे हैं। स्व. दुष्यंत कुमार, शमशेरबहादुर सिंह आदि की गजलें उर्दू गजलों का मात्र हिंदी लिप्यंतर ही कही जा सकेंगी। सुविधा की दृष्टि से इन्हें हिंदुस्तानी गजलें भी कह सकते हैं। कुछ भी हो, उर्दू–फारसी गजल छंद का प्रभाव हिंदी कविता पर आंरभ से ही पड़ा। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र से लेकर आज तक निरंतर हिंदी में गजलें लिखी जाती रही है। आज की हिंदी गजलें अपना पारंपरिक कलेवर त्यागकर समसायिक संदर्भों एवं यर्थाथवादी दृष्टिकोण से जुड़ गई हैं। संभवतः इसीलिए हिंदी गजलों का महत्त्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। निस्संदेह हिंदी गजल की संभावनाएं एवं भविष्य उज्ज्वल है। भारतेंदु युग से लेकर आज तक के हिंदी साहित्य का अवलोकन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हिंदी में अपार गजल साहित्य यत्र–तत्र बिखरा पड़ा है, जिसे सहेजना–संवारना हिंदी सेवियां का दायित्व है।

गजल साहित्य पर स्फुट रूप से प्रकाश डालनेवाली कुछ पुस्तकें अवश्य सामने आई हैं, किंतु उनकी सामग्री एकांगी, संक्षिप्त एवं विषय व्यापकता से परे है। चूंकि हिंदी में गजलें उर्दू–फारसी से आई हैं, अतः गजल के विषय में प्रामाणिक सामग्री हमें उर्दू–फारसी से ही प्राप्त हो सकती है। इस दृष्टि से जब हम उक्त भाषाओं के इतिहास विषयक ग्रंथों की खोज करते हैं तो कुछ पुस्तकें ही उपलब्ध होती हैं। उपलब्ध पुस्तकों में बाबू ब्रजरत्न दास की पुस्तक 'उर्दू साहित्य का इतिहास' में उर्दू भाषा की उत्पत्ति से लेकर विभिन्न साहित्य केंद्रों में विकसित उर्दू कविता एवं गद्य का इतिहास प्रस्तुत किया गया है, किंतु कहीं भी गजल के विषय में स्वतंत्र रूप से कोई चर्चा नहीं की गई है।

दूसरे पुस्तक उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि एवं आलोचक डॉ. फिराक गोरखपुरी की 'उर्दू भाषा और साहित्य' देखने को मिलती है। इस पुस्तक में उर्दू भाषा और साहित्य का प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, किंतु गजल की चर्चा, 'गजल का पुनरुत्थान' शीर्षक के अंतर्गत मात्र 23 पृष्ठों में ही की गई है। इसके अतिरिक्त 'काव्यशास्त्र संबंधी कुछ बातें' शीर्षक लेख में भी गजल के विषय में जो सैद्धांतिक सामग्री प्रस्तुत की गई है, वह भी अति संक्षिप्त, एकांगी एवं अपर्याप्त है।

उर्दू लिपि में श्री रामबाबू सक्सेना की पुस्तक 'तारीख अदबे–उर्दू' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, किंतु उसमें भी गजल के विषय में सामग्री उपलब्ध नहीं होती।

उर्दू साहित्य के सुप्रिसद्ध समालोचक एवं दिशावाहक मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली की उर्दू शेर–ओ–शायरी पर उर्दू लिपि में 'मुकद्दमा–ए–शेर–ओ–शायरी' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें काव्यशास्त्र के संबंध में अनेक नई मान्यताओं की स्थापना की गई। बाद में इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। मौलाना हाली उर्दू साहित्य में पुनर्जागरण के कवि एवं समीक्षक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक में गजल को परिभाषित करते हुए इसके परंपरागत वर्ण्य विषय में परिवर्तन कर उसे जीवन की सामान्य अनुभूतियों से संबद्ध करने पर बल दिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हाली की पुस्तक में गजल पर अन्य पुस्तकों की अपेक्षा अधिक सामग्री मिलती है। गजल के वर्ण्य विषय एवं शैली से संबंधित अनेक अछूते प्रश्नों को उठाया गया है, किंतु गजल की उत्पत्ति से लेकर आज की गजल के मध्य की विकास–यात्रा का प्रस्तुतीकरण नहीं हुआ है।

आंशिक रूप से गजल के विषय में सामग्री हमें रामनरेश त्रिपाठी कृत 'उर्दू जबान का संक्षिप्त इतिहास' में भी मिलती है।

उर्दू–फारसी गजल के साथ–साथ हिंदी गजल पर भी चिंतन करनेवाला डॉ. नरेश का शोध प्रबंध 'आधुनिक हिंदी कविता में उर्दू के तत्त्व' इस दिशा में नए तथ्यों का उद्घाटन करता है। उर्दू कविता में छंद, गजल, मश्नवी, मरसिया आदि का हिंदी कविता में किस प्रकार आगमन हुआ तथा उर्दू–फारसी गजल किस प्रकार हिंदी में अपना स्थान बना सकी, इन सब प्रश्नों का समाधान उक्त शोध प्रबंध में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

इतना ही नहीं डॉ. नरेश ने भारतेंदु युग से लेकर आज तक की हिंदी गजल की विकास यात्रा का सतही तौर पर वर्णन किया है। चूंकि उनका विषय गजल तक की सीमित न होकर व्यापक रूप से आधुनिक हिंदी कविता में उर्दू तत्त्वों की खोज करना है, अतः वे उर्दू–फारसी गजल से लेकर आज तक की हिंदी गजल का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत न कर सके, फिर भी उनका शोध प्रबंध उर्दू–हिंदी की काव्य शैलियों के अध्येताओं के लिए नितांत ही उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त डॉ. आशा किशोर के शोध प्रबंध 'आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य का

स्वरूप और विकास' तथा रूद्र काशिकेय कृत 'गजलिका' की भूमिका में गजल विषयक स्फुट सामग्री प्राप्त होती है, किंतु वह गजल के विद्यार्थियों के लिए ऊंट के मुंह में जीरे के समान है।

अभी कुछ समय पूर्व चानन गोविंदपुरी कृत 'गजलः एक अध्ययन' नामक शोधपरक ग्रंथ का प्रकाशन हुआ है, जिसमें विद्वान लेखक ने गजल के विभिन्न रंगों को, उसकी विशेषताओं को तथा अन्य काव्य–शैलियों से उसके अंतर को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। लेखक के अनोखेपन और ताजगी को ही गजलगोई का पहला लक्षण माना है। गजल में तासीर अर्थात असर और प्रभाव भी अपना सर्वोच्च महत्त्व रखते हैं। तासीर या प्रभाव के अभाव में गजल निरर्थक–सी प्रतीत होती है। दूसरे शब्दों में लेखक ने गजल की तासीर को ही उसकी आत्मा माना है।

यद्यपि उर्दू में गजल के विषय में काफी कुछ कहा गया है, किंतु हिंदी में संभवतःयह अपने ढंग की प्रथम पुस्तक है। प्रथम पुस्तक होने के कारण लेखक को एक अवसर मिला था कि हिंदी गजल के संबंध में व्यापक चर्चा करता तथा हिंदी गजल के गुण–दोषों को अपने लेखन का लक्ष्य बनाता। इस पुस्तक में 'हिंदी गजल' शीर्षक अध्याय को विद्यमान है, किंतु उससे हिंदी गजल की संपूर्ण क्या, आंशिक पहचान भी नहीं बनती। हिंदी में गजल का शुभारंभ करनेवालों में भारतेंदु एवं उनके पूर्ववर्ती कबीर आदि का नाम भी आता है, किंतु चानन गोविंदपुरी ने अपने मतानुसार जयशंकर प्रसाद को हिंदी का प्रथम गजलकार कवि माना है। इतना ही नहीं, उन्होंने हिंदी के कतिपय अन्य कवियों को गजलकारों के रूप में प्रस्तुत किया है तथा अनेक उर्दू गजलों को देवनागरी लिपि में प्रकाशित करके हिंदी गजल के रूप में मान्यता दी है।

लेखक ने हिंदी गजल संबंधी अध्याय के अतिरिक्त शेष लगभग सभी अध्याय पूर्ण आस्था, मनोयोग और रुचि के साथ लिखे हैं, जो गजल के विविध पक्षों को भली–भांति प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार हमें उर्दू–फारसी से लेकर हिंदी भाषा तक गजल की एक महान परंपरा प्राप्त होती है। यह एक ऐसा विषय है, जिस पर अनेक शोध प्रबंध लिखे जा सकते हैं, किंतु

आश्चर्य है कि गजल की महान परंपराओं एवं संभावनाओं के होते हुए भी समालोचकों ने इस पक्ष को अछूता ही छोड़ दिया। इसी कारण उर्दू–हिंदी काव्य की एक महत्त्वपूण विधा का समुचित मूल्यांकन नहीं हो सका।

आज आवश्यकता इस बात की है कि मां भारती के गर्भ से फिर किसी रामचंद्र शुक्ल का श्यामसुंदर दास का उदय हो, जो उर्दू–फारसी गजल के लेकर आधुनिक हिंदी गजल तक का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत कर सके।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का उद्देश्य उर्दू–फारसी में गजल के उद्भव से लेकर आधुनिक हिंदी गजल के स्वरूप तथा विकास का प्रामाणिक तथा शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत कर तत्संबंधी निष्कर्ष तथा मूल्यांकन के मध्य अपनी मान्यताएं स्थापित करना है। सुविधा की दृष्टि से शोध प्रबंध को क्षेत्र विस्तार सात अध्यायों में किया गया है। प्रथम दो अध्याय के अंतर्गत गजल को विस्तार से परिभाषित करते हुए उर्दू–फारसी गजल का संक्षिप्त इतिहास तथा अन्य काव्य शैलियों से अंतर प्रस्तुत किया गया है। अगले अध्याय में हिंदी गजल के उद्भव से संबंधित शोधपूर्ण सामग्री का प्रस्तुतीकरण हुआ है। अन्य अध्यायों में हिंदी गजल का स्वरूप और विकास, उपलब्धियां तथा शिल्प विधान प्रस्तुत किया गया है। हिंदी गजल की उपलब्धियों के अंतर्गत हिंदी गजलकारों के साहित्य का समुचित मूल्यांकन करके हिंदी गजल साहित्य के इतिहास में उनका स्थान सुनिश्चित किया गया है। इतना ही नहीं, उपलब्ध सामग्री के आधार पर हिंदी गजलों को संभावनाओं एवं इसके भविष्य पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। हिंदी गजल के उन्नयन में सहायक पत्र–पत्रिकाओं के योगदान को भी स्वीकारा गया है। वास्वत में गजल इतनी लोकप्रिय विधा सिद्ध हुई है कि उसका चलचित्र जगत में भी भव्य स्वागत हुआ है। चलचित्र जगत के माध्यम से भी अनेक साहित्यिक तथा स्तरीय गजलें सम्मुख आई हैं, जिनकी चर्चा शोध प्रबंध में यथास्थान की गई है।

इस प्रकार मैंने प्रस्तुत शोध प्रबंध में उर्दू–फारसी से आधुनिक हिंदी गजल तक की अविच्छिन्न परंपरा का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जो संभवतः इस दिशा में नए तथ्यों एवं रहस्यों का उद्‌घाटन कर सकेगा।

nl jk v/;k;

ledkyhu xty ds çe[k gLrk{kj - ¼1975 ls vc rd ½

nl jk v/;k;

ledkyhu fgUnh xty d iez[k gLrk{kj

समकालीन हिंदी गज़लों को जिन अनेकानेक ग़ज़लकारों ने उंचाईयां प्रदान किया है ,उसे नए तेवर दिए है और भारतीय जन मानस में प्रतिष्ठित कियाहै, उन गज़लकारो की एक लम्बी श्रृंखला हमारे सामने उपस्थित है ,नये गज़लकार या समकालीन गज़लकार हिंदी ग़ज़ल को नये तेवर ,नई तड़प,नयी चिंतन,एक प्रश्नाकूलता से लबरेज़ करते हए निरंतर दिखाई देते है । पिछले 40 वर्षों में (1975—2017) हिंदी ग़ज़ल और गज़लकारो में हिंदी ग़ज़ल के प्रति जो अनुराग उत्पन्न हुआ है वह वर्णनातीत है, आज की हिंदी ग़ज़ल का सम्बन्ध आज के भयानक और निर्लज्ज यथार्थ से है ,अमूर्त और वायवीव कल्पनाओं से नहीं मसलन भूमंडलीकरण के विभिन्न रूपों ,प्रभावों और दुष्प्रभावों से उपजे विमर्श को अपने शब्द देते हुए आज के गज़लकार जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यों का समर्थन कर रहे है । आज के गज़लकार समानधर्मा है इसलिए इनकी ग़ज़लों में भाषा और चेतना के नए आयाम प्रस्तुत हो रहे है, उन्हें आज समझने की आवश्यकता है ।

यहाँ इस अध्याय में हमने ग़ज़ल और ग़ज़लकारो के व्यक्तित्व और कृतित्व पर परकाश डालने का प्रयास किया है, हिंदी ग़ज़ल विधा में हिंदुस्तान के चुनींदा शायरो और गज़लकारो के अध्ययन के दौरान हमने पाया की इन गज़लकारो ने पुरानी चली आ रही परम्परा के निस्तारण में और नये आयाम जोड़ने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन किया है ,इस अध्याय से यह स्पष्ट हो जायेगा की समकालीन गज़लकारो के रचनात्मक विकास को कैसे समझा और परखा जाये ,शोध के दौरान इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है की गज़लकारो के व्यक्तित्व और कृतित्व के वर्णन में ग़ज़ल के शिल्प पर कोई विशेष टिपण्णी नहीं की गयी है बल्कि कथ्य और समकालीनता को परिभाषित करते हुए प्रासंगिकता का विशेष ध्यान रखा गया है —

n";r dekj

दुष्यंत कुमार समकालीन हिंदी ग़ज़ल के अगुआ मने जाते है , य।पि दुष्यंत कुमार से पूर्व में हिंदी ग़ज़लों में कहीं न कहीं परम्परा ही मुखरित थी । परन्तु जब दुष्यंत कुमार की गज़लें प्रकाश में आयी तो निश्चित तौर पर नया तेवर ,नया आक्रोश,व्यंग था ,आम आदमी की व्यथा थी ,अतृप्ति थी ,असंतोष था ,सुगबुगाहट, छटपटाहट और, नयेपन का शंखनाद था काव्य की दुनियां में परिवर्तन की मशाल थी । 9 सितम्बर 1933 को राजपुर नावदा जिला बिजनौर उत्तर–प्रदेश में एक ज़मींदार परिवार में दुष्यंत कुमार का जन्म हुआ थाथा सीएफ 42 वर्ष की अवस्था में ३० दिसम्बर १६७५ भोपाल में आपका देहांत हो गया था ,आकशवाणी और सरकार के भाषा विभाग में कार्यरत थे दुष्यंत कुमार की कुल ११ पुस्तकें प्रकाशित है सूर्य का स्वागत १६७५,आवाजों के घेरे१६६२,जलते हुए वन का वसंत १६७०,साये में धुप १६७५,एक कंठ विषपायी१६८४,छोटे छोटे सवाल १६८४ और आँगन में एक वृक्ष ।हिंदी ग़ज़ल लिखने की प्रेरणा उनको उनके गुरु 'शमशेर बहादुर सिंह' से मिली , दुष्यंत कुमार में सभी परिवर्तन १६७६ में पत्रकारिता के क्षेत्र से शुरू हुआ ,जिसका नाम था 'सारिका' जिसमें मूल विषय था "दुष्यंतदृस्मृति–विशेषांक" इस प्रकाशन ने साहित्य में एक नए अध्याय के द्वार खोल दिए इस अंक में कुछ गजलें थी जो शासन और प्रशासन की गड़बड़ व्यवस्था पर आक्रोशित होती हुई,आम आदमी की पीड़ा ,कुंठा, अतृप्ति ,अन्तोष का स्वर मुखरित करती है चीखती पुकारती गज़लें कहती है–

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं।
मेरी कोशिश है की सूरत बदलनी चाहिए ।।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में ही सही ।
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए ।।

जैसी युगांत करी शे'र दुष्यंत कुमार ने कहे जिसका अनुसरण हजारो बार सम्मेलनों में साहित्य जगत में राजनीती जगत में लोगो ने आपनी बात को वज़न देने के लिए कहे अभी समाज की समस्याओं को लेकर कालांतर में सिने कलाकार आमीर खान

ने 'सत्य मेव जयते' में भी इसी शे'र से धारावाहिक शुरू की थी। दुष्यंत कुमार की युगांतकारी गज़लें व्यवस्था की पोल खोलती हुई कहती है–

गूंगे निकल पड़े है जुबां की तलाश में ।
सरकार के खिलाफ ये साज़िस तो देखिये ।।

गूंगी बहरी सरकार के खिलाफ जनता की जुबान बन दुष्यंत कुमार ने वर्षों से त्रस्त जनता ,ठगी जनता को आत्म विश्वास का भाव पैदा करने में आहम भूमिका का निर्वहन किया , उन्होंने कहा

कौन कहता है आसमाँ में सुराख़ नहीं होता ।
एक पत्थर तो तबियत से उछलो यारों ।।

कहा जाता है है की 'सारिका' में जब "दुष्यंत दृस्मृति–विशेषांक" छपा तो एक पत्रिका के चाहने वालों की संख्या एक दिन में एक लाख से अधिक था,चुकी इस पत्रिका ने सभी बंधन तोड़ दिए थे ये सिर्फ साहित्यकार वर्ग के पास ही नहीं अपितु आम जनता के पास आपनी पहुँच बनाने लग गयीजिससे साहित्य थी जिससे साहित्यजगत ने भी आपने पुराने घिसे पिटे अवधारणाओ को छोड़ने का संकल्प लिया, तब ही से हमे समकालीन हिंदी ग़ज़ल की शुरुआत मान लेना चाहिए ।

अब दौर ऐसा आगया की हिंदी में ग़ज़ल एक आदत सी हो गयी और आदत कभी जाती नहीं जाहिर है की मंचों पर ग़ज़ल हावी हो गए, समकलीन हिंदी ग़ज़ल के एस तेवर से अन्य भाषाएँ भी प्रभावित होने लगी ,नतीजा ये था की अन्य भारतीय भाषाओ में भी ग़ज़ल कहने की परम्परा का सूत्रपात हो गया ,अब आलम ये है की अंग्रेजी भाषा में भी ग़ज़ल कही जा रही है ,इंग्लैण्ड के अनेक कवि मसलन दृब्रियान हेनरी ,डेनियल हाल ,और शेरोन ब्रियान जैसे नमी ग्रामी कवि बाकयदा अंग्रेजी भाषा में ग़ज़ल को आपनी कलम की ताकत बना रहे है ,उर्दू भाषा की निकलने वाली 'शाइर' नमक पत्रिका ने ''अंग्रेजी ग़ज़ल और गज़लकार'' नमक शीर्षक से इनके बारे में छपा है ।

यद्यपि समकलीन हिंदी ग़ज़ल साहित्य की बात दुष्यंत कुमार से शुरू होती है हिंदी

साहित्य में दुष्यंत कुमार 'नई कविता दौर के अत्यधिक सशक्त हस्ताक्षर थे ,तथापि ग़ज़ल साहित्य की बनावट और बुनावट का जहाँ तक प्रश्न है ,वहाँ ग़ज़ल साहित्य हिंदी भाषा की अपनी उपज की नहीं है,ये सिर्फ हिंदी में स्थापित किया गया है, एक अमूल्य धरोहर के रूप में और ग़ज़ल साहित्य के लिए भी बहुत सही है ,की उसको अपने अस्मिता के विकास के लिए सुधि पाठको और रचनाकरों द्वरा हिंदुस्तान की सर ज़मीन मुहय्या करवाया गया । जहाँ उसको फलने और फूलने के लिए बहुत विस्तृत भाव भूमि तैयार मिल गयी ।

M,-jkenj'k feJ

हिंदी के वरिष्ठ गज़लकार ,कथाकार,उपन्यासकार आलोचक और चिन्तक डॉ.रामदरश मिश्र साहित्य के पाठको के डॉ.रामदरश मिश्र का जन्म १५ अगस्त १६२४ ग्राम डुमरी ,जिला गोरखपुर .उत्तर प्रदेश में हुआ था वे मूलतः किसान थे किन्तु उनकी विलक्षण प्रतिभ उनको गाँव में रूकने नहीं दिया और वे १६५६ में वाराणसी चले गये जहाँ उन्होंने एक निजी विद्यालय में अध्यान शुरू कर दिया .कशी हिन्दू विश्वविध्यालय से हिंदी में स्नातक अधिस्नातक और डॉक्टरेट किया वे गुजरात और दिल्ली विश्वविध्यालय में प्रोफेसर के पद पर कार्य किया,१६६० में सेवा मुक्ति के बाद आप स्वतंत्र लेखन में लग गये । डॉ.रामदरश मिश्र ने ४ बड़े और ८ छोटे उपन्यासों की रचना की १६ कहानी संग्रह,१६ कविता संग्रह,५ ग़ज़ल संग्रह,११ आलोचना सहित ७० पुस्तकों की रचना की है । हल ही में १४ खण्डों में उनकी रचना प्रकशित हुयी है । विभिन्न पात्र पत्रिकाओं में आपकी रचनाये निरंतर प्रकाशित होती रहती है विभिन्न विश्वविध्यालय में आपके रचनाओं को अध्ययन कराया जाता है अभी हाल ही में आपकी कविता संग्रह 'आग की हँसी' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्रदान किया गया है ।

आपने हिंदी गज़लों में १६५४ से निरंतर गज़ले लिखना शुरू किया था इस मतले के साथ आपकी हिंदी ग़ज़ल यात्रा का प्रारंभ माना जाना चाहिए –

ये आंवारा बादल जो छाये हुए हैं ।

न मालूम किसके बुलाये हुए है ।।

मिश्र जी ने पहला ग़ज़ल संग्रह 'हँसी ओठ पर और आँखे नम है'१९९८, में प्रकाशित हुयी,इस संग्रह में १२० गज़ले हैं,इसके अतिरिक्त 'बाज़ार को निकले हैं लोग',तू ही बता ऐ ज़िन्दगी', 'हवाएं साथ है' और 'सपना सदा पलता रहा' आदि रचनाये प्रकाश में हैं ।

यद्यपि मिश्र जी की गज़लों ने जीवन के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित किया है तथापि कुछ झलकियाँ दृष्टव है–

पूछता फिरता है वह देखो मुहब्बत का पता ।

फिर शराफत के शहर में कोई दीवाना हुआ ।।

एक अन्य जगह मिश्र जी कहते है –

वह न मंदिर में न मस्जिद में न गुरुद्वारे में है ।

वह परायी पीर वाली आँखों के तारे में है ।।

मिश्र जी की रचनाये सम्पूर्ण जीवन के विभिन्न पहलुओं को बड़े शिद्दत के साथ प्रस्तुत करते है और आने वाली गज़लगोई की नई पीढ़ी तैयार करती है ।

M,-guer uk;M

डॉ.हनुमंत नायडू हिंदी और छत्तीसगढ़ी भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार थे । हिंदी गज़लों में अत्यंत सिद्ध हस्त गज़लकार थे डॉ.हनुमंत नायडू ७ अप्रेल १९३३ में सुशिक्षित तेलगु परिवार में जन्मे थे ,आप विभिन्न महावि।लय और विश्ववि।लय में हिंदी विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे ।आप महाराष्ट्र की हिंदी समिति और नागपुर विश्वविध्यालय के 'हिंदी अभ्यास मंडल' के अध्यक्ष भी रहे आप आज भी छत्तीसगढ़ के फिल्म 'कही देबे सन्देश' के चर्चित गीतकार के रूप में यद् किये जाते है । डॉ.हनुमंत नायडू वर्षों तक 'लोकमत समाचार'(नागपुर) में मंद सम्पादक समनव्यक के रूप में कार्यरत थे २५ फरवरी १९९८ में ६४ वर्ष की आयु में आपका देहावसान हो गया ।

वरिष्ठ गज़लकार ज़ाहिर कुरैशी ने 'समावर्तन' पत्रिका के चर्चित स्तम्भ 'भूले बिसरे

में'प्रकशित डॉ.हनुमंत नायडू के ग़ज़ल साहित्य पर महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई है। ज़ाहिर कुरैशी ने बताया की डॉ.हनुमंत नायडू दुष्यंत कुमार के समकालीन गज़लकार थे उन्होंने नागपुर में आयोजित दो दिवसीय ग़ज़ल कार्यक्रम में पहली बार देश के उत्कृष्ट गज़लकार प्रो.नन्द लाल पाठक,राजेश रेड्डी, हस्तीमल हस्ती आदि के साथ डॉ.हनुमंत नायडू के साथ लम्बी बात–चीत की डॉ.हनुमंत नायडू ने बताया की उनकी दो ग़ज़ल संग्रह 'जलता हुआ सफ़र'और मेरी ग़ज़ल मसाल'में कहा है–

खतरे के है आसार गलतफैमियां नहीं ।

बजने लगे हैं फिर से गज़र दिखिए हुजुर ।

अन्यत्र एक स्थान पर कहते है–

कुछ लोग ज़माने को नज़र बेच रहे है ।

अफवाह को कुछ कह के ख़बर बेच रहे है ।।

हिंदी ग़ज़ल समीक्षक डॉ.मधु खराटे ,श्री सरदार मुजावर, आदि ने विभिन्न पात्र पत्रिकाओं के माध्यम से आपके ग़ज़ल तेवर को स्थान स्थान पर स्संकेत किया है डॉ.हनुमंत नायडू ने जेवण के विभिन्न पक्ष जैसे ,तीव्र संवेदनात्मक दुःख,आनन्द का भटकाव,निराश की यथार्थ चित्रण ,स्वतंत्रता की खामिया,भूख और आभाव का चित्रण, आदि आदि गरीब ,निस्सहाय,वंचितों के उत्कृष्ट जीवन शैली की कल्पना करते हुए गज़ल लेखन किया है जैसे–

भाषण छपा है देश में खुशियाँ बरस रही है ।

लेते हैं खली पेट हम अखबार ओढ़ कर ।।

और वाणी की स्वतंत्रता पर कहते है –

गूंगा बना कर कोई हमे आदमी कहे ।

इंसानियत का ये कोई अपमान कम नहीं ।।

आज की राजनीती पर व्यग्य करते हुए कहते है डॉ.हनुमंत नायडू –

नदियों का जल भी जब मिला खरा मिला मुझे ।

रोटी की मांग पर सदा नारा मिला मुझे ।।

जल की तलाश में मुझे मिला जलता हुआ सफ़र ।

जो भी मिला मूझे प्यास का मारा मिला मुझे ।।

डॉ.हनुमंत नायडू गज़ले कथ्य,और शिल्प की दृष्टि से सफल गज़ले है । आप हिंदी की समकालीन गज़लकारो में महत्वपूर्ण गज़लकार है आप की गज़लों की मूल्याङ्कन की महती आवश्यकता है।

pæ lu fojkV

समकालीन हिंदी गज़लों के विकाश में पिछले पचास वर्षो में निरंतर मोहक ढंग से ग़ज़ल कहने वाले श्री चंद्रसेन विराट देश और विदेश में अत्यंत लोकप्रिय श्रेष्ठ कवि,गीत और गज़लकार रहे है चंद्रसेन विराट महाराष्ट्रियन मूल के हिंदी गज़लकार रहे है आपका जन्म ३ दिस्म्बर१६३६ को इंदौर मध्यप्रदेश के गाँव 'बलवाडा'में हुआ था । आपका बचपन का नाम 'बालू' था पिता सरकारी विभाग में थे अतः विभिन्न स्थानों पर हस्तानान्तरण होने के कारण आपका पढाई में बहुत उतर चढाव होते रहे माँ अत्यंत उच्चकोटि की भजन गीत गायिका थी इसलिए गीत और कविता के संकार आपको माँ से विरासत में मिला था मध्यप्रदेश सरकार में इंजीनियरिग के पद पर कार्यरत रहे १६६४ से ग़ज़ल विधा के साथ आपका लेखन कार्य प्रारंभ हुआ और १६६६ में ही आपको देश के लाल किले से काव्यपाठ का मौका मिला जिसमें देश के सर्वश्रेष्ठ कवि,रामधारी सिंह दिनकर,हरिवंश राय बच्चन,विरेन्द्र मिश्र,गोपालदास नीरज,आदि ने शिरकत किया था ।

चंद्रसेन विराट स्वयं स्वीकार करते है की उनकी कविता रामवतार त्यागी ,गोपाल दास नीरज से प्रभावित है चंद्रसेन विराट कहते है "नीरज की परवर्ती पीढ़ी में मैं गिना जाता हूँ । नीरज और रामावतार त्यागी का छंद ,शब्द शक्ति ,कहने का तेवर और विषयानुरूप भाषा का चयन मुझे प्रभावित करता है । त्यागी के अभिजात्य और विषय के निरूपण ने मुझे प्रभावित किया है उनके कहने का विशिष्ठ तेवर नही प्रभावित करता है ।"

चंद्रसेन विराट की पहली रचना 'जागरण' में १९५५ में प्रकाशित हुयी, "स्वर के सोपान" नामक ग़ज़ल संग्रह १९६९ में प्रकाशित हुयी,१९७० में आते आते वे प्रतिष्ठित हो गये जब आपकी रचना "निर्वासनी चांदनी" प्रकाश में आयी तब उनकी अपलब्धि दुष्यंत कुमार और भवानी शंकर मालपानी जैसे उत्कृष्ट रचनाकार के रूप में होने लगी ।पिछले आधी सदी की हिंदी गज़ल काव्य यात्रा में चंद्रसेन विराट जी ने १४ गीत संग्रह,७ मुक्तक संग्रह,२ दोहा संग्रह,७ सम्पादित काव्य संकलन संग्रह,और १२ ग़ज़ल संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं । विभिन्न विश्वविध्यालय में आपकी रचना अध्ययन और अध्यापन के लिए भी राखी गयी है । आपके ग़ज़ल संग्रह और चंद्रसेन विराट के ऊपर १४ से अधिक पी.एच–डी. के शोध सम्पन्न हो चुके है सौ से अधिक विद्वानों ने आप की गज़लों कविताओं पर लेख और समीक्षायें लिखी है ।चन्द्र सेन विराट जी की 12 ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित है–निर्वसना चाँदनी,आस्था के अमलतास,कचनार की टहनी,धार के विपरीत,परिवर्तन की आहट,लड़ाई लम्बी है,न्याय कर मेरे समय.फागुन मांगे भुजपास,इस सदी का आदमी,हमने कठिन समय देखा ही.खुले तीसरी आँख और बोल मेरी ज़िन्दगी ।

डॉ.कृष्ण गोपाल मिश्र के अनुसार "वीराट जी ने हिंदी ग़ज़ल के लिए 'मुक्तिका'शेर के लिए 'द्विपदी'मतले के लिए 'भावोदय'और मकते लिए 'अंत'जैसे नवीन शब्दों का प्रयोग किया है इस सन्दर्भ में उनका ये शेर बहुत मशहूर है –

शुरू से सत्य के हित में रही है मुक्तिका मेरी ।
उसे साहित्य वर लेक्गा मुझे विश्वास है मित्रों ।।

विराट जी स्वयं स्वीकार करते है की , "मेरी ग़ज़ल उर्दू से भिन्न है कहने में भी और तेवर में भी और अपनी मूल पीठिका में भी"यद्यपि विराट जी ने विभिन्न विषयों पर अपनी कलम चलई है तथापि कुछ चुनिन्दा विषय दृष्टव है –

घिसी चप्पल,फटा कुरता,बढ़ी दाढ़ी,चढ़ा चस्मा ।
रहे यदि पेट भी खली तुम्हे क्या फ़र्क पड़ता है ।।

एक एनी जगह खाते है–

कुछ न कहा है कुछ न कहेगा मातादीन ।

सभी सहा है सभी सहेगा मातादीन ।।

गीले उपलों पर अंगारा मातादीन ।

भीतर भीतर मौन रहेगा मातादीन ।।

चन्द्र सेन विराट जी ने हिंदी समकालीन ग़ज़ल की तब्दीलियों को स्वीकार किया है और उसको नये हिंदी कलेवर में ढाल कर प्रस्तुत किया है जिसे हिंदी ग़ज़ल समाज कभी भूला नहीं पायेगी एक नये युग का सूत्रपात कह सकते है ।

'kyHk Jh jke

22–23 अप्रैल 2000 की रात साहित्यानुरागियों से सदा के लिए जुदा हुए युयुत्षावादी जहाज के पहले और अंतिम कप्तान शलभ श्रीराम सिंह का जन्म 5 अक्टूबर सन् 1938 को उत्तर प्रदेश के अम्बेडकर नगर जिले की जलालपुर तहसील के मसोढ़ा गांव में हुआ था। साहित्य का यह अमर सपूत समझौतों के सदा खिलाफ रहा। साहित्य पुरोधा बाबा नागार्जुन नें उन्हें समकालीन कविता के नये गोत्र का सर्जक बताया।

मुझसे मेरी हज़रतों का आईना नाराज़ है ।

और आमदा है टूट के गिर जाने के लिऐ ।।

वे शारीरिक रूप से हमारे बीच बेशक नहीं हैं परन्तु वैचारिक रूप से अनन्तकाल तक यश काया में जीवित रहेंगें। तात्कालिक सामाजिक अनुभवों और संघर्षों की लम्बी श्रंखला से गुजरते हुए मानवता की जमीनी पीड़ा झेलकर समय से पहले परिपक्व हुए शलभ श्रीराम सिंह वैचारिक क्रांति के जरिये साहित्य के विकास में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साक्षी बने। यह गौरव उनके विचारों और लेखन शक्ति ने प्रदान किया। बिना शक कहा जा सकता है कि शलभ श्रीराम सिंह व्यक्ति या व्यक्तित्व नहीं अपितु विचारों के एक पुन्ज का नाम है । जीवनकाल में इस अप्रतिम और अद्वितीय साहित्य साधक का व्यक्तित्तव बहु प्रशंशित, बहु चर्चित और बहु आलोचित रहा है। प्रशंसकों ने जहां संस्कृति रक्षक, सन्यासी, निर्भीक

इन्सान और विद्वता का सागर बताया वहीं आलोचकों ने उन्हें जिद्दी, अक्खड़ और बिगड़ैल इन्सान भी कहा। कुछ भी हो उनकी साहित्यिक भूख आज तमाम युवा रचनाकारों की कलम से शब्द बनकर फूट रही है । उन्होंने युयुत्षावाद का जो बीज रोपा था वह आज विशाल वट वृक्ष हो गया है। जीवन भर जिद्दी स्वभाव के लिए जाने गये शलभ श्रीराम सिंह के अन्दर की सनक ने उन्हें जीवन पर्यन्त आम आदमी के मसायल और दुःख दर्द से जज्बाती तौर पर जोड़े रखा। विडम्बना इतनी थी कि जिस सामन्तवाद से लड़ने के लिए शलभ जी ने ठाठ फकीरी चुना उसके कतिपय अवशेष अपने व्यक्तित्व से झटक न सके। उसका थोड़ा सा हिस्सा उनके जीवन के साथ जुड़ा रहा । हलांकि उनकी शिक्षा जलालपुर के नरेन्द्रदेव इण्टर कालेज से इण्टर तक ही हुई मगर कठिन स्वाध्याय ने उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू और बंगला का विद्वान बनाया। चारों भाषाओं पर समान अधिकार था। सामाजिक विकृतियों और झंझावातों ने जब उन्हें झकझोरना शुरू किया तो उन्होंने पढ़ाई घर–परिवार और गांव को अलविदा कहकर भारत भ्रमण की ठान लिया, और साठ के दशक में चुपके से निकल पड़े। हिन्दी साहित्य की प्रत्येक विधा में मुस्तैदी से मौजूद उर्दू, बंगला और अग्रेंजी साहित्य में स्थान प्राप्त इस विद्रोही कवि को तरासने का काम बंगाल की खाडी की ओर से उठने वाली हवाओं ने किया। जिसका सारा श्रेय कोलकाता को जाता है। जंहा कुशल कवि और लेखक मित्रों के बीच रहकर उनके लेखन में निखार आया। बाद में पत्नी बनी कल्याणी सिंह के साथ–साथ अवध नारायण सिंह, अलख नारायण, छबिनाथ मिश्र जैसे रचनाकार मित्र उन्हें कोलकाता में मिले। 'अनागता' 'रूपाम्बरा' और 'युयुत्सा' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं के सम्पादन का मौका मिला तो उनकी साहित्यिक क्षमता और भी निखर गयी। पहला कविता संग्रह 'कल सुबह होने के पहले' सन् 1966 में यहीं से सामने आया । पश्चिम बंगाल की आबो हवा में सांस लेते हुए यहीं की आग में तपकर वे श्रीराम से शलभ बने। उनके व्यक्तित्व के विकास में कोलकाता की बहुत बड़ी भूमिका रही। यद्यपि उनका अधिकांश सार्थक समय मध्य प्रदेश के भोपाल और विदिशा में बीता। जहां उन्होंने 'मलायिका' और 'मजाज' की नज्में जैसी रचनाओं की सर्जना की। यहीं उन्होंने

रामकृष्ण प्रकाशन खडा किया और उसे विशिष्ट पहचान दिलायी। इस दौरान वे मध्यप्रदेश साहित्य परिषद द्वारा माखनलाल दृचतुर्वेदी पुरस्कार से सम्मानित किये गये। उनके करीबी जानते हैं कि जिद्दी प्रवृति के बावजूद भी उनके अन्दर दोस्ती का जज्बा भी खूब था, उन्होंने जिसे अपना माना उसे अन्तिम क्षण तक दिल में बिठाये रखा और जिसे नफरत की उसकी तरफ मरते दम तक नहीं देखा। गहरे भावानात्मक क्षणों में लोगों ने उन्हें पिघलते भी देखा है। बाहर रहते हुए जब उन्हें गांव की माटी की याद आयी तो 'बिहंगदूत' प्रस्फुटित हुई। जर्जर काया की बेबसी भी उनके अन्तर मन के जुनून को रोक नहीं पाई। समाज व देश के हालात उन्हें झिझोड़ते रहे। शायद यही वजह थी कि जीवन के अन्तिम क्षण तक लेखन में जुटे रहे ।

सातवें दशक के मध्यकाल में शलभ दद्दा ने 'युयुत्सावादी' कविता का आन्दोलन खड़ा कर उसकी विचार पीठिका विकसित की और उसे अपने व्यक्ति्तव के साथ ढोते भी रहे। जीवन काल में उन्होंने 'कल सुबह होने के पहले', 'अतिरिक्त पुरूष', 'नागरिक नामा', 'राह–ए हयात', 'निगाह दर निगाह', 'अपराधी स्वयं', 'प्यार की तरफ जाते हुए', 'ध्वंस का स्वर्ग', 'जीवन बचा है अभी', 'उन हाथो से परिचित हूँ मैं', 'अंगुली में बधी हुई नदियां' आदि कालजयी कृतियां दी। इसी के साथ 'राह–ए–हयात' उर्दू में और 'इन द फाइनल फेज' अंग्रेजी में तथा 'घूमन्त दरा जाय कड़ा नाड़ार शब्द' नामक पुस्तक बंगला में प्रकाशित है। विजयबहादुर सिंह व नरेन्द्र जैन के साथ सहयोगी कवि के रूप में 'पृथ्वी का प्रेमगीत' में उनकी उपस्थिति दर्ज है। डा. रामकृपाल पाण्डेय के सम्पादन में उनकी लम्बी कविताओं का संकलन 'कविता की पुकार' प्रकाशित है। शलभ दादा की कई रचनाऐं देश के कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम की आवश्यक अंग हैं।

शलभ दद्दा की बीड़ी कभी बुझती नही थी और मदिरा से गहरी मित्रता थी। इसके बावजूद भी उनका व्यक्तित्व समाज से ऊपर उठ कर आदरणीय है। उनके विचारों और शब्दों को अमरत्व हासिल है जो सदियों तक भटके समाज को राह दिखाते रहेंगे। सूर्य की रश्मि प्रभा की तरह शलभ दद्दा के विचारों की रोशनी हमारे मन की दहलीज पर

ज्वाज्वल्यमान सितारे की तरह सदा झिलमिलाती रहेगी । पूरी दुनियां को अपना घर और सम्पूर्ण मानव समाज को अपना परिवार मानने वाले शलभ अपनी जिदों के लिए भी जाने जाते थे। वे महज कवि न होकर छल अन्नाय अत्याचार व शोषण के विरूद्ध क्रांति के पक्षधर भी थे। गैरों के लिए भी उनका दिल विराट था। पहली मुलाकात में ही गैरों को अपना बना लेने और गैर के भाई बन जाने की कला उनके अंदर कूट कूट कर भरी थी। उनका व्यक्तित्व समझने से ज्यादा महसूस करने का था। वह आम हो कर भी खास थे और विशिष्ट लोगो में अति विशिष्ट। उनका व्यक्तित्व आसान होकर एक पेचीदा किताब था । शलभ जी ने लिखा है कि ''भाव, भाषा, शिल्प और शैली का अशेष भण्डार निःशेष कहां हुआ है भला? हमारी संवेदना के दरवाजों पर विरूचि और विरूपता के कवच पहने खुरदुरे और बेडौल यथार्थ की चट्टान यदि खड़ी है तो उन्हें इच्छित आकार देने और सही ठिकानों पर स्थापित करने वाली बुद्धि और विवेक से हमारी कला चेतना वंचित कहां है। भावनाओं के तरल गतिमान श्रोत पूरे वेग के साथ टकराने के लिए छटपटा रहे है, उन्हें उनकी दिशा में कोई मोड़ कर तो देखे। चट्टानों की सुनिश्चित परिणति इस कार्य व्यापार की प्रतीक्षा कर रही है । शलभ जी ने हिंदी ग़ज़ल के विभिन्न पायदानों को विभिन्न तरीक़े से प्रस्तुत किया नारी संचेतना पर उदाहरण देखिये –

घटना तो कुछ खास नहीं है बात किसी की टल गयी है ।
फूल से तन में आग लगा कर एक सुहागन जल गए है ।।
टूटी कश्ती दूर किनारा सर पर है घनघोर घटा ।
ऐसे में तूफ़ान की नियत भी चुपचाप बदल गयी ।।

उनके विचार से "अपने मुहाने पर सर्व स्तरीय विभीषिकाओं को साथ लेकर खड़ी इस शताब्दी की विसंगतियों, विरोधाभाषों, निर्मूल्यताओं, अन्याय और मानवता विरोधी पक्षों पर प्रहार करना होगा ,निश्चित रूप से रास्ता मिलेंगा । शर्त यह है कि हमारी चिंता नये सृजन की संभावनाओं को टटोलने और नये उन्मेष के सपनों को पहचाने की होनी चाहिये।''

चाँद पहाड़ी के पिछवाड़े मुह लटका के बैठ गया ।

रूठ गया हो जैसे कोई अपने ही घरवालों से ।।

jkts'k jsìh

मेरे दिल के किसी कोने में इक मासूम सा बच्चा

बड़ों की देखकर दुनिया बड़ा होने से डरता है

हिन्दुस्तान में जब ग़ज़ल इरान से आई तो उसे फ़क़ीरों की ख़ानकाहों में पनाह मिली,ग़ज़ल उस वक़्तइंसानियत के पैगाम का एक ख़ूबसूरत ज़रिया बनी । वक़्त के साथ –साथ ग़ज़ल को अलग – अलग लिबास पहनादिये गये,कभी तो ग़ज़ल महबूब के गेसुओं से उलझी ,कभी शमा बन के जली, कभी दरबार में कसीदा हुई तोकभी टूटे हुए दिल की आवाज़ और फिर धीरे ग़ज़ल ने रिवायत से भी बगावत शुरू कर दी,औरतों सेगुफ़्तगू करने वाली ग़ज़ल सच झूठ की कशमकश , बच्चों के खिलौने , भूख, मुफ़लिसी , रोटी और फिर यहाँतक कि नाजुक ग़ज़ल ने बन्दूक की शक्ल भी इख्तियार कर ली। ८०के दशक में ग़ज़ल कहने वालों ने शाइरी कोनई परिभाषाएं दी और जब इसी दौर के एक शाइर का ये शे'र सुना तो लगा कि सच में ग़ज़ल की तस्वीर बदलगई है :––

शाम को जिस वक़्त ख़ाली हाथ घर जाता हूँ मैं

मुस्कुरा देते हैं बच्चे और मर जाता हूँ मैं

लाचारी और बेबसी को भी ग़ज़ल बनाने के फ़न का नाम है राजेश रेड्डी,यूँ तो राजेश रेड्डीमूलतःहैदराबाद के है पर इनकी परवरिश गुलाबी शहर जयपुर में हुई।राजेश रेड्डी का जन्म २२ जुलाई १९५२को,नागपुर में हुआ,इनके वालिद जनाब शेष नारायण रेड्डी जयपुर के बाशिंदे थे और नागपुर राजेश साहब कीननिहाल थी, इनके वालिद पोस्टल एवं टेलेग्राफ महकमें में थे पर संगीत उनका जुनून था सो घर के हर गोशे मेंसंगीत बसा हुआ था,राजेश रेड्डी की पूरी तालीम जयपुर में ही हुई,राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से इन्होने एम. ए. हिन्दी साहित्य में किया।अपने कॉलेज के ज़माने से राजेश साहब को शाइरी के प्रति रुझान हुआ बशीर बद्र, निदा फ़ाज़ली और मोहम्मद अल्वी के क़लाम ने इन्हें मुतास्सिर किया पर

शाइरी के पेचीदा पेचो ख़म ,शाइरी की बारीकियां ,बात कहने का सलीक़ा सीखने के लिए राजेश रेड्डी साहब ने ग़ालिब के दीवान कोअपना उस्ताद मान लिया,इनके वालिद जयपुर की नामी संगीत संस्था "राजस्थान श्रुति मंडल" से जुड़े थे ,घरमें मौसिक़ी का माहौल था सो संगीत राजेश साहब के दिलोदिमाग़ में रच बस गया।पढाई पूरी करने के बादराजेश रेड्डी कुछ समय तक राजस्थान पत्रिका की "इतवारी पत्रिका" के उप–सम्पादक रहे और फिर १९८० सेशुरू हो गई आकाशवाणी की मुलाज़मत।

१९८० के आसपास राजेश साहब ने अपने अनूठे अंदाज़ में शे'र कहने शुरू किये ।इसी वक़्त राजेश साहब कोलगा की ग़ज़ल की रूह तक पहुँचने के लिए उर्दू लिपि का आना ज़रूरी है तो अनी मेहनत और लगन से इन्होने शीरीं ज़बां उर्दू बा–क़ायदा सीखी राजेश रेड्डी ने अपनी शाइरी का एक मौज़ूं इंसानियत को बनाया और इंसानियत को उन्होंने मज़ हब की मीनारोंसे भी ऊपर माना :––

गीता हूँ कुरआन हूँ मैं

मुझको पढ़ इन्सान हूँ मैं

–

मैं इन्साँ था, इन्साँ हूँ , इन्साँ रहूँगा

जो करना हो हिन्दू –मुसलमान कर लें

राजेश रेड्डी ने अपनी शाइरी में न तो कभी महबूब की चौखट की परस्तिश की न ही कभी हुस्न की तारीफ़ मगरअपने जज़्बों का इज़हार बड़ी बेबाकी से किया यहाँ तक कि जब लहजे को शिकायती बनाया तो ख़ुदा से भी ये कह डाला :–––

फ़लक से देखेगा यूँ ही ज़मीन को कब तक

ख़ुदा है तू तो करिश्मे भी कुछ ख़ुदा के दिखा

–

जारी है आसमानी किताबों के बावजूद

हर दिन ज़मीं के ख़ूँ में नहाने का सिलसिला

आज के दौर में चंद लोग ही बचे है जिन्होंने ज़मीर की चिड़िया को लालच की गुलेल से बचा के रखा है। राजेशरेड्डी अपनी शाइरी के ज़रिये जगबीती को आप बीती बना के कहते हैं। राजेश साहब इन्सान के किरदार में ज़मीरको बड़ा अहम् हिस्सा मानते हैं और इन्सान के ज़मीर में आई इस गिरावट को वे यूँ शे'र बनाते हैं ,शाइर वही कहता है जो अपने इर्दगिर्द देखता है ,महसूस करता है।दोस्ती यारी , तमाम रिश्ते बस ज़रूरत कादूसरा नाम हो के रह गये हैं।रिश्तों के इस खोखलेपन और अहबाब की मेहरबानियों को राजेश रेड्डी ने शाइरी काजामा कुछ इस तरह से पहनाया

शहर में जा के बेटे की बढ़ तो गई कमाइयां

बीमार माँ से दूर ही रहती रहीं दवाइयां

राजेश रेड्डी का पहला ग़ज़ल संग्रह "उड़ान " आया जिसका इज़रा निदा फ़ाज़ली साहब ने किया। इसके बाद,दूसरा ग़ज़ल संग्रह "आसमान से आगे " आया जिसके विमोचन का वाकया बड़ा दिलचस्प है, हुआ यूँ कि इसग़ज़ल संग्रह का इज़रा ग़ज़ल गायक जगजीत सिंह जी को करना था जगजीत साहब का नेहरु सेंटर ,मुंबई में ग़ज़लोंका कार्यक्रम था सो उन्होंने राजेश जी से कहा की उसी वक़्त आपकी किताब का विमोचन कर देते हैं,अपनेग़ज़ल प्रोग्राम के बीच में जगजीत जी ने राजेश रेड्डी साहब का तआर्रुफ़ सबसे करवाया और वहीं किताब काविमोचन कियसाथ में उन्होंने राजेश साहब से अपनी ग़ज़ल सुनाने को कहा ,जैसे ही रेड्डी साहब ने मतलासुनाया "जाने कितनी उड़ान बाक़ी है...इस परिन्दे में जान बाक़ी है" उसी वक़्त जगजीत सिंह ने इसे गाया पूरीग़ज़ल की धुन उन्होंने वहीं बना के श्रोताओं को सुनाई इस तरह किसी किताब का इज़रा शायद इस से पहलेकभी नहीं हुआ था।ये सब राजेश रेड्डी से जगजीत साहब की मुहब्बत और इनके क़लाम का कमाल था। राजेशरेड्डी का तीसरा ग़ज़ल संग्रह "वजूद " भी मंज़रे–आम पे आ चुका है। राजेश रेड्डी की किताबें उर्दू और नागरी दोनों में आई है ।

funk Qktyh

हिंदी–उर्दू के अजीम शायर मरहूम निदा फ़ाज़ली के, 12 अक्तूबर को जन्म हुआ था निदा साहब की जिंदगी से कई दर्दनाक वाकये लिपटे रहे। हिन्दू–मुस्लिम क़ौमी दंगों से तंग आ कर उनके माता–पिता पाकिस्तान जाकर बस गए। उन्होंने वतन नहीं छोड़ा। भारत के कई शहरों में भटकने के बाद ग्वालियर (म.प्र.) से जाकर बम्बई (मुंबई) बस गए। सन 1964 में मुंबई वह रोजी–रोटी की तलाश में गए थे। वहां कलम तेज रफ्तार चल पड़ी। वह धर्मयुग, ब्लिट्ज़ आदि पत्र–पत्रिकाओं में लिखने लगे। उससे वह मशहूर होने लगे। उनका जन्म 12 अक्तूबर 1938 को दिल्ली में पिता मुर्तुज़ा हसन और माँ जमील फ़ातिमा के घर माँ की इच्छा के विपरीत तीसरी संतान के रूप में हुआ था।निदा साहब के पिता और भाई भी शायर थे। उनका बचपन ग्वालियर की गलियों में गुजरा। वहीं पढ़ाई–लिखाई हुई। निदा बहुत कम उम्र से ही शेरो शायरी करने लगे थे। निदा के पड़ोसी रहे ख्यात कवि नरेश सक्सेना बताते हैं कि पिता और भाई की शायरी के आगे निदा की चल नहीं सकी थी। वह इस बात से परेशान रहते थे। पिता और भाई के पाकिस्तान चले जाने के बाद उनकी जिंदगी अजीबोगरीब मंजर में फंस गई। आखिरकार उन्होंने बामशक्कत मुंबई में अपना मकाम बना लिया। उनके नामकरण के साथ भी एक विशेष अर्थ जुड़ा है। निदा के मायने आवाज़। फ़ाज़िला क़श्मीर के एक इलाके का नाम है, जहाँ से निदा के पुरखे आकर दिल्ली में बस गए थे, इसलिए उन्होंने अपने उपनाम में फ़ाज़ली जोड़ा। मुंबई में दिल का दौरा पड़ने से 78 साल की उम्र में उनका इंतकाल हो गया। उनके जाने के बाद ये लाइनें आज भी उनको चाहने वालों के मन में गूंजती रहती हैं–

अपनी मर्जी से कहां अपने सफर के हम हैं,
रुख हवाओं का जिधर का है उधर के हम हैं।

कहा जाता है कि निदा को एक लड़की की मोहब्बत ने शायरी सिखा दी। कॉलेज में उनके आगे की पंक्ति में एक लड़की बैठा करती थी। उससे उन्ह्हें लगाव महसूस होने लगा था। एक दिन नोटिस बोर्ड पर उन्होंने पढ़ा, Miss Tondon met with an accident and has expired. उसे पढ़ते ही निदा का दिल रोने लगा। उसके बाद एक सुबह वह एक

मंदिर के पास से गुजर रहे थे। वहां उन्होंने किसी को सूरदास का भजन 'मधुबन तुम क्यौं रहत हरे, बिरह बियोग स्याम सुंदर के ठाढ़े क्यौं न जरे' गाते हुए सुना। उस वक्त निदा को लगा कि उनके अंदर दबा गम का सागर उमड़ पड़ा है। फिर उन्होंने कबीरदास, तुलसीदास, बाबा फ़रीद आदि को पढ़ा। उनसे प्रेरित होकर सरल–सपाट शब्दों में लिखना सीखा । उर्दू शायरी का उनका पहला संकलन 1969 में छपा । उर्दू का पहला संकलन प्रकाश में आने के साथ ही उनका बॉलीवुड का भी सफर शुरू हो गया। फ़िल्म प्रोड्यूसर–निर्देशक–लेखक कमाल अमरोही उन दिनों फ़िल्म रज़िया सुल्ताना बना रहे थे। इसमें गीत लिखने का जिम्ह्मा तो ग्वालियर के ही रहने वाले जाँनिसार अख़्तर (जावेद अख्तर के अब्बा) को दिया गया था लेकिन वह उसी बीच चल बसे। इसके बाद फ़िल्म के दो गाने लिखने का जिम्ह्मा निदा फाजली को दे दिया गया। इसके बाद उन्होंने रज़िया सुल्ताना के लिए बेजोड़ गीत लिखे– तेरा हिज्र मेरा नसीब है, तेरा गम मेरी हयात है और आई ज़ंजीर की झन्कार, ख़ुदा ख़ैर कर। और फिल्मों में यही उनके पहले दो फ़िल्मी गीत रहे थे। इसके बाद उनके कई फिल्मी गीत काफी पॉपुलर हुए– होश वालों को खबर क्या, बेखुदी क्या चीज है (सरफ़रोश), कभी किसी को मुक़म्मल जहाँ नहीं मिलता और तू इस तरह से मेरी ज़िंदग़ी में शामिल है (आहिस्ता–आहिस्ता), चुप तुम रहो, चुप हम रहें (इस रात की सुबह नहीं) आदि। निदा की ज्यादातर लाइनों में कभी मुल्क तो कभी माशूका का दर्द छिपा होता था। पढ़ते–पढ़ते वह कभी–कभी रुआंसा हो जाया करते थे। बाद में देश–विदेश के कविसम्मेलनों और मुशायरों में नामवर शायर शुमार होने लगे

वक़्त के साथ है मिट्टी का सफ़र सदियों तक
किसको मालूम कहाँ के हैं किधर के हम हैं।
चलते रहते हैं कि चलना है मुसाफ़िर का नसीब
सोचते रहते हैं कि किस राहगुज़र के हम हैं।
गिनतियों में ही गिने जाते हैं हर दौर में हम
हर क़लमकार की बेनाम ख़बर के हम हैं।

e|u0oj jk.kk

मुनव्वर राना का जन्म 26 नवम्बर, 1952 को रायबरेली, उत्तर प्रदेश में हुआ था। सैयद मुनव्वर अली राना यूँ तो बी. कॉम. तक ही पढ़ पाये किन्तु ज़िन्दगी के हालात ने उन्हें ज्यादा पढ़ाया भी उन्होंने खूब पढ़ा भी। माँ, ग़ज़ल गाँव, पीपल छाँव, मोर पाँव, सब उसके लिए, बदन सराय, घर अकेला हो गया, मुहाजिरनामा, सुखन सराय, शहदाबा, सफ़ेद जंगली कबूतर, फुन्नक ताल, बग़ैर नक़्शे का मकान, ढलान से उतरते हुए और मुनव्वर राना की सौ ग़ज़लें हिन्दी व उर्दू में प्रकाशित हुईं । कई किताबों का बांग्ला व अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हुआ । उनके करीबी रिश्तेदारों में से अधिकांश, उनके चाची और दादी सहित, सीमा पार पाकिस्तान गए थे विभाजन के उथल–पुथल के दौरान लेकिन उनके पिता, भारत के लिए प्यार से बाहर, प्रचलित सांप्रदायिक उन्माद के बावजूद यहाँ रहने के लिए पसंद किया। बाद में उनका परिवार कोलकाता चले गए जहां युवा मुनववार की पढ़ाई थी। उनकी कविताओं की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उन्होंने ग़ज़ल की शैली का इस्तेमाल मदर की स्तुति करने के लिए किया, जो अद्वितीय है, क्योंकि ग़ज़ल को एक काव्यात्मक रूप माना जाता था, जिसमें प्रेमियों ने एक दूसरे के साथ बातचीत की थी। अपने कविता संग्रह के अलावा, राणा ने भी एक संस्मरण लिखा है राणा की कविता हिंदी, उर्दू, बंगाली और गुरूमुखी में भी प्रकाशित की गई है। राणा एक संवेदनशील कवि है जो हिंदी और अवधियों के दोहरे शब्दों में इस्तेमाल करता है।

सहरा–पसंद हो के सिमटने लगा हूँ मैं !
अँदर से लग रहा हूँ कि बँटने लगा हूँ मैं !!
क्या फिर किसी सफ़र पे निकलना है अब मुझे !
दीवारो–दर से क्यों ये लिपटने लगा हूँ मैं !!

वह फूलों की भाषा का इस्तेमाल करने से बचता है और अपने गज़लों में उर्दू का पवित्र उर्वरता छोड़ देता है, जो कि एक कारण है कि वह गैर उर्दू क्षेत्रों में कविताओं में भी सफल रहे हैं। उत्तर प्रदेश के रायबरेली का हिस्सा हैं लेकिन उन्होंने अपना जीवन

कोलकाता में बिताया । मुन्नार राणा ने न केवल उर्दू में बल्कि हिंदी और बंगाली में भी अपनी कविता प्रकाशित की। वह मंच पर भी कविता करते हैंअपने कविता संग्रह के अलावा, राणा ने भी एक संस्मरण लिखा है एक हालिया प्रदर्शन २०१२ में, एनआईटी इलाहाबाद की सांस्कृतिक घटना, कुल्व में था । एक माँ पर मार्मिक अभिव्यंजना देखिये –

ऐ अँधेरे! देख ले मुँह तेरा काला हो गया

माँ ने आँखें खोल दीं घर में उजाला हो गया

गज़लकार जनाब मुन्नवर राणा जी को विभिन्न पुरस्कार मिले है जिनमे उर्दू साहित्य २०१४ के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार । लेकिन कई अन्य साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेताओं की तरह, उन्होंने १८ अक्टूबर २०१५ को एक लाइव टीवी शो पर इस पुरस्कार को वापस लौटा दिया और भविष्य में किसी भी सरकारी पुरस्कार को स्वीकार न करने का वचन दिया (अन्य अकादमी के साथ पुरस्कार विजेताओं) को सत्ताधारी पार्टी बीजेपी और उसके विचारक आरएसएस के नेताओं द्वारा सरकार की छवि को धूमिल करने की साजिश का एक भाग होने का हिस्सा है। 'परम्पारा कविता पारव २०१५ के तहत विश्व ऋतुराज सम्मान पुरस्कार अमीर खुस्रो पुरस्कार २००६ आईटावा कविता का कबीर सम्मान उपाधि २००६, इंदौर मीर ताकी मीर पुरस्कार २००५ शाहद अलाम अफक्की अवार्ड २००५, कोलकाता गालिब अवार्ड २००५ उदयपुर डा। जाकिर हुसैन पुरस्कार २००५, नई दिल्ली सरस्वती समाज पुरस्कार २००५ मौलाना अब्दुल रज्जाक मलहिबादी पुरस्कार २०११ (पश्चिम बंगाल उर्दू अकादमी) सलीम जाफरी पुरस्कार १९९७ दिलकोश पुरस्कार १९९५ रायस अमरोही पुरस्कार १९९३, रायबरेली भारती परिषद पुरस्कार, इलाहाबाद हुमायूं कबीर पुरस्कार, कोलकाता बासम ई सुचन पुरस्कार, भुसावल इलाहाबाद प्रेस क्लब अवॉर्ड, प्रार्थना हज़रत अल्मास शाह पुरस्कार ,सरस्वती समाज पुरस्कार, अदब पुरस्कार मीर पुरस्कार मौलाना अबुल हसन नादवी पुरस्कार,उस्ताद बिस्मिल्लाह खान पुरस्कार,कबीर पुरस्कार अदि फेहरिश्तबहुत ही लम्बी है ।

मुनव्वर राना साहब ने य।पि "माँ" पर गज़ले लिख कर ग़ज़ल की परिभाषा बदल दी

है ग़ज़ल को कोठे से उतार कर माँ के आँचल तक लेजाने का श्रेय उनका मुनव्वर राना साहब का ही है ।

गले मिलने को आपस में दुआयें रोज़ आती हैं ।
अभी मस्जिद के दरवाज़े पे माएँ रोज़ आती हैं ।।
किसी को घर मिला हिस्से में या कोई दुकाँ आई ।
मैं घर में सब से छोटा था मेरे हिस्से में माँ आई ।।
इस तरह मेरे गुनाहों को वो धो देती है
माँ बहुत ग़ुस्से में होती है तो रो देती है
मेरी ख़्वाहिश है कि मैं फिर से फ़रिश्ता हो जाऊँ
माँ से इस तरह लिपट जाऊँ कि बच्चा हो जाऊँ
मेरा खुलूस तो पूरब के गाँव जैसा है
सुलूक दुनिया का सौतेली माओं जैसा है
रौशनी देती हुई सब लालटेनें बुझ गईं
ख़त नहीं आया जो बेटों का तो माएँ बुझ गईं
कई बातें मुहब्बत सबको बुनियादी बताती है
जो परदादी बताती थी वही दादी बताती है

मां के लिए मुनव्वर राणा की ये शायरी किसी भी दिल को पिघला सकती है. मुनव्वर ने बहुत से विषयों को अपनी लेखनी और शायरी में छुआ, लेकिन मां पर लिखी उनकी शायरी ने सभी के दिलों को छू लिया... बीते साल ही की मां का देहांत हुआ था. मुनव्वर बताते हैं कि मां इतने साल जिंदा रहीं, क्योंकि मुनव्वर उन्हें कहते थे ' अगर तू चली गई, तो पीछे–पीछे मैं भी चला आऊंगा.

M,-doj cpu

डॉ० कुँअर बेचैन का वास्तविक नाम डॉ० कुँवर बहादुर सक्सेना है । आपका जन्म 1

जुलाई 1942 को उत्तर प्रदेश के उमरी गांव (ज़िला मुरादाबाद) में हुआ था। आपका बचपन चंदौसी में बीता । आप एम.कॉम, एम.ए (हिंदी) व पी–एच.डी हैं । आपने ग़ाज़ियाबाद के एम.एम.एच. महावि।ालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में अध्यापन किया व रीडर भी रहे। आप हिंदी ग़ज़ल व गीत के हस्ताक्षर हैं । आपके अनेक विधाओं मे साहित्य–सृजन किया है। आपके अनेक गीत संग्रह, ग़ज़ल संग्रह, काव्य संग्रह, महाकाव्य तथा एक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं ।

डॉ.कुंवर बेचैन को अनेक सम्मानः साहित्य सम्मान (1977), उ०प्र० हिंदी संस्थान का साहित्य भूषण (2004), परिवार पुरस्कार सम्मान, मुंबई (2004), राष्ट्रपति महामहिम ज्ञानी जैलसिंह एवं महामहिम डॉ० शंकरदयाल शर्मा द्वारा सम्मानित, अनेक विश्व वि।ालयों तथा महाराष्ट्र एवं गुजरात बोर्ड के पाठ्यक्रमों मे संकलित ।आपके द्वरा रचित निम्नलिखित रचनाएँ प्रकाश में आयी हैं – पिन बहुत सारे (1972), भीतर साँकलः बाहर साँकल (1978), उर्वशी हो तुम (1987), झुलसो मत मोरपंख (1990), एक दीप चौमुखी (1997), नदी पसीने की (2005), दिन दिवंगत हुए (2005), ग़ज़ल–संग्रहःशामियाने काँच के (1983), महावर इंतज़ारों का (1983), रस्सियाँ पानी की (1987), पत्थर की बाँसुरी (1990), दीवारों पर दस्तक (1991), नाव बनता हुआ काग़ज़ (1991), आग पर कंदील (1993), आँधियों में पेड़ (1997), आठ सुरों की बाँसुरी (1997), आँगन की अलगनी (1997), तो सुबह हो (2000),कोई आवाज़ देता है (2005); कविता–संग्रहः नदी तुम रुक क्यों गई (1997), शब्दः एक लालटेन (1997); पाँचाली (महाकाव्य) ।

डॉ.कुंवर बैचैन ने स्वयं स्वीकार किया है की "ग़ज़ल बहुत बड़ी चीज़ है ,बहुत ऊंची और गहरी चीज़ है । उस तक पहुंचना उसे छूना ,उसे जानना उसे समझना सरल काम नहीं है । ग़ज़ल की तलाश ही ग़ज़ल की ओर बढ़ना है और ग़ज़ल को पा लेना ही ग़ज़ल की वापसी का नाम है ।" डॉ.कुंवर बैचैन बहुत ही सीधी और सरल भाषा में कहे कुछ शे'र देखिये–

हमको नचा रहा है इशारों पर हर घड़ी ।

शायद हमारा पेट मदारी की तरह है ।।

कहीं उनकी ग़ज़लों में श्रृंगार का भी भाव अपने आप ही सुन्दरता का पर्याय बन जाता है और कहीं बहु आयामी प्रतिभा के धनी डॉ.कुंवर बैचैन कह लेते हैं दृ

मैं क्यूं न पढूं रोज़ नयी चाह से तुझे ।

तू घर में मेरे एक भजन की किताब है ।।

M,- olhe cjyoh

फ़ेसर वसीम बरेलवी को मुशायरों की कामयाबी की जमानत माना जाता है । वसीम बरेलवी के गीत, ग़ज़ल और दोहे हिन्दी–उर्दू के सभी काव्य–प्रेमियों व श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते हैं। वसीम बरेलवी अमीर खुसरो, कबीर, रसखान, जायसी और रहीम की परम्परा के शायर हैं । वसीम बरेलवी का जन्म 18 फरवरी 1940 को अपने ननिहाल बरेली में हुआ था। आपका मूल नाम ज़ाहिद हसन वसीम आपके पूर्वज मुरादाबाद में नवाबपुर में ज़मीदार थे । आपने बरेली कॉलेज से उर्दू में एम.ए. रूहेलखंड विश्व वि।ालय में सर्वश्रेष्ठ (टॉप) छात्र के रूप में की। तत्पश्चात् बरेली कालेज में उर्दू के प्रोफ़ेसर रहे और रुहेलखण्ड विश्व वि।ालय में फैकल्टी ऑफ़ आर्ट के डीन के पद से सेवानिवृत्त हुए।

"खुद को मनवाने का मुझको भी हुनर आता है

मैं वह कतरा हूं समंदर मेरे घर आता है"

प्रो.वसीम बरेलवी के ग़ज़ल का सफ़र बुत ही सरल और सीधे ढंग से चलता है अक्सर वे संन्य से विशिष्ट की ओर जाते है उनका छंद विधान अत्यंत सरल और सीधे ढंग का होता है उर्दू और हिंदी का अत्यंत जाना पहचाना चेहरा प्रो.वसीम बरेलवी का एक शे'र देखिये–

वो झूठ बोल रहा था बड़े सलीके से ।

मैं एतबार न करता तो भला क्या करता ।।

उसी को जीने का हक है इस जमाने में ।

इधर का लगता रहे और उधर का हो जाये ।।

प्रो.वसीम बरेलवी का साहब का ग़ज़ल गोई का कमाल ये है की बहुत ही सरल और सीधी बैटन में भी जीवन का सत्य उद्घटित करते हैं और उस सत्य को जीवंत करने की कला भी जानते है –

खुली छतों के दिए कब के बुझ गये होते ।
कोई तो है जो हवाओं के पर कातरता है ।।
शराफतों की यहाँ कोई अहमियत ही नहीं ।
किसी का कुछ न बिगाड़ो तो कौन डरता है ।।

vne xkMoh

अदम साहब एक ऐसे गज़लकार है की जिन्होंने अपने ग़ज़ल के एक एक शेर को जीवन के धरातल पर उतर कर लाज़वाब बना दिया है

देखना सुनना व सच कहना जिन्हें भाता नहीं ।
कुर्सियों पर फिर वाही बापू के बन्दर आ गये ।।
कल तलक जो हाँसिये पर नहीं भी नही थे नज़र।
आज बाज़ार में उनके कैलेंडर आ गये ।।

अदम गोंडवी का वास्तविक नाम रामनाथ सिंह था। आपका जन्म 22 अक्तूबर 1947 को आटा ग्राम, परसपुर, गोंडा, उत्तर प्रदेश में हुआ था।

कुछ प्रमुख कृतियाँः धरती की सतह पर, समय से मुठभेड़ (कविता संग्रह)

निधनः 18 दिसंबर 2011 को अदम गोंडवी का निधन हो गया।

M,- d|ekj fo'okl

कोई दीवाना कहता है कोई पागल समझता है ।
मगर धरती की बेचैनी को बस बादल समझता है ।।

हिंदी ग़ज़ल से देश दुनियां में कीर्ति पाने वाले कुमार विश्वास का जन्म 10 फ़रवरी (वसंत पंचमी), 1970 को पिलखुआ, (ग़ाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश) में हुआ था । चार भाईयों और एक बहन में सबसे छोटे कुमार विश्वास ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा लाला गंगा सहाय विद्यालय, पिलखुआ से प्राप्त की । उनके पिता डॉ॰ चन्द्रपाल शर्मा, आर.एस.एस डिग्री कॉलेज (चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ से सम्बद्ध), पिलखुआ में प्रवक्ता रहे। उनकी माता श्रीमती रमा शर्मा गृहिणी हैं । राजपूताना रेजिमेंट इंटर कॉलेज से बारहवीं में उनके उत्तीर्ण होने के बाद उनके पिता उन्हें इंजीनियर (अभियंता) बनाना चाहते थे । डॉ॰. कुमार विश्वास का मन मशीनों की पढ़ाई में नहीं लगा और उन्होंने बीच में ही वह पढ़ाई छोड़ दी। साहित्य के क्षेत्र में आगे बढ़ने के ख्याल से उन्होंने स्नातक और फिर हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर किया, जिसमें उन्होंने स्वर्ण–पदक प्राप्त किया। तत्पश्चात उन्होंने "कौरवी लोकगीतों में लोकचेतना" विषय पर पीएचडी प्राप्त किया। उनके इस शोध–कार्य को 2001 में पुरस्कृत भी किया गया । डॉ॰ कुमार विश्वास ने अपना करियर राजस्थान में प्रवक्ता के रूप में 1994 में शुरू किया। तत्पश्चात वो अब तक महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य कर रहे हैं । इसके साथ ही डॉ॰ विश्वास हिन्दी कविता मंच के सबसे व्यस्ततम कवियों में से हैं । उन्होंने अब तक हज़ारों कवि–सम्मेलनों में कविता पाठ किया है । साथ ही वह कई पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखते हैं । डॉ. विश्वास मंच के कवि होने के साथ साथ हिन्दी फ़िल्म इंडस्ट्री के गीतकार भी हैं। उनके द्वारा लिखे गीत अगले कुछ दिनों में फ़िल्मों में दिखाई पड़ेगी । उन्होंने आदित्य दत्त की फ़िल्म 'चाय–गरम' में अभिनय भी किया है ।

कुमार विश्वास अगस्त २०११ के दौरान जनलोकपाल आंदोलन के लिए गठित टीम अन्ना के एक सक्रिय सदस्य रहे हैं । २६ नवम्बर २०१२ को गठित आम आदमी पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य हैं । डॉ. कुमार विश्वास अमेठी से लोकसभा का चुनाव भी लड़ा, परन्तु हार गए । वो एक ऐसे छवि वाले कवि रहे हैं जिसने राजनीति को युगधर्म के आलावा कुछ नहीं समझा। कई राजनीतिक पार्टी उनकों अपने खेमें में लाना चाहते हैं पर वो अडिग रहे हैं । विभिन्न पत्रिकाओं में नियमित रूप से छपने के अलावा डॉ॰ कुमार

विश्वास की दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं– 'इक पगली लड़की के बिन' (1996) और 'कोई दीवाना कहता है' (2007 और 2010 दो संस्करण में) विख्यात लेखक स्वर्गीय धर्मवीर भारती ने डॉ. विश्वास को इस पीढ़ी का सबसे ज़्यादा सम्भावनाओं वाला कवि कहा है । प्रथम श्रेणी के हिन्दी गीतकार 'नीरज' जी ने उन्हें 'निशा–नियामक' की संज्ञा दी है । मशहूर हास्य कवि डॉ. सुरेन्द्र शर्मा ने उन्हें इस पीढ़ी का एकमात्र आई. एस. ओ:2006 कवि कहा है । कवि–सम्मेलनों और मुशायरों के क्षेत्र में भी डॉ॰ विश्वास एक अग्रणी कवि हैं। वो अब तक हज़ारों कवि सम्मेलनों और मुशायरों में कविता–पाठ और संचालन कर चुके हैं। देश के सैकड़ों प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थाओं में उनके एकल कार्यक्रम होते रहे हैं। इनमें आई आई टी खड़गपुर, आई आई टी बी एच यू, आई एस एम धनबाद, आई आई टी रूड़की, आई आई टी भुवनेश्वर, आई आई एम लखनऊ, एन आई टी जलंधर, एन आई टी त्रिचि, इत्यादि कई संस्थान शामिल हैं । कई कॉर्पोरेट कंपनियों में भी डॉ॰ विश्वास को अक्सर कविता–पाठ के लिए बुलाया जाता है।

भारत के सैकड़ों छोटे–बड़े शहरों में कविता पाठ करने के अलावा उन्होंने कई अन्य देशों में भी अपनी काव्य–प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। इनमें अमेरिका, दुबई, सिंगापुर, मस्कट, अबू धाबी और नेपाल जैसे देश शामिल हैं ।

डॉ॰ विश्वास को हिनदुस्तान और बाहर कइ सम्मान भी मिले है जैसे 1) डॉ॰ कुंवर बेचैन काव्य–सम्मान एवम पुरस्कार समिति द्वारा 1994 में 'काव्य–कुमार पुरस्कार2) साहित्य भारती, उन्नाव द्वारा 2004 में 'डॉ॰ सुमन अलंकरण 3) हिन्दी–उर्दू अवार्ड अकादमी द्वारा 2006 में साहित्य–श्री4) डॉ॰ उर्मिलेश जन चेतना मंच द्वारा 2010 में 'डॉ॰ उर्मिलेश गीत–श्री' सम्मान कुमार विश्वास ने जनलोकपाल की लड़ाई में अन्ना हजारे जी के समर्थन के साथ ही जनलोकपाल का मंच द्वारा संचालन भी किया था और जनलोकपाल बिल की अदभुत लड़ाइ लडने के बाद ही कुमार विश्वास इंदौर में उन्हे अग्रसेन महाराज की जयंती पर जब उनसे इंदौर आने का आग्रह किया तो उन्होने मना नहीं किया और वह सीधे दुबई से शो करते हुए अपने घर भी नहीं गए सीधे इंदौर आ गए कुमार विश्वास एक बहुत अच्छे

इंसान है इनकी कविताए अदभुत है । युवा दिलों की धड़कन डॉ.विश्वास अत्यंत प्रतिभाशील व्यक्ति है ।

मैं तुम्हे ढूँढने स्वर्ग तक भी गया ।
मंच पर जिसे मैं गुनगुनाता रहा ।।

M,-jkgr bUnkjh

(जन्मः 1 जनवरी 1950) एक भारतीय उर्दू शायर और हिंदी फिल्मों के गीतकार हैं। वे देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर में उर्दू साहित्य के प्राध्यापक भी रह चुके है राहत का जन्म इंदौर में 1 जनवरी 1950 में कपड़ा मिल के कर्मचारी रफ्तुल्लाह कुरैशी और मकबूल उन निशा बेगम के यहाँ हुआ। वे उन दोनों की चौथी संतान हैं। उनकी प्रारंभिक शिक्षा नूतन स्कूल इंदौर में हुई। उन्होंने इस्लामिया करीमिया कॉलेज इंदौर से 1973 में अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी की और 1975 में बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल से उर्दू साहित्य में एम.ए. किया। तत्पश्चात 1985 में मध्यप्रदेश के मध्यप्रदेश भोज मुक्त विश्वविद्यालय से उर्दू साहित्य में पीएचडी की उपाधि प्राप्त की । राहत इंदोरी जी ने शुरुवाती दौर में इंद्रकुमार कॉलेज, इंदौर में उर्दू साहित्य का अध्यापन कार्य शुरू कर दिया। उनके छात्रों के मुताबिक वह कॉलेज में सबसे अच्छे व्याख्याता थे। फिर बीच में वो मुशायरों में बहुत व्यस्त हो गए और पूरे भारत से और विदेशों से निमंत्रण प्राप्त करना शुरू कर दिया। उनकी अनमोल क्षमता, कड़ी लगन और शब्दों की कला की एक विशिष्ट शैली थी ,जिसने बहुत जल्दी व बहुत अच्छी तरह से जनता के बीच अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। राहत साहेब ने बहुत जल्दी ही लोगों के दिलों में अपने लिए एक खास जगह बना लिया और तीन से चार साल के भीतर ही उनकी कविता की खुशबू ने उन्हें उर्दू साहित्य की दुनिया में एक प्रसिद्ध शायर बना दिया था। वह न सिर्फ पढ़ाई में प्रवीण थे बल्कि वो खेलकूद में भी प्रवीण थे,वे स्कूल और कॉलेज स्तर पर फुटबॉल और हॉकी टीम के कप्तान भी थे। वह केवल 19 वर्ष के थे जब उन्होंने अपने कॉलेज के दिनों में अपनी पहली शायरी सुनाई थी।

राहत जी की दो बड़ी बहनें थीं जिनके नाम तहज़ीब और तक़रीब थे,एक बड़े भाई अकील और फिर एक छोटे भाई आदिल रहे। परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी और राहत जी को शुरुआती दिनों में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा था। उन्होंने अपने ही शहर में एक साइन–चित्रकार के रूप में 10 साल से भी कम उम्र में काम करना शुरू कर दिया था। चित्रकारी उनकी रुचि के क्षेत्रों में से एक थी और बहुत जल्द ही बहुत नाम अर्जित किया था। वह कुछ ही समय में इंदौर के व्यस्ततम साइनबोर्ड चित्रकार बन गए। क्योंकि उनकी प्रतिभा, असाधारण डिज़ाइन कौशल, शानदार रंग भावना और कल्पना की है कि और इसलिए वह प्रसिद्ध भी हैं। यह भी एक दौर था कि ग्राहकों को राहत द्वारा चित्रित बोर्डों को पाने के लिए महीनों का इंतजार करना भी स्वीकार था। यहाँ की दुकानों के लिए किया गया पेंट कई साइनबोड्र्स पर इंदौर में आज भी देखा जा सकता है।

rhljk v/;k;

समकालीन गजल में जीवन दर्शन और प्रमुख प्रवर्तियाँ .

(क) प्रेम विषयक काव्यात्मक अभिव्यक्ति.

(ख) आम आदमी का सजीव चित्रण.

(ग) रूढ़ीवादिता और दकियानूसी विचारों का विरोध .

(घ) भ्रष्ट व्यवस्थाओं के विरुद्ध मोर्चा .

(ङ) विवशता में भी प्रेम की छटा .

(क) प्रेम विषयक काव्यात्मक अभिव्यक्ति.

प्रेम एक व्यापक शब्द है, जो न केवल प्रिय एवं प्रियतमा के मध्य हो सकता है, अपितु समाज में उसके अनेक रूप दृष्टिगोचर होते हैं। उर्दू–फ़ारसी की परंपरागत ग़ज़ल में भी लौकिक एवं अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की गई है। हिन्दी ग़ज़ल में इसे और अधिक व्यापक आयाम मिले हैं। हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में न केवल व्यक्तिवादी लौकिक प्रेम के ही शब्दचित्र रेखांकित किए हैं, अपितु उन्होंने पीड़ित एवं शोषित मानवता के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति के स्वर भी मुखरित किए हैं। चूंकि ग़ज़ल के प्रत्येक शेर में एक नवीन भाव की अभिव्यक्ति की जाती है, अतः हिन्दी ग़ज़लकारों की रचनाओं में अनेक संदर्भों पर आधारित प्रेम के शब्दचित्र मिलते हैं। इसके अतिरिक्त पंरपरागत उर्दू–फ़ारसी से प्रभावित होने के कारण अनेक ग़ज़लकारों ने हिन्दी में प्रेमपरक ग़ज़लों की रचना की है। ऐसे भी अनेक कवि हैं, जिनकी रचनाओं में यत्र–तत्र प्रेमपरक ग़ज़ल के तत्व–स्फुट रूप में मिलते हैं।

हिन्दी की प्रेमपरक ग़ज़लों में संयोग की अपेक्षा वियोग पक्ष का अत्यधिक प्रभावशाली चित्रण हुआ है। वैसे भी किसी कवि की महानता का मापदंड उसकी वियोग–प्रधान रचनाओं की सफलता पर आधारित होता है। हिन्दी की प्रेमपरक ग़ज़लें भी इसीलिए सफल एवं प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं, क्योंकि उनमें कवि के भोगे हुए यथार्थ अनुभवों की बहुरंगी भंगिमाएं सन्निहित हैं। प्रिय के वियोग में केवल स्मृति ही प्रेमी के लिए एकमात्र जीवन–संबल रह जाता है। रात्रि का सन्नाटा एकांत को और भी अधिक गहन एवं अवसादपूर्ण बना देता है। एक–एक पल एक–एक युग की भांति व्यतीत होता है और ऐसी मनःस्थिति में प्रेमी अपने प्रिय की पूर्ण स्मृतियों में खो जाता है। ओंकार गुलशन के शब्दों में–

‘सांझ ढले जब सन्नाटा, मेरे घर का मेहमान हुआ,
तेरी यादों का मेरी तनहाई पर एहसान हुआ।

+++

कैसे कैसे दिन दिखलाए मुझको तेरी चाहत ने,

मैं अपनी बस्ती में अपने लोगों में अनजान हुआ।
अपनों ने तो हँसी उड़ाई मेरी लेकिन ऐ गुलशन,
गैरों ने अफ़सोस किया जब जब मेरी अपमान हुआ।

¼[k½ vke vkneh dk l tho fp=.k

आम आदमी का जीवन में उतना ही महत्त्व है, जितना कि भोजन में नमक का। जिस प्रकार उचित मात्रा में नमक के अभाव में भोजन स्वादहीन एवं अरुचिकर प्रतीत होता है, वैसे ही हास्य–व्यंग्य के बिना जीवन में नीरसता–सी व्याप्त हो जाती है। जीवन के संषर्घ एवं अवसादपूर्ण क्षणों में तो हास्य–व्यंग्य रामबाण कार्य करके मनुष्य को मानसिक रूप से स्वास्थ्य लाभ कराया है। आज के व्यस्त जीवन में स्वस्थ मनोरंजन के लिए हास्य–व्यंग्य की उपादेयता तो और भी अधिक बढ़ गई है। वास्तव में आज का जीवन इतनी अधिक विषमताओं, दुश्चिंताओं और संघर्षों से भरा है कि हास्य और व्यंग्य–प्रधान रचनाएं अधिक सुखद प्रतीत होती हैं। क्षण–भर को आदमी जी खोलकर हँस लेता है।

शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से हास नामक स्थायी भाव से पुष्ट होकर रस की निष्पत्ति होती है। किसी भी विकृति–आकृति, वाणी, वेशभूषा, चेष्टा, अस्वाभाविक हाव–भाव एवं यंत्रवत क्रियाकलापों को देखकर हँसी आ जाना स्वाभाविक है। व्यंग्य भी हास्य का एक प्रमुख अनुवर्ती है। इसे हास्य का प्रभेद भी कहा गया है। यद्यपि हास्य और व्यंग्य को लोग एक ही अर्थ में समझ लेते हैं, किंतु इन दोनों के मध्य सूक्ष्म और मौलिक अंतर है।

हास्य से तात्पर्य मनुष्य की उस हँसी से है, जिसमें मुंह, गाल और आंखें कुछ फूल–सी जाती हैं तथा शब्दयुक्त हँसने की प्रक्रिया से दांतों की पंक्ति का प्रदर्शन हो जाता है, जबकि व्यंग्य में कपोलों में कुछ सिकुड़न आ जाती है, नेत्र कुछ विकसित हो जाते हैं, नीचे का होंठ हिलने लगता है। दांत दिखलाई नहीं पड़ते, किंतु दृष्टि कुछ पैनी हो जाती है और इस प्रकार मुखमंडल पर एक विशेष माधुर्य एवं ताज़गी आ जाती है। मोटे तौर पर हास्य में मनुष्य को खुलकर हँसना पड़ता है, जबकि व्यंग्य में मुश्किल से आती हुई मुस्कान भी विलुप्त हो जाती है। हास्य मावन मन को प्रफुल्लित कर देता है, जबकि व्यंग्य हृदय पर

सीधे चोट करता है। हास्य का उद्देश्य केवल हँसना मात्र होता है, जबकि व्यंग्य का उद्देश्य गंभीर एवं सुधारवादी होता है। व्यंग्य की भाषा में गुदगुदी की अपेक्षा तिक्तता अधिक होती है। वास्तव में जब हास्य विशद आनंद या रंजन को छोड़कर प्रयोजन–निष्ठ हो जाता है तो वहां वह व्यंग्य का मार्ग पकड़ लेता है।

व्यंग्य काव्य में सत्य को अनावृत करके देखा जाता है। इसमें सांकेतिकता और संक्षिप्तता होती है। व्यंग्यकार में निर्भयता और मस्ती की आवश्यकता होती है। व्यंग्य की सफलता संघर्षों से जूझे हुए व्यक्ति में अधिक संभव है। इसमें यथार्थता एवं प्रगतिशीलता होती है। सांकेतिक व्यंजना व्यंग्य को तीव्र बनाती है।

दूसरे शब्दों में व्यंग्य मानवीय दुर्बलताओं के सुधार हेतु कटु शैली में कथित उपहास होता है। व्यंग्य समाज सुधार का सुष्ठु एवं सरल माध्यम होता है। व्यंग्य त्रुटियों के प्रति ध्यानाकर्षण कराता है, जिससे सुधार की प्रवृत्ति जाग्रत होती है।

इस प्रकार हास्य एवं व्यंग्य में मौलिक अंतर होते हुए भी दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हास्य–व्यंग्यकार मनुष्य की शारीरिक असंबद्धता, चारित्रिक असंबद्धता एवं सामाजिक असंबद्धता पर प्रहार करता है।

हमारे हिन्दी साहित्य में हास्य–व्यंग्य की परंपरा प्राचीन काल से चली जा रही है। अन्य काव्य विधाओं के अतिरिक्त हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में भी हास्य व्यंग्य को पर्याप्त प्रश्रय मिला है। शासन के चाटुकारों, दंभी देशभक्तों, पुरातनपंथियों, फ़ैशनपरस्तों, पश्चिमी सभ्यता के पक्षधरों, आपातकालीन स्थिति की उपलब्धियों एवं अन्य समसामयिक संदर्भों पर हिन्दी ग़ज़लकारों ने करारा प्रहार किया है। इस प्रकार परिवेशगत सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक असमानताओं तथा विद्रूपताओं के शब्दचित्र भी हिन्दी ग़ज़ल के माध्यम से अंकित किए जाने लगे, जिसके फलस्वरूप सामाजिक, राजनीतिक और रूढ़िवादी परंपराओं एवं विचारधाराओं पर आधारित ग़ज़लें भी हास्य–व्यंग्यपरक ग़ज़लों के विषय–क्षेत्र में आ गईं।

शुद्ध हास्यपर ग़ज़लों में आम आदमी के मनोरंजन करने का उद्देश्य सन्निहित रहता

है। आधुनिक परिवेश में नेता, मंत्री, व्यापारी, छात्र, शिक्षक, पुजारी, वकील, पत्रकार, समालोचक, संपादक, परिवार नियोजन, कृत्रिमता आदि को हास्य के आलंबन के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। सुप्रसिद्ध हास्य कवि काका हाथरसी की हास्यपरक ग़ज़लों काफी लोकप्रिय हुई हैं। अपनी एक ग़ज़ल के कतिपय शेरों के माध्यम से उन्होंने परिवार से लेकर संसद तक के यथार्थ स्वरूप का चित्रण कितनी कुशलता से किया है–

'जुदाई में भी हमने वस्ल की तिकड़म निकाली है,
तेरी लेटेस्ट फोटो अपने सीने से लगा ली है।

+++

वो संसद आज की तहज़ीब में संसद नहीं जिसमें,
न चप्पल हैं, न जूता है, न थप्पड़ है, न गाली है।
कहा साहब से कुछ तनखा बढ़ा दो, डांट कर बोले,
हवा आखो मियां, औलाद क्यों इतनी बना ली है।'

आज की नेतागीरी एवं उसकी अस्थिरता को आलंबन बनाकर काकाजी ने कितनी चतुरता से हास्य की सृष्टि की है, यह उन्हीं के शब्दों में देखिए–

'लीडरी अब बन गई है ज़ोकरी हम क्या करें।

¼x½ :<hokfnrk vkj nfd;kulh fopkjk dk fojk/k ·

भाव–संप्रेषण एवं अर्थगांभीर्य की दृष्टि से चिंतन–प्रधान हिन्दी ग़ज़लों का अपना महत्त्व है। चिंतन के अनेक आयाम हो सकते हैं। वह चिंतन सामाजिक, राजनीतिक, आध यात्मिक अथवा परिवर्तनशील परिवेश के अनुकूल बदलते हुए जीवन–मूल्यों के संदर्भ में हो सकता है। यद्यपि खाली मस्तिष्क को शैतान के घर की संज्ञा दी जाती है, किंतु कवि या विचारक अपने अवकाश के क्षणों में गहन विचार–सागर में गोते लगाकर चिंतन के सुंदरतम एवं अभिनव मोती खोज निकालते हैं। इस प्रकार चिंतन की पृष्ठभूमि पर लिखी हुई हिन्दी ग़ज़लें पाठक को अभिव्यक्ति की तीव्रता से झकझोरते हुए कुछ सोचने को विवश कर देती हैं। चिंतन–प्रधान हिन्दी ग़ज़लों में न तो प्रेमपरक ग़ज़लों की भांति प्रेम की चुलबुलाहट

होती है और न ही हास्य–व्यंग्यपरक ग़ज़लों की भांति खिलखिलाहट अथवा तिलमिलाहट दृष्टिगोचर होती है। संक्षेप में हिन्दी की चिंतन–प्रधान ग़ज़लें कवि की वह सुंदरतम, किंतु गहन अभिव्यक्तियां हैं, जिसमें पाठक के लिए परत–दर–परत चिंतन में नए द्वार खुलते जाते हैं। इस दृष्टि से चिंतन–प्रधान हिन्दी ग़ज़लें बुद्धिजीवियों के प्रज्ञा–विलास का साध ान हैं।

साधारणतया चिंतन–प्रधान हिन्दी ग़ज़लों के माध्यम से नवीन सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों तथा प्रेम के आध्यात्मिक पक्षा को स्वर दिया गया है। इन ग़ज़लों का विधिवत एक अपना स्तर हैं, जो हमें हिन्दी ग़ज़ल के अन्य प्रभेदों में नहीं मिलता।

चिंतन–प्रधान ग़ज़लें जीवन एवं जगत के विविध एवं व्यापक संदर्भों की सूक्ष्मतम व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। इन ग़ज़लों के माध्यम से कवियों ने जीवन को परिभाषित करने का प्रयास किया है। जहां एक ओर प्राचीन संतों एवं मनीषियों ने जीवन को मात्र स्वप्न की संज्ञा प्रदान की है, वहीं आज के बदलते परिवेश में इसे विवशताओं एवं दुश्चिंताओं का पर्याय कहा गया है। विनोद तिवारी के शब्दों में–

'ज़िंदगी मजबूरियों की सहचरी है,
एक चादर है जो पैबदों भरी है।'

आज सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का निरंतर हास होता जा रहा है। जनजीवन संकीर्ण मानसिकता, मानसिकता, स्वार्थपरता एवं अवसाद से घिरता जा रहा है। इसी संदर्भ में सशक्त अभिव्यक्ति कवि मोहन सोनी की ग़ज़ल में द्रष्टव्य है।–

'ख़त्म होती जा रही है ज़िंदगी,
आज ख़ुद को खा रही है ज़िंदगी।
आदमी अब आदमी से दूर हैं,
मरसिया सा गा रही है ज़िंदगी।'

तभी तो जीवन को कठिनता एवं पीड़ाकुलता का पर्याय स्वीकारते हुए नवीन प्रतीकों एवं बिंबों के माध्यम से कवि जहीर कुरैशी अपनी ग़ज़ल में कहते हैं–

'अब कठिन हो गई है ज़िंदगी,

आलपिन हो गई है ज़िंदगी।

दर्द के राग गाती हुई ,

वायलिन हो गई ज़िंदगी।'

वास्तव में यह जीवन पानी के बुलबुले के सामन क्षणिक एवं नश्वर है। प्राचीन संतों एवं मनीषियों ने भी इसे स्वीकार किया है। इस शाश्वत सत्य को कवि रामावतार चेतन ने उर्दू का कुछ गहरा रंग देते हुए अपनी ग़ज़ल में सर्वथा अछूते ढंग से अभिव्यक्त किया है–

'ज़िंदगी फ़क़त लिफ़ाफ़ा यारो,

इसमें ख़त ही नहीं, मज़मून कहां से आया।'

उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में नई पीढ़ी के सशक्त हिन्दी ग़ज़लकार कुंवर बेचैन ने जीवन रूपी चादर को कबीरदास की भांति यत्नपूर्वक ओढ़ने का परामर्श देते हुए कहा है–

'अब अपनी ज़िंदगी को पहनना संभालकर,

यह खुरदुरा–सा टाटा है मख़मल नहीं कुंअर।'

बदलते परिवेश में जीवन की कठिनाइयों से जूझता हुआ मानव कितना यंत्रवत एवं जड़वत हो गया है। उसकी मानवता खंडित हो चुकी है, सहृदयता का स्त्रोत जैसे लुप्त–सा हो गया है। 'वसुधैव कुटुंबकम' के सिद्धांत से दूर भागता हुआ आदमी अहंवाद एवं व्यक्तिवाद की दीवार में क़ैद सा होकर रह गया है। माणिक वर्मा के शब्दों में–

'आप अपनी सरहदों में सो गया है आदमी,

चीन की दीवार जैसी हो गया है आदमी।'

इतना ही नहीं, आज के मानव का छद्मवेशी आचरण चिंता का विषय बनता जा रहा है। आत्मविश्वास के अभाव में भय, कुंठा, संत्रास तथा हीन भावना से ग्रसित मानव के व्यवहार में कृत्रिमता की दुर्गंध आने लगी है। एक–एक मनुष्य ने कई–कई मुखौटे लगाना आरंभ कर दिया है। इस तारतम्य में नंदकिशोर रजनीश की ग़ज़ल के कतिपय शेर कितने सटीक एवं प्रभावशाली प्रतीत होते हैं–

'भीतर विष लेकिन बाहर से हाथ मिलाकर हँसते लोग,
आंखों में लेकर मिलते हैं, नफ़रत के गुलदस्ते लोग।'

¼?k½ Hkz"V 0;oLFkkvksa ds fo#) ekspkZ -

साहित्य और दर्शन एक–दूसरे के पूरक हैं। यदि दर्शन साहित्य को वर्ण्य विषय के नए आयाम प्रदान करता है तो साहित्य भी दर्शन के दुरूह पक्षों को कोमलतम अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वस्तुतः दर्शन साहित्य को संजीवनी देता है। साहित्य का दर्शन उसके स्त्रष्टा के अंतर्मन का नवनीत होता है। दर्शन काव्य की वास्तविक दृष्टि है।

हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में दार्शनिक तत्त्वों को सम्यक् रूप से स्थान दिया गया है। यद्यपि भारतीय दर्शन में आध्यात्मिक सत्ता को महत्ता प्रदान की गई है, किंतु पारलौकिक संसार की अंधश्रद्धा जब भौतिक जगत में यथार्थ को असत्य सिद्ध करने लगी, तब भौतिक जगत का जी भर भोग करने की मनुष्य की आदिम प्रकृति प्रबल होती गई। पारलौकिक जगत के मिथ्या प्रलोभनों का रहस्योद्घाटन करने के लिए चार्वाक ने व्यक्ति को भौतिक जगत के सुखवाद की ओर मोड़ दिया। चार्वाक–दर्शन के अंतर्गत ईश्वरीय सत्ता का सर्वथा निषेध करके यथार्थ जगत का जी भर उपभोग करने का पूर्ण समर्थन किया गया है। आधुनिक प्रबुद्ध पीढ़ी के लोग भी काल्पनिक अथवा पारलौकिक जगत की अपेक्षा भौतिक जगत को अधिक सार्थक स्वीकार करने लगे हैं। इतना ही नहीं, आधुनिक परिवेश के यांत्रिक संत्रास से हारे हुए और पूंजीवादी, साम्यवादी संघर्ष के पाटों में पिसते हुए मनुष्य ने यह सोचना आरंभ कर दिया कि यथार्थ जगत ही सत्य है।

कवि और साहित्यकारों ने भी बदलते हुए दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में अपनी अभिव्यक्ति को चिंतन के नवीन आयाम प्रदान किए हैं। हिन्दी ग़ज़लों में भी जीवन–जगत एवं अन्यान्य विषयों पर स्फुट रूप से दार्शनिक विचारों को स्थान प्रदान किया गया है। ग़ज़लों में चूकिं एक ही शेर में पूरी बात कह देनी होती है, इसलिए उनमें प्रतीकात्मकता का बहुत सहारा लिया है और चूंकि एक–एक शब्द विभिन्न परिस्थितियों में असंख्य वस्तुओं का प्रतीक हो सकता है, इसलिए धीरे–धीरे ग़ज़ल में व्यापकता की कला इतनी विकसित हो गई है कि एक ही शेर प्रतीक रूप में आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और व्यावहारिक जीवन में एक–सा लागू हो सकता है। इसी आधार पर दार्शनिक तथ्यों को कविता के साथ सामने

लाने में ग़ज़ल का प्रयोग बहुत किया जाता है।

हिन्दी ग़ज़ल के प्रत्येक शेर में एक पृथक विचार सन्निहित होने के कारण एक ही ग़ज़ल के अनेक शेरों में अलग–अलग दार्शनिक चिंतन को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

हमारी संस्कृति मानव–मूल्यों पर आधारित रही है, अतएव यहां रक्त–क्रांति की संभावना नहीं दीखती। सत्य, अहिंसा और शांति यहां के जीवन–दर्शन में घुलमिल से गए हैं। साम्यभाव के चिन्ह तो रामराज्य काल से ही दृष्टिगोचर होते रहे हैं, परंतु आज हमारे जीवन–मूल्यों में परिवर्तन होता जा रहा है। प्रस्तुत संदर्भ में चिंतित होते हुए गांधीजी ने भी अनेक बार इस बात पर बल दिया कि यदि भव्य अट्टालिकाओं और देश की झोंपड़ियों के मध्य का अंतर नहीं गिराया गया तो क्रांति हो सकती है। आज के बदलते हुए परिवेश में सामाजिक विसंगतियों, विडंबनाओं एवं विद्रूपताओं के स्वर मुखरित हो रहे हैं। हमारे समाज में कृत्रिम मुखौटा पहनकर घूमनेवाले ही अगुआ बन बैठे हैं और स्वार्थ–सिद्धि में अहर्निश रत रहते हैं। वास्तव में जिस देश में भूमि कम हो, दल–दल अधिक हो, जिस देश के बुद्धिजीवी एक शोधग्रंथ हाथ में लेकर वाल्मीकि बन जाते हैं, जिस देश के 'धर्मप्राण' भक्ति का कसा हुआ लिबास देखकर चंचरीक बन जाते हैं, जहां मौलिकता गणिका बन गई है और लोग चंद किताबें पढ़कर बुद्ध बन गए हैं, जहां आवश्यक वस्तुओं की परछाई का पीछा करते–करते लोग एक दिन स्वयं परछाई हो जाते हैं, उस देश और समाज में फैल रहे भ्रष्टाचार का सच्चा चित्र भवानी शंकर की ग़ज़ल के शेर के माध्यम से देखिए–

'ज़िंदगी का उदाहरण देखो,
लाश राशन दूकान तक पहुंची।'

इतना ही नहीं, सत्य और ईमान जैसे शब्द भी अब शब्दकोश तक ही संकुचित होकर रह गए हैं। असत्य, स्वार्थपरता तथा मक्कारी का इतिहास गली–गली लिखा जा रहा है। कवयित्री राजकुमारी रश्मि के शब्दों में–

'ईमान बदल देते हैं तारीख़ की तरह
इक झूठ का इतिहास हैं मेरी गली के लोग।'

मनुष्य की बलबती इच्छाएं अनंत हैं। लोभ के वशीभूत होकर वह कामनाओं को दमित करने की अपेक्षा उसे विस्तार ही प्रदान करता हैं। राजेश मेहरोत्रा की ग़ज़ल के एक शेर के अनुसार–

'चाहे कितना काटिए इच्छाएं बढ़ती जाएंगी,
मन के उर्वर खेम में यदि लोभ का दाना पड़ा।'

¼?k½ foo'krk esa Hkh çse dh NVk ½

ईष्यो, द्वेष, घृणा एवं स्वार्थपरता पर आवरण डालकर मानव व्यवहार इतना कृत्रिम एवं औपचारिक–सा हो गया है कि स्नेह, ममत्व एवं अपनत्व जैसे तत्त्व खोजने पर भी नहीं मिलते। इस प्रसंग में श्याम 'बेबस' का दो टूक शेर द्रष्टव्य है–

'इस दुनिया में मेरे भाई, नफरत है, मक्कारी है,
ढूंढ़ रहा हूं बस्ती–बस्ती मैं थोड़ा–सा अपनापन।'

वस्तुतः आज हम विश्वबंधुत्व की भावना को भुलाकर समस्त समस्याओं का हल युद्ध के द्वारा खोजने को तत्पर होते जा रहे हैं। विज्ञान का प्रयोग नवनिर्माण की अपेक्षा सभ्यता, संस्कृति एवं प्राकृतिक सौंदर्य के विनाश के लिए किया जाने लगा है। ऐसी स्थिति में समस्त मानवता को नई दिशा प्रदान करने के उद्‌देश्य से कवि विद्यासागर वर्मा अपनी ग़ज़ल के शेर में एक नया युद्ध–दर्शन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–

'राख के स्तूप में इतिहास चीखेगा
बन दशानन भूमिजा का सुख हरो मत तुम।'

इतना ही नहीं, धर्म के नाम पर भी आए दिन संघर्ष एवं दंगे होते रहते हैं। कोई भी धर्म हमें बैर करना नहीं सिखाता, फिर भला ऐसा क्यों? शायद इसलिए कि मनुष्य के हृदय में दूसरों के प्रति घृणा एवं ईर्ष्या जैसी दुर्भावनाएं पनप रही हैं। स्वार्थांधता इतनी बढ़ गई है कि मनुष्य मनुष्य के रक्त का प्यासा हो रहा है। ऐसी विषय परिस्थिति के लिए उत्तरदायी लोगों से कवि प्रश्न करते हुए कहता है–

'मज़हबों का एक ही हासिल, सिर्फ़ नफ़रत आदमीयत से,
ख़ून से तर ओ भले लोगो, कब करोगे प्यार की बातें।'

प्रेम, ग़ज़लों के लिए एक परंपरागत विषय है। यह प्रेम लौकिक एवं अलौकिक दोनों ही प्रकार का होता है। प्रेम में कल्पना का विशेष महत्त्व रहता है, लेकिन कल्पना की उड़ानों में भटकनेवाला प्रिय यथार्थ की धरती पर उतरता है तो पीड़ा एवं असफलता के अतिरिक्त कुछ नहीं प्राप्त होता। इस तथ्य को स्वीकारते हुए माणिक वर्मा अपनी ग़ज़ल के एक शेर में मानव को सतर्क करते हुए कहते हैं–

'रिश्तों की किस्तें मत भरना, इससे मन का मोल न करना
ये ऐसा सौदागर है जो, खुद लुटकर भी ठगता है।'

वास्तव में प्रेम एक अमूल्य एवं स्वाभाविक भावना है, जिसे कल्पना की भावभूमि की अपेक्षा यथार्थ के धरातल पर अंकुरित करना अधिक उपयुक्त है। तभी तो विद्यासागर वर्मा ने यथार्थवादी प्रेम में अपनी आस्था इस प्रकार व्यक्त की है–

'इन्द्रधनुष आकाश पर बनते, नहीं भू पर कभी भी,
प्यास के जलते कथानक को यहीं से मोड़ता हूं।'

कभी–कभी प्रेम की असफलता के लिए मिथ्या अहंकार भी उत्तरदायी सिद्ध होता है। प्रेम दो ह्दयों की भावधरा का संगम ही तो है। जब इनके मध्य अहंकार की दीवार खड़ी हो जाती है, तब प्रेम की पूर्णता को आघात लगता है। इस संदर्भ में आत्मप्रकाश शुक्ल का प्रस्तुत शेर कितना सार्थक बन पड़ा है–

'प्यार के यज्ञ की पूर्णता के लिए,
धीरे–धीरे अहं का हवन तो करो।'

संसार की नश्वरता एवं नियतिवादी दर्शन के तत्त्व भी हिन्दी ग़ज़लों में यत्र–यत्र बिखरे हुए मिलते हैं। भाग्य के निर्माण में सुख और दुःख का समान रूप से हाथ रहता है। सुख के पश्चात दुःख और दुःख के बाद सुख का आगमन दोनों का अस्तित्व–बोध एवं मूल्यांकन कराने में सहायक होता है। कविवर नीरज के शब्दों में–

'हर किसी शख्स की किस्मत का यही है किस्सा,

आया राजा की तरह, जाएगा निर्धन की तरह।'

निस्संदेह परिवर्तनशीलता का वैराट्य ही सृष्टि की विशाल दार्शनिक पीठिका है। सुख–दुःख की धूप–छांव से जीवन कभी मुक्त नहीं हो सकता। इस संदर्भ को रूपायित करनेवाला एक शेर विद्यासागर वर्मा के शब्दों में देखिए–

'मरुथल के साथ–साथ कभी मधुबनों के साथ।

हम मुक्त घूमते हैं, मगर बंधनों के साथ।'

आधुनिक अति भौतिकवादी युग में आस्तिकता को मिथ्याडंबर एवं अंधविश्वास की संज्ञा दी जाने लगी है। कबीर तो बहुत पहले ही मूर्तिपूजा का विरोध कर चुके थे, किंतु संभवतः उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि पत्थर के भी हृदय होता है। पत्थर भी रोते हैं, गाते और हँसते हैं। तभी तो मनीषियों ने उनमें दैवत्य की प्राण–प्रतिष्ठा की थी। इस विचार से सहमत होते हुए मूर्तिपूजा का समर्थन कवि ने इस प्रकार किया है–

'पत्थरों के आंसू हैं, नाम है नदी जिसका,

पत्थरों पे इस खातिर, फूल हम चढ़ाते हैं।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्याओं से घिरा हुआ आज का मानव जीवन अत्यधिक जटिल हो गया है। सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उत्पन्न अस्थिरता एवं असमानता ने मानव को दिग्भ्रमित कर दिया है। हम अपनी सांस्कृतिक विरासत एवं नैतिक जीवन–मूल्यों को भुलाते जा रहे हैं। आंकड़ों की कूटनीति ही देश की वर्तमान प्रगति को उजागर करती है अन्यथा वस्तुस्थिति बिल्कुल प्रतिकूल है। हमारे उत्थान के लिए जिन आयातित योजनाओं को आधार बनाया गया है, वे देश की मूल प्रवृत्ति एवं पर्यावरण पर आधारित न होने के कारण मृगतृष्णा मात्र बनकर रह गई हैं। इसलिए इनसे हमारी सर्वहारा पीढ़ी की ज्वलंत समस्याएं हल नहीं हो सकतीं। क्रांतियां भी कुर्सी तक जाकर चुक जाती हैं। जनता को स्वतंत्रता के नाम पर लोकपत्र की ओर से कुर्सियों की दूषित राजनीति के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला। ऐसे भटकाव की स्थिति में युवा आक्रोश का लावा फूटकर बह

निकलना स्वाभाविक ही है। जीवन एक उलझी हुई पहेली बनकर रह गया है। वह एक अनुत्तरित प्रश्न का पर्याय बन गया है। नीरज के शब्दों में–

'कोई कंघी न मिली, जिससे सुलझ पाती वह
ज़िंदगी उलझी रही, ब्रह्म के दर्शन की तरह।'

इस प्रकार जीवन–दर्शन के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी ग़ज़ल का अध्ययन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हिन्दी ग़ज़लों में प्रेम, जीवन, जगत, अध्यात्म, भौतिकवाद के परिणाम एवं नैतिक मूल्यों से संबंधित दार्शनिक चेतना के तत्त्व यत्र–तत्र विद्यमान हैं, जो न केवल कवियों के चिंतन को स्पष्ट करते हैं, अपितु स्वस्थ साहित्य की संभावनाओं को भी बल प्रदान करते हैं।

pkFkk v/;k;

ledkyhu xtyk dk oxhdj.k -

(क) प्राचीन और मध्यकालीन गजलों का आधार.

(ख) हिंदी गजलों का आधार.

(ग)उर्दू की गजलों का आधार .

(घ) भोजपुरी गजलों का आधार .

(ड) मैथिलि गजलों के आधार.

(च) पश्चात्य गजलों का आधार

pkFkk v/;k;

¼d½ çkphu vkj e/;dkyhu xtyk dk vk/kkj

ये तो सर्वज्ञात है कि गजल का उद्‌भव भारत में नहीं हुआ, बल्कि ये आयातित विधा है। इसका अंकुरण फार्सी–भाषा में हुआ, तदनन्तर ये उर्दू–भाषा में आयी। उर्दू के कवियों ने इसका पालन–पोषण किया और इसके साहित्य–भण्डार को निरन्तर समृद्ध किया। 'गजल' चूँकि अरबी–भाषा का शब्द है, इसलिए कुछ लोगों का मानना है कि इसका उद्‌भव अरबी–भाषा में हुआ, लेकिन वास्तविकता ये है कि वहाँ इसका स्वरूप गजल का न होकर 'तश्बीब' का था। ' कसीदे' का ये अंश 'तश्बीब' ईरान के कवियों को बेहद पसन्द आया और उन्होंने इसे अपना लिया। कालान्तर में उसे गजल कहा गया। यानी गजल का उद्‌भव फार्सी में हुआ। फार्सी में गजल का वर्ण्य विषय केवल प्रेम, शृंगार, जाम–पैमाना तक ही सीमित रहा। लेकिन जब गजल वीलासिता और कामवासना की जकड़बन्दी में बँधी तो इसमें परिवर्तन की आावश्यकता महसूस हुई। तब फार्सी–कवियों ने इसमें आध्यात्मिकता और दर्शन का समावेश किया, परिणामस्वरूप फार्सी–साहित्य में गजल बहुत समृद्ध हुई। सुप्रसिद्ध फार्सी–कवि शेख 'सादी' शीराजी महबूब की तुलना 'सर्व' नामक एक विशेष प्रकार के पेड़ से करते हैं, जो औसत लम्बाई का पतला, सफेद, सीधा और सुन्दर होता है। शेर द्रष्टव्य है–

सर्व बालाई व सहरा मी रवद
रफ्तनश बीं ता चे जीबा मी रवद
मी रवद दर राहो–दर अज्जाइ खाक
मुर्दा मीगो यद मसीहा मी रवद

शेख 'सादी' कहते हैं कि उनका महबूब सहरा की तरफ जा रहा है। वो इतने खूबसूरत अन्दाज से चल रहा है कि उसकी चाल मनोहारी लग रही है। उसको जाते देखकर जमीन में सोया हुआ मुर्दा जाग उठता है और कहता है कि– देखो! मसीहा जा

रहा है। उसे देखकर अब हमें नयी जन्दगी मिल जायेगी। अमीर खुसरो की गजलों में जहाँ प्रकृति प्रेम झलकता है, वहीं वे आध्यात्मिकता और अलौकिक प्रेम से भी ओतप्रोत हैं। शेर द्रष्टव्य हैं–

रसीदे–बादे–सबा ताजा कर्द जाने–मरा

नहुघ्फ्ता दाद ब मन बू–ए–दिल सिताने–मरा

मरा गुजर व गुलिस्ताँ बसीस्त लेक चे सूद

कि सू–ए–मन नजरे–नीस्त गुलसिताने–मरा २

खुस्रो कहते हैं कि ''सुबह की ठण्डी और ताजा हवा ने मेरे पास पहुँचकर मेरी जान और आत्मा को सुगन्धित कर दिया। ऐसा लगा जैसे उसने चुपके से आकर मेरे महबूब की खुश्बू मुझे सौंपी हो।'' 'गुलशन' प्रतीक के माध्यम से वो कहते हैं कि मह्बूब की गलियों से मेरा अक्सर गुघ्जरना होता है, लेकिन कोई लाभ नहीं, उसने एक बार भी मुझे नजर उठाकर नहीं देखा। इराकी हम्दानी की गजलें अलौकिक प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनके कुछ शेर द्रष्टव्य हैं–

नखुश्तीं बादा कन्दर जाम करदन्द

जे चश्मे–मस्ते–साघ्की दाम करदन्द

चूँ बाखुद याफतन्द अहले–तरब रा

शराबे–बेघ्खुदी दरजाम करदन्द ३

वो कहते हैं कि पहले तो जाम में शराब डाली गयी और फिर उसका नशा बढ़ाने के लिए साकी की मस्त आँखों से नशा उधार लेकर जाम में मिला दिया गया। उसके बाद भी जब रिन्दों को होशो–हवास में पाया तो उन्हें मदहोश करने के लिए उनके प्यालों में बेखुदी की शराब डाली गयी। फार्सी–कवि सलमान सावजी ने अपनी गजलों में मह्बूब के सौन्दर्य का अद्भुत वर्णन किया है। उनके शेर उद्धृत हैं–

बेया कि बेलबे–लाले तू कारे–मन खाम अस्त

जे अक्से–रू–ए–तू आतश फतादा दर जाम अस्त

मरा कि चश्मे–तू बख्त अस्त, बख्तदर ख्वाब अस्त

तुरा कि जुल्फे–तू शाम अस्त, सुब्ह दर शाम अस्त

फार्सी में गजल के प्रवर्द्धन का श्रेय मुख्यतरू तीन कवियों शेख सादी, अमीर खुस्रो और हफीज शीराजी को जाता है। इसके बाद लगभग डेढ़ सौ साल तक फार्सी–गजल के क्षेत्र में खामोशी छा गयी। बाद में ये परम्परा फिर से जीवन्त हो उठी और आज भी फार्सी में गजलें कही जा रही हैं। उस काल में जब उर्दू–भाषा फार्सी एवं हिन्दी के मिलाप से बन रही थी, तब अमीर खुस्रो ने गजलें कहीं। इनकी गजलों की भाषा को न तो उर्दू ही कहा जा सकता है और न ही हिन्दी, लेकिन उनकी यहाँ प्रस्तुत गजल उर्दू–भाषा के प्रारम्भिक विकास–क्रम का सुन्दर उदाहरण है–

जे हाले–मिस्कीं मकुन तगाफुल दुराये नयना बनाये बतियाँ

कि ताबे–हिज्राँ न दारमे–दिल न लेहू काहे लगाये छतियाँ

चू शम्अ सोजाँ, चू जर्रा हैराँ, हमेशा गिरियाँ ब इश्के–आँ मह

न नींद नैना, न अंग चौना, न आप आवे न भेजे पतियाँ

शबाने–हिज्राँ दराज चू जुल्फ बरोजे–वस्लत चू उम्र कोतह

सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो वैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ ७

काल–विभाजन – फिराक गोरखपुरी ने अपनी पुस्तक 'उर्दू भाषा और साहित्य' में उर्दू– काव्य के इतिहास को निम्नलिखित प्रकार विभाजित किया है–

1. दक्षिण देशीय काव्य
2. दिल्ली में उर्दू–काव्य का विकास
3. लखनवी कविता
4. दिल्ली की मध्यकालीन कविता
5. दरबारों के बचे–खुचे प्रभाव
6. सामाजिक चेतना और नयी कविता
7. गजल का पुनरुत्थान

8. प्रगतिवादी युग

उक्त के अतिरिक्त बाबू ब्रजरत्नदास ने सन् १६३४ में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'उर्दू—साहित्य का इतिहास' में निम्न प्रकार काल—विभाजन का उल्लेख किया है।

1. उर्दू—साहित्य का दक्षिण में आरम्भ
2. दिल्ली—साहित्य का दक्षिण में आरम्भ
3. दिल्ली—साहित्य केन्द्र का पूर्व मध्यकाल
4. दिल्ली—साहित्य केन्द्र का उत्तर मध्यकाल
5. दिल्ली—साहित्य केन्द्र का उत्तरकाल
6. लखनऊ—साहित्य केन्द्र रू 'नासिघ्ख' और 'आतिश'
7. लखनऊ—साहित्य केन्द्र रू मर्सिये और मर्सियागो
8. उर्दू—साहित्य के अन्य केन्द्र
9. उर्दू—साहित्य का वर्तमानकाल

कुछ विद्वानों ने उर्दू—हिंदी गजलों का दो खण्डों में काल—विभाजन किया—

1. प्राचीनकाल
2. अर्वाचीनकाल

जबकि कुछ अन्य विद्वानों और समालोचकों ने इसे चार खण्डों में विभाजित किया है—

1. प्राचीनकाल (दक्षिण केन्द्र के शायरों से 'खान आर्जू' तक)
2. मध्यकाल ('सौदा' से 'दाग' देहलवी तक)
3. आधुनिककाल ('हाली' से 'जिगर' तक)
4. अत्याधुनिककाल (सन् १६६० ई. से अब तक)

¼[k½- fganh xtyksa dk vk/kkj

अभी ये रिसर्च का मामला है। उर्दू—शायरी का, खास तौर से हिंदी गजल का इतिहास तो अमीर खुस्रो (१३४५ ईध) से प्रारम्भ होने के प्रमाण हैं, परन्तु उनसे भी बहुत पहले रावणकृत शिव—स्तोत्र में ऐसे श्लोक मिलते हैं जो अरबी अरूज पर आधारित हैं।

समयकाल का आकलन सम्भव नहीं—

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
ग्लेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम्।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नरू शिवरू शिवम्।

इस श्लोक का आधार शुद्ध अरबी अरूज 'मफाएलुन मफाएलुन मफाएलुन मफाएलुन' पर है। अमीर खुसरो के बाद उर्दू—शायरी का कहीं जियादा जिक्र नहीं मिलता। सबसे पहला साहिबे—दीवान शायर कुली कुतुब शाह को माना जाता है जो दकन के राजा थे। उन्हें उर्दू का प्रारम्भिक शायर माना जाता है, मगर वली दकनी (१६६८—१७०६) को उर्दू—गजल का बाबा आदम कहा जाता है, परन्तु इतिहास में दो ऐसे शायरों का विवरण मिलता है जिन्होंने उर्दू—शायरी के बाध्कायदा आघ्गाघ्ज से पहले शेर कहे थे। प्यारेलाल 'शौघ्की' जो जहाँगीर के काल के विद्वान थे। उनकी एक गजल के दो शेर देखिए—

जिन प्रेम रस चाखा नहीं, अमृत पिया तो क्या हुआ
जिन ईश्क में सर ना दिया, जो जग जिया तो क्या हुआ
मारग बसी सब छोड़कर, दिल तन सेतीं खल्वत पकड़
'शौकी' पियारेलाल लाल बिन, सब सीं मिला तो क्या हुआ

बह्र शुद्ध अरबी बह्र है। बह्रे—रजज 'मुस्तफएलुन' चार बार एक मिस्रे में। इसी तरह राय पण्डित चन्द्रभान 'बरहमन'(या बिरहमन) नाम के एक शायर शाहजहाँ के दरबार में मीर मुंशी थे, उनकी एक गजल के दो शेर देखिएदृ

खुदा ने किस शह्र अन्दर हमन को लाय डाला है
न दिलबर है, न साघ्की है, न शीशा है, न प्याला है
'बरहमन' वास्ते स्नान के फिरता है बगिया सीं
न गंगा है, न जमुना है, न नद्दी है, न नाला है

ये भी शुद्ध अरबी बह्र, बह्रे—हजज पर आधारित है जिसके अर्कान हैं 'मुफाईलुन' चार

बार एक मिस्रे में। जबान और बयान में किस घ्कदर पुघ्ख्तगी है। उस दौर के मुस्लिम शायरों का कहीं जिक्र नहीं मिलता। वली दकनी इन शायरों से कोई डेढ़ सौ साल बाद हुए। इस तरह सही अन्दाजा लगाना सम्भव नहीं कि अरबी अरूज भारत में कब पहुँचा। सम्भवतरू अमीर खुसरू के जमाने में अरूज आधारित शायरी होने लगी थी। भारत में जब से गंगाजमुनी तह्जीब मिलती है तब से ही हिन्दू—मुसलमानों ने भी एक—दूसरे की कलाओं को सीखनेसमझने में किसी तरह की संकीर्णता नहीं रखी। हिन्दू शायरों ने अरबी अरूज को उसी तरह दरियादिली से अपनाया जिस तरह मुसलमानों ने भारतीय संगीत, भारतीय छन्दशास्त्र को खुले दिल से अपनाने में झिझक मह्सूस नहीं की और इस तरह गंगा—जमुनी तह्जीब मज्बूत—से—मज्बूत तथा समृद्ध होती गयी। क्या खलील बिन अहमद की खोज से पहले भी अरूज आधारित शायरी होती थी रिसर्च से ये बात साबित हो चुकी है कि खलील बिन अहमद से पहले भी बाकायदा छन्दबद्ध शायरी होती थी।

यूनानी भाषा में इसकी मिसालें मिलती हैं, मगर उनकी बह्रें इतनी स्पष्ट नहीं हैं, जबकि फार्सी में इसकी मिसालें खूब मिलती हैं। बहराम गौर ४३० से ४३२ ई. तक वो ईरान का बादशाह रहा। उसके जमाने का एक शेर मिलता है जिसका पहला मिस्रा उसका और दूसरा मिस्रा उसकी प्रेमिका दिलआराम का कहा हुआ साबित हुआ है। ये तो पाँचवी सदी का उदाहरण है। छठी सदी का भी एक शेर मिलता है, खुसरू परवेज उस समय बादशाह था। ये शेर उसकी प्रेमिका शीरीं के महल के शिला पर अंकित था। हैरत की बात ये है कि दोनों शेर खालिस अरबी बह्रों में थे। एक बह्रे—रमल का वज्न था 'फाएलातुन,फएलातुन, फेलुन' तो दूसरा बह्रे—मोतघ्कारिब का एक वघ्ज्न था 'फउलुन, फउलुन, फउलुन, फअल'। इस तरह ये बात साबित होती है कि खलील बिन अहमद ने अरबी अरूघ्ज बनाते समय यूनानी और फार्सी अरूघ्ज से भी फायदा उठाया था। यहाँ एक और पते की बात, ये दोनों बह्रें, हिन्दी छन्दशास्त्र में भी मौजूद हैं। बह्रे—रमल को हिन्दी में 'हरिगीत' (हरिगीतिका) तथा बह्रे—मोतकारिब को 'भुजंगप्रयात' कहते हैं। इससे ये आभास भी होता है कि खलील बिन अहमद ने सम्भवतरू यूनानी, ईरानी तथा हिन्दी अरूज से भी लाभ उठाया होगा। तो

क्या हिन्दी छन्दशास्त्र का प्रभाव भी है अरबी अरूघ्ज पर रू हिन्दी अरूज से अभिप्राय शुद्ध रूप से संस्कृत का अरूघ्ज ही है, जिसे छन्द कहा जाता है। पिंगल ऋषि ने ईसा मसीह से कोई ढाई सौ साल पहले पिंगल छन्दशास्त्र के नाम से रचना की थी जिसका आधार संस्कृत का छन्दशास्त्र माना जाता है और यही हिन्दी अरूज है। खलील बिन अहमद से सदियों पहले अल्बरूनी गुघ्जरा है जो अरबी, घ्फार्सी, यूनानी, सिरयानी और संस्कृत का बड़ा ज्ञानी था तथा ज्योतिषशास्त्र से भी अवगत था। वो जब दसवीं ईस्वी में हिन्दुस्तान आया तो संस्कृत की दीक्षा ली। उसने 'किताबुलहिन्द' नाम से अतिप्रतिष्ठित ग्रन्थ लिखा। जिसमें संस्कृत पिंगल का भी विवरण था। उसकी राय में 'पद' का दस्तूर हिन्दुस्तान में वही था जो यूनान में था। उसने लिखा है कि अरबी शेर जिस तरह अरूघ्ज और जर्ब में विभक्त होते हैं उसी तरह हिन्दी शेर भी दो हिस्सों में बँटे होते हैं जिनके हर हिस्से को 'रजल' यानी 'पद' कहते हैं और यूनानी भी इन हिस्सों को 'रजल' कहते हैं। अरबी अरूज से हिन्दी अरूज में काघ्फी जगह समानताएँ मिलती हैं

¼x½ mnl dh xtyk dk vk/kkj

हिन्दी में जिसे लघु (I एक मात्रा) कहते हैं उसे अरबी में सबबे–खफीफ कहते हैं। गुरु (S दो मात्रा) को अरबी में सबबे–सकील कहते हैं। दोनों में शब्दों अक्षरों की गिनती उच्चारण आधारित है। जो बोला जायेगा वो गिना जायेगा भले ही वो अक्षर, शब्द में लिखा गया हो या न लिखा गया हो। कुछ बह्रें ऐसी हैं जो हिन्दी और अरबी अरूज दोनों में विभिन्न नामों से मौजूद हैं। उदाहरण के तौर पर बह्रे–रमल को हिन्दी में 'हरिगीत' (हरिगीतिका) छन्द, बह्रे–मोतदारिक को 'त्रिभंगा', बह्रे–मोतकारिब को 'भुजंगप्रयात', बह्रे–सरीअ को चौपाई कहते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी छन्दशास्त्र का प्रभाव भी अरबी अरूज पर है, क्योंकि इसके नियम खलील बिन अहमद के जीवनकाल से काफी पहले प्रतिपादित किये जा चुके थे।

भारत में अरूज की लोकप्रियता कैस से बढ़ी रू इसके कई कारण हैं, एक तो ये कि

ये नयी विद्या थी इसलिए लोगों में इसके प्रति जिज्ञासा के कारण पहल हुई। दूसरे ये कि हिन्दी–पिंगल से परिचित जनता को ये उनके स्वभाव के अनुसार ही लगा। तीसरी सबसे बड़ी वजह ये बतायी जा सकती है कि पिंगल या छन्द के नियम काफी गूढ़ थे और पदों एवं मात्राओं के हेर–फेर को सन्तुलित करना हर एक के बस की बात नहीं थी। अति निपुणता की आवश्यकता रहती थी इसालिए स्वाभाविक तौर से लोग अरूज को अपनाने लगे, वर्ना एक मुद्दत तक शायरी हिन्दी बह्रों में ही होती रही थी और मुसलमान शायर भी हिन्दी बह्रों में ही शायरी करते थे जिसकी मिसाल 'पद्मावत' है। जिसके रचयिता मलिक मोहम्मद जायसी हैं। धीरे–धीरे छन्द का प्रभाव घटता गया। भाषाओं में बहुत परिवर्तन हुए और बाद में फार्सी और उर्दू के विस्तार के कारण शायरी अरबी अरूज पर होने लगी। भारत में अरूघ्ज का प्रचार–प्रसार कैस हुआ रू उर्दू–भाषा का तो अपना अरूज न था और न है। अरबी अरूज ही फार्सी में पहुँची और फार्सी से उर्दू में रूपान्तरित हुई। मुहम्मद हुसैन फकीर की फार्सी किताब 'हिदाएकुल बलागत' शायरी और भाषा–ज्ञान की अनुपम पुस्तक है। भारत में अँग्रेजों का शासनकाल था। मिस्टर बूतरस एक महान् विद्वान अँग्रेज थे, जिन्हें ईस्टर्न लिट्रेचर से काफी लगाव था। उन्होंने मौलवी इमाम बख्श सहबाई से इस पुस्तक का उर्दू में अनुवाद कराया, जो फार्सी के शिक्षक तथा साहित्यकार थे। इस पुस्तक का तीसरा भाग अरूज पर केन्द्रित था, जिसे स्वतन्त्र रूप से पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया। अरूज पर ये उर्दू की पहली पुस्तक है। बाद में जितनी भी पुस्तकें आयीं और आज तक जो कुछ इस विषय में छप रहा है वो सब इसी पुस्तक से उधार लिया गया है।

तो क्या अरूज शायरी के लिए परम आवश्यक है – शायरी में अरूज की आवश्यकता के पक्ष में जितने स्वर उभरे हैं उनके मुघ्काबले इसके विपक्ष में उतने स्वर नहीं हैं। अगर ये शायरी करने का व्याकरण है, आधार है, तो इसकी आवश्यकता से वैसे इंकार हो सकता है। अगर शायर, शायरी के मूलभूत व्याकरण से अवगत नहीं होगा तो शायरी वैसे होगी। जैसे कि अगर कोई पहलवान, पहलवानी के हुनर से वाकिफ नहीं होगा तो वैसे पहलवानी करेगा। मुमकिन है अपनी शक्ति से कुछ एक कुश्ती जीत जाये मगर कोई चपल–चतुर

पहलवान अपने दाँव–पेच से उसे किसी दिन पटघ्खनी दे सकता है। ठीक उसी तरह, शायर को शायरी के मूलभूत आधार से परिचित होना परम आवश्यक है। ये आवश्यक नहीं कि इस विधा के अनुसार ही सीमित और संकुचित होकर शायरी की जाये, मगर नियमों का पालन आवश्यक तो है ही, वर्ना डर ये रहेगा कि अच्छे–से–अच्छा विचार शेर में ढला हो, मगर शेर अरूघ्ज की कसौटी पर खरा न हो तो वो शेर सिरे से शेर ही न माना जाये, अर्थात् खारिज कर दिया जाये, यानी शेर ढेर हो जाये। ये ठीक है कि शायरी एक खुदादाद सलाहियत, अर्थात् ईश्वर–प्रदत्त गुण है। शायरी हर किसी के बस की बात नहीं। शायरी के लिए नैसर्गिक गुण अपरिहार्य है जिसे उर्दू में तबीअत की मौघ्जूनियत कहते हैं, मगर ये दावा कि शेर–के–शेर उनके घ्जेह्न में आसमान से उतरते हैं, भ्रामक है। विचार आ सकते हैं, मगर वो विचार मिस्रा–दर–मिस्रा, शेर–दर–शेर बन के अवतरित नहीं हो सकते। ये विश्वास से परे है। विचारों को शेरी पैकर पहनाने के लिए किसी–न–किसी बह्र की आवश्यकता पड़ती ही है और ये वही पड़ाव है जब अरूघ्ज की आवश्यकता पड़ती है। इसके विरोध में दो उदाहरण अक्सर सामने आते हैं। मौलाना रूम ने कहा हैदृ

शूमिए गोयम वहघ्ज आबे–हयात मन न दानम, (फाएलातुन, फाएलात)

त्रिलोकचन्द 'मह्रूम' ने कहादृ

'मह्रूम' हमको इश्घ्क ने शायर बना दिया
बेसाघ्ख्ता जबाँ से निकलती है दिल की बात
करते रहेंगे मौलवी साहब तमाम उम्र
(मफऊल, फाएलात, मफाईल, फाएलात)

मगर बाद के वाकियात से पता चलता है कि उन्होंने ये विरोध सिर्फ विरोध जताने के लिए किया था, वर्ना उन्होंने भी अरूघ्ज की आवश्यकता को महत्त्वपूर्ण बताया। मतलब साफ है कि इसका विरोध शायरों ने सिर्फ विरोध करके अपना नाम चमकाने के लिए किया वरना दिल–ही–दिल में इसकी महत्ता के प्रति वो विरोध नहीं थे। आइए अब देखते हैं कि अगर शायर को अरूज की जानकारी नहीं है तो वो क्या हास्यास्पद स्थिति निर्मित कर

सकता है। ये वाकिआ अरूज के विरोधियों की आँख खोलनेवाला है– शाह हातिम के एक शागिर्द थे अजीम। अरूजी मालूमात पर अपनी पकड़ न होने की वजह से वे अपनी गजल में बह्रों की घालमेल कर बैठे। जिस पर सैयद इंशा ने व्यंग्य करते हुए कहा–

पढ़ने को शब जो यार गजल–दर–गजल चले

बह्रे–रजज में डाल के बह्रे–रमल चले

अगर अरूजी जानकारियाँ नहीं होंगी तो ऐसी गलतियाँ होती रहेंगी। दो वाकिये और याद आ रहे हैं। मेरे एक मित्र है जो सिर्फ मोतरन्निम (लयात्मक) बह्रों में ही तमाम उम्र गजल कहते रहे हैं। एक बार एक तरही मिस्रा मिला जिसकी बह्र उनके लिए अपरिचित थी, क्योंकि उसकी कोई धुन उनके पास नहीं थी। लिहाजा दो–एक रोज वो मिस्रे में उलझे रहे, कुछ समझ नहीं आया और जब कोई धुन 'सेट' नहीं कर पाये तो मेरे पास ये शिकायत लेकर आये कि वो तरही मिस्रा बह्र से खारिज है। मेरे बहुत समझाने पर भी आश्वस्त नहीं हो रहे थे। कहने लगे अगर मिस्रे का पहला रुक्न या आखरी रुक्न इस तरह बदल दें तो मिस्रा ठीक हो जा रहा है। मैंने कहा मिस्रा ठीक नहीं हो जा रहा है, बल्कि मिस्रा आपकी किसी धुन पर सेट हो जा रहा है, वर्ना ये मिस्रा बिल्कुल दुरुस्त है और फिर मैंने तक्तीअ करके जब उन्हें समझाया और किसी फी ल्मी धुन को भी बताया तब वो माने। फिर क्या था दो–तीन घण्टे बाद ही वो छह–सात शेर लिये वापस आ गये। कहने लगे बस बह्र समझने में ही अटका हुआ था, वर्ना शेर तो मैं फटाफट कह लेता हूँ, यानी उनकी तबीअत शायराना थी और मौघ्जूनियत खुदादाद थी, मगर बह्रों को तो सीखना–समझना लाजम साबित हो ही गया।

दूसरा वाकिया है एक ऐसे शायर का जिनकी शायरी की उम्र मेरी उम्र से अधिक है, मगर वो बगैर इस्लाह लिये एक शेर भी भरोसे के साथ मुशायरे में पढ़ने से डरते थे। बदकिस्मती से उनके उस्ताद का इंतिकाल हो गया। उन्हें लगा उनकी शायरी भी इंतिकाल कर गयी। बहरहाल, वो अहंकारी इंसान नहीं थे, लिहाजा एक दिन मेरे पास आये गजल लेकर। जबान और बयान तो खैर रवायती तर्ज का था, मगर बह्र में कहीं–कहीं भटकाव

साफ झलक रहा था। मैंने कहा क्या उस्ताद से कुछ अरूजी मालूमात हासिल नहीं करते थे। उन्होंने इंकार करते हुए कहा– नहीं भाई, मैं उन्हें गजल दे आता था, दो दिन बाद ले आता था। इस्लाह करके वो मुझे दे देते थे। मैं अपनी पाण्डुलिपि में उतार लेता था। मैंने कहा गोया आप जन्दगी भर शायरी करते रहना चाहते हैं और जिन्दगी भर इस्लाह लेते रहना चाहते हैं। कम–से–कम बुनियादी मालूमात ही आपने हासिल की होती तो आज आप दूसरों की गजल पर इस्लाह दे रहे होते।

इसलिए मेरा मानना है कि अरूज की बेसिक जानकारियाँ हर शायर के लिए परम आवश्यक हैं। मैं भी हर शायर के नितान्त अरूघ्जी बन जाने का विरोध करता हूँ, मगर नितान्त अज्ञानी बने रहने का विरोध तो और अधिक करता हूँ। एक दरमियानी रास्ता आवश्यक है। खुदादाद शायराना सलाहियत को अगर अरूघ्ज का सहारा मिल जाये तो फिर कल्पना की उड़ानों के लिए आसमान का विस्तार भी कम पड़े, मगर अधिकतर तो ये नाम–निहाद(तथाकथित) नैसर्गिक शायर अरूज की बातें करनेवालों का उपहास उड़ाने से भी गुरेज नहीं करते। अरूज एक गूढ़ विद्या तो है परन्तु इसको सीखना–समझना असम्भव भी नहीं। बुनियादी बातें जिनसे शायर और शायरी अर्थात् व्यक्तित्व और कृतित्व में निखार आ जाये उन्हें जानना लाभप्रद ही रहेगा और आसान भी। नैसर्गिक क्षमतावाले शायरों के लिए तो ये और भी आसान है, मगर ये मानकर चलना चाहिए कि किसी भी विद्या, किसी भी कला के नियम कभी भी और कहीं भी सरल नहीं हैं तो फिर अरूज को ही गूढ़ मानने की जिद क्यों? तन्मयता, धीरज तथा इच्छा–शक्ति से हर जंग जीती जा सकती है, हर परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ जा सकता।

तो क्या इसे कुछ सरल नहीं बनाया जा सकता था, क्या इसके नियम अपरिवर्तनीय हैं रू अरूज कोई धार्मिक उपदेश नहीं जिसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ये एक इल्म है समय और समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में इसमें परिवर्तन करना कोई पाप नहीं होगा, मगर हर परिवर्तन के पीछे ठोस कारण और दलीलें आवश्यक हैं। मनमाना परिवर्तन अराजकता पैदा करेगा। बहुत–से अरूजी उसूल अप्रासंगिक और अव्यावहारिक हैं, उन पर अरूज के

विद्वान मिल–बैठकर सोच सकते हैं। बह्रों के नाम शैतान की आँत की तरह हैं, लम्बे–लम्बे। उनका हिन्दुस्तानीकरण किया जा सकता है। जिहाघ्फ (छन्द के गणों या बह्र के रुक्न में मात्राओं की कमी करना) का मामला भी बहुत पेचीदा है, उनको आसान किया जा सकता है। किसी भी इल्म की तरक्घ्की के लिए आवश्यकतानुसार परिवर्तन आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य हैं, इसलिए अरूघ्जदानों को भी खुले दिमाघ्ग से इस तरफ पहल करनी चाहिए ताकि अरूघ्ज और लोकप्रिय हो

☐ भोजपुरी गजलों के आधार

भोजपुरी भारत की अत्यंत लोकप्रिय बोली है और हिंदी के उप भागो में भोजपुरी का नाम अग्रणीय है आधुनिक भोजपुरी–गजल के पुरोधा श्री जगन्नाथ ने 'भोजपुरी गजल के विकास–यात्रा' (पुष्कर प्रकाशन, पटना, सन् १६६७) में भोजपुरी–घ्गजल के इतिहास का काल–निर्धारण इस प्रकार किया हैदृ

(क)आरम्भ काल रू सन् १६वीं शताब्दी के अन्तिम चरण से १६०० तक

(खघ्) मध्य–काल रू सन् १६०१ से सन् १६६० तक

(ग)आधुनिक काल रू प्रथम चरण सन् १६६१ से सन् १६७५ ईघ् तक

द्वितीय चरण सन् १६७६ से अद्यावधि ये काल–विभाजन प्रवृत्तिगत नहीं है, सम्भवतरू इसीलिए कोई नामकरण नहीं किया गया है, यद्यपि विवेचन के क्रम में सभी कालों की घ्गजलों की प्रवृतिगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।नामकरण नहीं करने का कारण भी स्पष्ट है। उपर्युक्त आरम्भ और मध्यकाल की घ्गजलें केवलकिसी एक प्रवृत्ति पर केन्द्रित नहीं रही हैं। फिर भी, प्रवृत्ति के आधार पर 'आरम्भिक काल' को 'सिंगार–काल' कहना उपयुक्त होगा, क्योंकि इस दौर की घ्गजलों मे शृंगार–रस की प्रध ाानता है। इस दौर की एकमात्र प्रामाणिक रचना 'बदमाश दर्पण' की घ्गजलें इस नामकरण का पुघ्ख्ता आधार बनती हैं।

मध्यकालीन घ्गजल में कहीं भी विषय–विशेष अथवा रस–विशेष के प्रति कोई आग्रह या प्रतिबद्धता नहीं है। इनमें हल्का हास्य–व्यंग्य, नीति, हितोपदेश तथा

आचार–विचार सम्बन्धी सामान्य भाव पाये जाते हैं। अतरू इस काल को 'मेरौनी–काल'(मिश्रण–काल) नाम देना उचित होगा।

हाँ, आधुनिक काल और उसमें भी द्वितीय चरण की गजलें निश्चित रूप से आम जनजीवन के सरोकार की गजलें हैं। इनमें वर्तमान जीवन–संघर्ष, सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों के बेबाक चित्र उकेरे गये हैं। राजनीतिक त्रासदी, धर्म–सम्प्रदाय के मुखौटों, आडम्बरों को बेनकाब करने की कोशिशें और ऐसे ही मानवीय सरोकार के अन्य अनेक बिन्दुओं–पहलुओं पर पैनी दृष्टि से 'जुझार–काल' (संघर्ष–काल) कहना अपेक्षाकृत ज्यादा माकूल होगा, क्योंकि उक्त तमाम मुद्दों से तो आज की भोजपुरी गजल जी–जान से जूझ रही है, अपने भविष्यत् अस्तित्व के लिए संघर्षरत और चिन्तित है। पुरानी, मध्य तथा वर्तमान पीढ़ियों के बाद आनेवाले कल की गजल के लिए सम्भावनाओं से लबरेज नये हस्ताक्षरों का अभाव हमारी चिन्ता का विषय है। इस कटु सत्य को ईमानदारी पूर्वक स्वीकार किया जाना चाहिए। अतरू विषय–वस्तु और प्रवृत्ति के दृष्टिकोण से भोजपुरी गजल के उक्त काल–खण्डों का नामकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

1. सिंगार काल, 2. मेरौनी–काल, 3. जुझार–काल।

'जुझार–काल' की समय–सीमा सन् १६७६ से अद्यतन यानी सन् १६६७ के बाद भी आज तक रखी जा सकती है। बाद के इन दस वर्षों में भोजपुरी घ्गजल में कथ्य के धरातल पर पैनापन और बढ़ा ही है।

'सिंगार–काल' में एकमात्र तेग अली की ही गणना होगी। सन् १८६५ में 'बदमाश दर्पण' के बाद लगभग ४०–५० बरसों के लम्बे अन्तराल में गजल की कोई सक्रियता नहीं दिखती। फिर भी, 'तेग' की परम्परा पूर्णरूपेण कभी लुप्त नहीं हुई। इस दौरान भोजपुरी में विशुद्ध गजलें भले ही नहीं कही गयी हों, परन्तु इनकी तर्ध्ज पर भोजपुरी जन–जीवन से सम्पृक्त लोकगीत पर्याप्त मात्रा में लिखे और गाये जाते रहे। 'मेरौनीकालीन' गजलकारों में बेढब बनारसी, गुरु बनारसी (सन् १६६४ में तेघ्ग अली की गजलों के सम्पादक रुद्र काशिकेय) तथा विश्वनाथप्रसाद 'शैदा' के नाम हैं। ध्यातव्य है कि इनमें से प्रारम्भिक दो

तो काशी की मिट्टी से ही हैं। हिन्दी–उपन्यास में मील का पत्थर बन चुके 'बहती गंगा' के रचनाकार ये शिवप्रसाद मिश्र ही हैं जिन्होंने हिन्दी में 'रुद्र काशिकेय' और भोजपुरी में 'गुरु बनारसी' उपनाम से गजलें कही। 'बेढब' की गजलों में हास्य–व्यंग्य, गुरु बनारसी में उर्दू की पारम्परिक इश्के–मजाजी तथा 'शैदा' की गजलों में हितोपदेश, नीति, आदर्श और आचार–विचार सम्बन्धी भावों का प्राधान्य है। मात्रा की दृष्टि से खूब लिखने के बावजूद इन कवियों के भोजपुरी में कोई स्वतंत्र गजल–संकलन नहीं हैं। इनकी गजलें तत्कालीन दैनिक 'आज' (बनारस), मासिक 'भोजपुरी' (सन् १९५२ आरा) एवं 'तरंग' में छपती रहीं। गुरु बनारसी की तो अधिकांश गजलें 'तरंग' में प्रकाशित हुईं।

'जुझार–काल' (आधुनिक काल) का प्रथम चरण भोजपुरी गजल के लिए अत्यन्त शुभ रहा है। इस काल में अनेक चेह्रे लगभग एक साथ दमकने लगे, जिन्होंने भोजपुरी कविता में 'घ्गजल' के अस्तित्व पर अमिट मुहर लगा दी। इनमें जगन्नाथ, दिनेश भ्रमर, अर्जुन कुमार सिंह 'अशान्त',महेन्द्र शास्त्री, पाण्डेय कपिल, कुंजबिहारी प्रसाद 'कुंजन', रामेश्वर सिन्हा 'पीयूष', डॉ. अशोक द्विवेदी, गंगाप्रसाद 'अरुण', पाण्डेय नर्मदेश्वर सहाय, चन्द्रशेखर मिश्र आदि के नाम महत्त्वपूर्ण है। 'पाँख सतरंगी' (जगन्नाथ, सन् 1967) में दो, 'भोर हो गइल' (पाण्डेय कपिल, सन् 1971) में तीन, 'सुरपंछी' (पीयूष, सन् 1972) में आठ, 'हहरत हियरा' (गंगाप्रसाद 'अरुण', सन् 1974) में तीन और 'अढ़ाई आखर' (डॉघ् अशोक द्विवेदी, सन् 1975) में आठ घ्गजलें भी शामिल हुईं। अप्रैल 1960 ई. में से पटना से त्रैमासिक 'अँजोर' का प्रकाशन भोजपुरी–साहित्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है, जिसके विभिन्न अंकों में उपयुर्क्त लगभग समस्त कवियों की गजलें छपती रहीं। इसके जनवरी 1962 अंक में दिनेश भ्रमर की–

नजरिया के बतिया नजरिया से कहि –

न चमके, सोनहुली किरिनिया से कहि –

मत्लावाली गजल उस जमाने में बड़ी लोकप्रिय हुई। इसके अलावा शिवकरण की एक गजल 'भोजपुरी' के फरवरी, 1964 ई. के अंक में छपी। 'आज' (सायं समाचार वाराणसी)

और 'पुरवइया' (भोजपुरी संसद, वाराणसी) में जगन्नाथ की कई गजलें प्रकाशित हुईं। 'पीयूष' की गजलों को भी 'पुरवइया' में स्थान मिला। विषय–वस्तु की दृष्टि से इस दौर की प्रायरू सभी गजलें पारम्परिक होते हुए भी चिन्तन की परिपक्वता से भरपूर हैं।

इस काल के द्वितीय चरण को जगन्नाथ जी ने 'भोजपुरी गजल के स्वर्णकाल' कहा है। सन् 1895 में 'बदमाश दर्पण' के प्रकाशन के 81 बरसों के लम्बे अन्तराल के पश्चात् सन् 1977 में इनकी (जगन्नाथ) 35 गजलों के संकलन 'लर मोतिन के' का प्रकाश में आना महत्त्वपूर्ण परिघटना है। आधुनिक भोजपुरी गजलों के इस प्रथम संकलन से निश्चित रूप से भोजपुरी गजल में एक नया अध्याय जुड़ा पत्रिकाओं ने भी अपने गजल विशेषांक निकाले। इस दृष्टि से 'झकोर', 'पाती' (बलिया), 'सुरसती' (सहसराम) के विशेषांक उल्लेखनीय हैं। 'झकोर' (जून–सितम्बर, 1981) में 21 कवियों की गजलों के साथ ही डॉ. धीरेन्द्र बहादुर 'चाँद' की इस काव्य–रूप पर सम्पादकीय टिप्पणी, 'पाती' (अगस्त, 1995) में 58 कवियों की गजलों के साथ श्री जगन्नाथ, डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, डॉ. अशोक द्विवेदी तथा डॉ. आसिघ्फ रोहतासवी के आलेख एवं 'सुरसती' (जनवरी, 2007) में 14 कवियों की 45 गजलों के साथ डॉघ नन्दकिशोर तिवारी की सम्पादकीय टिप्पणी, भगवतीप्रसाद द्विवेदी और डॉ. ब्रजभूषण मिश्र के आलेख महत्त्वपूर्ण हैं। 'भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका' के नेपाली भोजपुरी विशेषांक में मुनीस मासूम की गजलें भी छपीं। 'फूटल किरिन हजार' में डॉ. अशोक द्विवेदी की लगभग 50 गजलें हैं। अनिरुद्ध तिवारी 'संयोग' के 'अँजुरी में तीन रस' (जमशेदपुर भोजपुरी साहित्य परिषद्) में भी कुछ गजलें संकलित हैं। इनके अतिरिक्त भी 'कविता' त्रैमासिक के अक्टूबर 2007 के सम्पादकीय में 'नज्म' और 'मुसल्सल गजल' को हिगरानेवाली बारीक रेखा पर सम्पादकीय टिप्पणी ध्यान देने योग्य है। हिन्दी के पिछलग्गू कुछ भोजपुरी–शुभचिन्तकों के इस विचार कि 'भोजपुरी में गजल नहीं लिखी जानी चाहिए' पर मेरी प्रतिक्रियात्मक टिप्पणी (भोजपुरी सम्मेलन पत्रिका, सितम्बर 1995, पृ. 391– 392) आज भी प्रासंगिक है। इनके अतिरिक्त भी गजल को लोकप्रिय बनाने में जिन पत्र–पत्रिकाओं ने अविस्मरणीय ऐतिहासिक महत्त्व के कार्य किये हैं उनमें 'भोजपुरी माटी' (कोलकाता),

'भोजपुरी सम्मेलन पित्रका', 'उरेह', 'अँजोर', 'लुकार', 'बिगुल', 'भोजपुरी अकादमी पत्रिका', 'कविता', 'लहार', 'कोइल', 'माई के बोली', 'निर्भीक सन्देश', 'समकालीन भोजपुरी–साहित्य', 'भोर', 'पनघट' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। दैनिक समाचार पत्रों में 'हिन्दुस्तान' (जमशेदपुर–संस्करण) के साहित्य–संपादक भाई प्रेमचन्द मन्धान (अब दिवंगत) को यहाँ विशेष रूप से याद करना सुखद अनुभूतियों को जन्म देता है, जो स्वयं गैर–भोजपुरी भाषी होते हुए भी भोजपुरी गजलें प्रायरू 'हिन्दुस्तान' के पाठकों तक पहुँचाते रहते थे।

मात्र सौ–सवा सौ वर्षों के अपने सफर में भोजपुरी–गजल ने बहुत ज्यादा उतार–चढ़ाव नहीं देखा है। 'भारतेन्दु मण्डली' के सदस्य तेग अली 'तेग' की भोजपुरी–गजलों का प्रथम संग्रह 'बदमाश दर्पण' सन् 1895 ई. में भारत जीवन प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुआ था। मात्र 23 गजलोंवाले इस संग्रह के प्रकाशक रामकृष्ण वर्मा जी थे। बाद में इसका पुनर्प्रकाशन 'तेग अली आ कशिका' नाम से सन् 1964 ई. में श्री रुद्र काशिकेय के संपादन में ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी द्वारा किया गया। विशुद्ध 'काशिका भोजपुरी' में रचित ये गजलें लखनऊ की 'खारिजी शायरी' की परम्परा में हैं, जिन पर इश्के–मजाजी का गाढ़ा रंग है। रुद्र काशिकेय के अनुसार इन गजलों में 'अम्रदपरस्ती' का चित्रण उर्दू–शायरी के प्रभाव के कारण है। 'घ्खारिजी शायरी' को कुरुचिपूर्ण बनाने में 'जुरअत' का हाथ सबसे बड़ा है। 'तेग' की रचनाओं पर 'जुरअत' का ये रंगो–असर साफ देखा जा सकता है। उपनाम, रूपक आदि भी उर्दू की परम्परा से ही ग्रहण किये गये हैं।

¼M-½ e'fFkfy xtyk d vk/kkj-

मैथिलि गजलों के आधर की बात यदि की जाये तो किसी भी अंचल की अपनी एक सांस्कृतिक धरोहर, साहित्यिक माप–दंड होते है और समकालीन गजलो की बात की जाये तो निश्चित रूप से मैथिलि गजले ,गजलों के माप दंड पर खरी उतरती है तथा कथ्य और शिल्प की दृष्टी से भी उनकी अभिव्यक्ति सटीक साबित होती है –

मैथिलि गजलों में अनिल मल्लिक ने क्या खूब कहा है –

उठा'क नजरि अहाँ जखन झुका लेलिऐ

लजा'क पाएर अहाँ जखन नुका लेलिऐ

धुल जमल फोटो देखैत जे नोर झरल

हवा तेज छलै ओकरा हम उडा देलिऐ

नायीका नायक को किस आधार पर अभिव्यक्ति प्रदान करती है मैथिलि गजलों में भाव के सौन्दर्य की अद्भुत छटा का वर्णन किया गया है –

¼p½ ik'pkR; xtyk d vk/kkj

यद्यपि गजलों का क्षेत्र बहुत ही व्यापक हो गया है देश विदेश में कीर्तिमान स्थापित करने के साथ साथ इसके छंद विधान ने दुनियां में अपना परचम लहरया है आम तौर पर ये की जाती है कि शायर ऐसा लघ्फ्ज इस्तेमाल करे जिसके दो मानी हों, एक करीब के और एक दूर के, और शायर ने दूर के मानी मुराद लिये हों । ऐसी सूरत में शायर को ऐसा कोई करीना भी रख देना चाहिए जिससे मालूम हो कि उसने क्या मानी मुराद लिये थे। ये करीना खुफीया भी हो सकता है और स्पष्ट भी। इस तारीफ को ईहाम की 'खालिस' और अकल (minimum) तारीफ कह सकते हैं ('अकल' मैंने इसलिए कहा कि ईहाम की बहस में बहुत–सी बारीकियाँ भी हैं और बहुत–से उलझावे भी)। इसके अलावा क्लासिकी उर्दू शायरों ने इज्हार की कुछ और सूरतें अघ्खि्तयार की हैं और उन्हें भी आम तौर पर ईहाम का नाम दिया है। मुख्तसर तौर पर कहें तो हमारे ईहाम की तीन किस्में नजर आती हैं–

1. ईहामे–खालिस रू यानी जहाँ एक लफ्ज के दो मानी(अर्थ) हों, एक करीब के और एक दूर के, और शायर ने दूर के मानी मुराद लिये हों।

2. ईहामे–पेचीदा रू जहाँ एक लफ्ज के दो या दो से जियादा मानी हों और तमाम मानी कमो–बेश मुफीदे–मतलब (प्रयोजनानुकूल) हों, बजाय इसके कि शायर ने कौन–से मानी मुराद लिये थे।

3. ईहामे–मुसावात रू जहाँ एक लफ्ज के दो मानी हों, दोनों बराबर के, कमो–बेश या दोनों मानी बिल्कुल घ्जोरदार हों और ये फैसला करना मुश्किल हो कि शायर ने कौन–से मानी मुराद लिये थे। ईहाम को मानी–आफरीनी की गरज से इस्तेमाल करनेवाले शोअरा ने ये भी महसूस किया होगा कि उर्दू में न सिर्फ कसीरुल–मानी अल्फाज (बहुअर्थी शब्द) बहुत हैं, बल्कि ऐसे अघ्फाजभी बहुत हैं जिनके दरमियान बजाहिर मानी का अलाका (स्पष्ट अर्थ–सम्बन्ध) है, और ये बात भी उर्दू अघ्फाज की फीत्री कसीरुल मानवीयत(स्वाभाविक बहुर्अिथता) के कारण है। लिहाघ्जा अगर ऐसा कलाम बनाया जाये जिसमें मानी का आपस में स्पष्ट सम्बन्ध रखनेवाले अल्फाज हों तो ये मानी–आफरीनी तो न होगी, लेकिन मानी की अर्थ–सदृशता के कारण एक तरह का ईहाम तो पैदा ही होगा। इस अमल को कलाम में रिआयत पैदा करने का अमल कह सकते हैं। रिआयत कसीरुल–इत्लाक इस्तिलाह (बहुआयामी पारिभाषिक शब्द) है। अल्फाज के दरमियान अर्थगत सम्बन्ध या अर्थगत समानता हो या कुछ सन्अतें (अलंकार) हों, मस्लन् ईहामेजुलाई– तजाद, ईहामे–सौत, ईहामे–तनासुब, लघ्फ्घ्फो–नदा की कुछ सूरतें, जिला–जुगत, ये सब रिआयत के तहत आती हैं। रिआयत की वज्ह से हमेशा कलाम में हुस्न पैदा होता है। जो शख्स रिआयत को नहीं समझता या उसे गैर अहम समझता है या जिसे रिआयत में लुत्फ नहीं आता, उसे क्लासिकी शायरी पढ़ना छोड़कर कोई और धन्धा करना चाहिए। ये कहना भी गलत है कि रिआयत महज 'लफ्जी बाजीगरी' है और हमें कायनात के बारे में कुछ नहीं बताती। अव्वल तो 'लफ्जी बाजीगरी' कोई ऐसी बुरी चीज नहीं। जिस चीज का शेक्सपियर और हाफिज ने बड़े एहतमाम (व्यवस्थित ढंग) से अनुकरण–अनुसरण किया हो, जो कीट्स (Keats) से लेकर भर्तृहरि और अमारू के यहाँ बराबर की शान से जल्वागर हो, जिसे खाकानी, खुस्रो और टी.एस. इलियट ने अपने–अपने तौर पर हुस्ने–कलाम का माध्यम बनाया हो, उसे 'लफ्जी बाजीगरी' कहना शायरी की रूह को झुठलाना है। रिआयत हमें जबान और उसकी सम्भावनाओं, जबान की लताफतों और नजाकतों, मानी के गैरमुतव क्को(अनपेक्षित) पहलुओं के बारे में भी बहुत कुछ बताती है और जबान हमारी कायनात का अहमतरीन

उंसुर(तत्त्व) है, यानी जबान नहीं तो कायनात नहीं। कायनात के बारे में बयानात जबान ही के जरिअे मुम्किन् हैं, इसलिए सारी–की–सारी जबान हमारे इल्मे–कायनात की ईजाद करनेवाली है। जब वली कहते हैं–

न जा अँखियाँ में आ मुझ दिल में अय शोघ्ख

कि नईं खल्वत में दिल की खौघ्फ मर्दुम

तो वो 'मर्दुम' बमानी 'आँख की पुतली' और 'मर्दुम' बमानी 'इंसान' के जरिअे हमें ये बताते हैं कि इंसान का वजूद किसी–न–किसी सत्ह पर आँख का मर्हूने–मिन्नत(आभारी, कृतज्ञ) है (मस्लन् किसी तस्वीर में से आँखें मिटा दीजिए और देखिए क्या बचता है)। ये खयाल गलत है कि मीर, गालिब, अनीस वघ्गैरह 'सच्चे' शायर थे, लिहाजा उन्हें रिआयत, ईहाम या किसी तरह की सन्अतगरी (अलंकारिता या कलात्मकता) से कोई सरोकार न था। हकीकत ये है कि उन सब लोगों को इस बात का एहसास था कि उर्दू–जबघन में ईहाम और रिआयत की इस कदर सम्भावनाएँ हैं कि उनसे फायदा हासिल करके शायर अपने कलाम का दामन नये–नये लालो–गुहर से मालामाल कर सकता है। उन्हें मालूम था कि हुनरमन्दी, फन्नी नजाकत और लफ्जी बारीकी हर जगह काम आती है। अगर शेक्सपियर, 'रोमियो और जूलिएट' में खुदकुशी और मौत के मौके पर रिआयत से काम लेते हैं तो मीर अनीस और मीर भी बुका और हुज्न (आर्त्तनाद, शोक–विलाप आदि) के मौके पर रिआयत को बरतते हैं और कलाम के हुस्न को दोबाला करते हैं। मिसाल के तौर पर Romeo and Juliet पाँचवें एक्ट का वो मौका मुलाहिजा हो जब जूलिएट के मरने की खबर रोमियो को मिलती है। रोमियो का खादिम बाल्थाजार (Balthasar) खबर लेकर आता है–

Romeo : How doth my lady\ Is my father well\
How fares my lady\ That I ask again-
For nothing can be ill if she be well-

Balthasar : Then she is well and nothing can be ill-

पाश्चात्य गजलों की यदि बात किया जाये तो काव्य विधअ के रूप में गजल की विशेषता उसकी सांकेतिकता और उसके स्वभाव के वर्णन या विवरण के साथ पूरा होता

है गालिब साहब ऐ एक शेर कहा ,

'तुम न होते हुए भी जैसे मेरे साथ होते हो"

अनुपस्थिति में उपस्थिति का भाव लेकर जब कविता कही जाती है तो गजलो का मैना वैसे भी बढ़ जाता है ,महाकवि वाल्मीकि ने अपने रामायण का पोअथ राम के ही पुत्रों से भरी सभा के बीच करवा कर सिध्ह कर दिया काव्य विश्लेष्ण और आत्मसात का विषय है तब कोई 'दास–केपिटल' नहीं था तब कोई नारी चेतना या दलित का विषय नहीं था–

इस स्थिति को संकेत करती 'जाडन'की पूरी एक कविता है –

By absence this good means I again

That I can catch her

Where]non can match her

In some close corner of my brain

And] there I ambrence and kiss her thus

Both I enjoy and miss her

कविता का शीर्षक 'present in absence' है – उल्लेखनीय यह नही, बल्कि यह देखना है की कौन सी बात कब प्रासंगिक हो जाती है ,गजल की यही ताकत है –

सरांस के रूप में यह कहा जासकता है की, गजल एक ऐसी जामाजेब दोशीजा है जो लिबासे– खुशी में हसीन लगती है और मातमी लिबास में भी दामने–दिल खींचती है। इसके साथ ही ये इतनी सघ्ख्त जान भी है कि अक्सर ये दुर्दशाग्रस्त भी हुई। इसकी जुल्फ्फें अस्त–व्यस्त भी हुईं और चेह्रे की रौनक भी कम हुई, लेकिन इसने अपनी सघ्ख्तजानी के सबब अपने खोये हुए शबाब को फिर से हासिल कर लिया। मुद्दतों पुरानी ये हूर अब भी जवान लगती हैय और क्यूँ न हो,खुदा ने हूरों में बूढ़ी होने का माद्दा ही नहीं पैदा किया है। यही सबब है कि गजल का शायर बूढ़ा हो के भी बूढ़ा नहीं होता। गजल का हर शेर अपने लिए महफूज का अगाध–अनन्त समन्दर चाहता हैय जब इसके कूजों से कतरे बरामद होने लगते हैं तो गजल पतन की तरफ प्रवृत्त होने लगती है।

हादिसात–ओ–वाकियात, वो चाहे आन्तरिक हों या बाह्य, गजल अपनी अलामती जबान(प्रतीकात्मक भाषा) ही में हमकलाम होती है। गजल इतिहासकार का इतिहास बनकर किसी युग–विशेष के लिए अपने–आपको सीमित नहीं करती। गजल का हर शेर तहदारी–ओ–मानीआफ्ह्रानी से लबरेज होता है। आज के दौर में बहुत–सी गजलें ऐसी भी देखने को मिलती हैं, जिनके दामन– इशारा, किनाया, तल्मीह, मुरक्काकशी, तहदारी और मानीआफ्ह्रीनी के लालो–गुहर से बिल्कुल खाली रहते हैं। किसी हादिसे या वाकिये का जिक्र बड़े सूखे तौर पर सीधे–सीधे कर दिया जाता है, जो गजल के हुस्न से चाँद–सितारे नोचकर उसे बेनूर बना देता है। अगर हम मिर्जा गालिब के युग का जायजा लें तो मालूम होगा कि उनके दौर ने भी बड़ी तब्दीलियाँ और तबाहियाँ देखीं। हुकूमतें बनी और बिगड़ीं, तह्जीबों का कत्ले–आम हुआ। नयी तह्जीबों ने जन्म लिया, लेकिन इस उथल–पुथल के दौर में भी

ikpok v/;k;

‘समकालीन हिंदी गजल शिल्प .

(क) संस्कृत हिंदी छंद और उर्दू की बहरे.

(ख) गजल में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली.

(ग) समकालीन हिंदी गजल की विशेषता .

(घ) गजल में प्रयुक्त गुण दोष ,रस ,अलंकार.

(ड.)गजल का मूल छंद विधान (बहरे)

ikpok v/;k;

^ledkyhu fgnh xty f'kYi -

साहित्य की प्रत्येक विधा का अपना अलग शिल्प–विधान होता है, चाहे वह उपन्यास हो अथवा कहानी, नाटक हो अथवा एकांकी, कविता हो या अकविता, गीत हो अथवा अगीत, सभी में शिल्पगत विशेषताओं का होना आवश्यक है। हिन्दी साहित्य के शास्त्रीय ग्रंथों में इन विधाओं के शिल्प–विधान का व्यापक वर्णन मिलता है। इनके अध्ययन एवं परिपालन के बिना साहित्य की सार्थकता संदिग्ध हो जाती है। वास्तव में कथ्य एवं शिल्प एक–दूसरे के पूरक हैं। जिस प्रकार उत्तम से उत्तम भोजन भी नमक के अभाव में स्वादरहित होता है, उसी प्रकार गागर में सागर भर देनेवाला कथ्य भी शिल्प–सौष्ठव के बिना प्रभावाशाली नहीं बन पाता।

यद्यपि हिन्दी में ग़ज़ल की परंपरा भारतेंदु हरिश्चन्द्र और उनके पूर्ववर्ती कवियों से चली आ रही है, किंतु मूल रूप से हिन्दी के लिए यह आयातित विधा ही है। ग़ज़ल का मूल उत्स उर्दू–फ़ारसी एवं अरबी से हुआ है। अतः हिन्दी में ग़ज़ल की विधा को अपनानेवाले कवियों के वर्णित ग़ज़ल के शिल्प–विधान का आश्रय लें।

यद्यपि शिल्प–विधा की दृष्टि से हिन्दी ग़ज़लकारों ने नए–नए आयाम तलाश किए हैं, फिर भी किसी न किसी रूप में उन्हें उर्दू–फ़ारसी व्याकारण–शास्त्र का सहारा लेना ही पड़ा है। आज पत्र–पत्रिकाओं में हिन्दी ग़ज़लों की धूम मची हुई है, किंतु बड़े आश्चर्य की बात है कि हिन्दी ग़ज़ल के नामब पर जो भी लिखा जा रहा है, वह शिल्प की कसौटी पर खरा नहीं उतर पा रहा है। इसका एकमात्र कारण है–अध्ययन का अभाव। हिन्दी में ग़ज़ल–लेखन एक फ़ैशन–सा बन गया है। गहन अध्ययन में अरुचि रखनेवाले लोग भी शब्दों को जोड़–तोड़कर हिन्दी ग़ज़ल का उद्धार कर रहे हैं। किसी प्रकार कसरत करके पत्र–पत्रिकाओं में चार ग़ज़लें प्रकाशित करा लेनेवाले अपने को स्व.दुष्यन्त कुमार और सूर्यभानु गुप्त की श्रेणी का महाकवि समझने की 'बुद्धिमानी' करने लगे हैं। इसीलिए उत्तम

से उत्तम कथ्य को शिल्प का संयोग न दे पाने के कारण हिन्दी में ग़ज़लों का स्तर गिरता जा रहा है। अतः हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में उतरनेवाले साहित्यिक महारथियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे हिन्दी ग़ज़ल के शिल्प–विधान का विधिवत अध्ययन करने के उपरांत ही अपनी लेखनी को इस क्षेत्र में मांजने का प्रयास करें, तभी वे सार्थक लेखन में सन्नद्ध हो सकेंगे। इसी उद्देश्य से यहां हम भाषा, छंद, अलंकार, रस–परिपाक एवं काव्य–दोष की दृष्टि से हिन्दी ग़ज़ल के शिल्प–विधान की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

¼d½ lL—r fgnh Nn vkj mnl dh cgj-

भावाभिव्यक्ति के लिए माध्यम के रूप में भाषा का सर्वाधिक महत्त्व है। भाषा को विचारों एवं भावों की संवाहिका माना गया है। अभिव्यक्ति की संप्रेषीयता की दृष्टि से भी भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में भाषा ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा किसी भी विध ाा का रचनाकार अपने हृदयस्थ भावों को प्रकट करके सामान्य पाठक तक सप्रेंषित करता है।

काव्य के लिए भाषा में सरसता, प्रवाह एवं मधुरता अत्यावश्यक है। हिन्दी ग़ज़ल से भी सामान्य रूप से हिन्दी भाषा में लिखी गई ग़ज़लों का बोध होता है, किंतु भाषा–सरंचना की दृष्टि से हिन्दी में लिखी जा रही ग़ज़लों के निम्नलिखित तीन स्वरूप मिलते हैं–

1. समास–गुंफित उर्दू–फ़ारसी स्वरूप,
2. संस्कृतनिष्ठ हिन्दी स्वरूप, और
3. हिन्दुस्तानी स्वरूप।

अब हम भाषिक संदर्भ में इन तीनों प्रकृति की हिन्दी ग़ज़लों की अलग–अलग विवेचना करेंगे।

1- lekt xfQr mnl&Qkjlh Lo:i% विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं एवं संकलनों में देवनागरी लिपि में प्रकाशित ऐसी ग़ज़लें भी मिलती हैं, जो फ़ारसी व्याकरण के आधार पर

लिखी गई हैं और जिसका शब्द संयोजन–पूर्णतया उर्दू–फ़ारसी पद्धति से किया गया है। इनमें सामासिक प्रयोग भी फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र के अनुरूप ही मिलते हैं। इस प्रकार की ग़ज़लें देवनागरी लिपि में प्रकाशित होने के कारण भले ही हिन्दी ग़ज़लें मान ली जाएं, किंतु भाषिक कलेवर की दृष्टि से उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल के अधिक समीप हैं।

हिन्दी में ग़ज़ल की अवधारणा उर्दू–फ़ारसी से आई है, अतः इसमें उर्दू–फ़ारसी के शब्दों की बहुलता होना स्वाभाविक ही है। भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र से लेकर आज तक के कतिपय हिन्दी ग़ज़लकारों के रचना–संसार में फ़रसी व्याकारण के अनुसार समासों का प्रयोग मिलता है। हिन्दी ग़ज़लों में जामें–शराब, पैमाना–ए–दिल, शामे–ग़ज़ल, जुल्फ़े दराज़, अहले–वतन, तहज़ीबो तमद्दुन, जज़्ब–ए–अमजद, अहले दानिश, पाबंदी–ए–मजहब, इन्तिहाये–लागरी, साहिबो–फ़न जैसी सामासिक शब्दावली का, की, के आदि को हटाकर शब्दों के संक्षिप्तीकरण के उद्देश्य से प्रयोग की गई है।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र की ग़ज़लों में उर्दू–फ़ारसी का अतिवादी स्वरूप यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी–

'फिर आई फ़स्ले–गुल फिर ज़ख़्मदह रह रह के पकते हैं,
मेरे दाग़े–जिगर पर सूरते–लाला लहकते हैं।
रुखे–रोशन पे उसके गेसुए शबगूं लटकते हैं,
क़यामत है मुसाफिर रास्तः दिन को भटकते हैं।
उड़ा दूंगा 'रसा' मैं धज्जियां दामाने–सहरा की
अबस खारे बियाबां मेरे दामन से अटकते हैं।''

'इसी' उपनाम से रची गई भारतेंदु बाबू की उक्त ग़ज़ल में फ़स्ले–गुल, दाग़े–जिगर, सूरते–लाला, रुख़े–रौशन, गेसुए–शबगूं, दामाने–सहरा, खारे–बियाबां आदि सामासिक पदावलियां पूर्वतया फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र के आधार पर प्रयुक्त हुई हैं।

इसी प्रकार निरालाजी ने अपनी कतिपय हिन्दी ग़ज़लों में उर्दू भाषा का खुलकर प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ उनकी एक ग़ज़ल के निम्नलिखित शेरों में प्रयुक्त आसमां, दुश्मने–जी,

मेहरबां, गर्मियां, गुलिसतां, रवां बागबां, रंगो–बू आदि शब्द विशुद्ध उर्दू के हैं–

'गिराया है ज़मीं होकर, छुटाया आसमां होकर,
निकाला दुश्मने जी, और बुलाया मेहरबां होकर।
चमकती धूप जैसे हाथ वाला दबदबा आया,
जलाया गर्मियां होकर, खिलाया गुलसितां होकर।
उजाड़ा है कसर होकर, बसाया है असर होकर,
उजाड़ा है रवां होकर, लगाया बागबां होकर।
घटा है भाप होकर जो, जमा है रंगो–बू होकर,
अधर होकर जो निकला है, समाया है शमा होकर।'

शमशेरबहादुर सिंह की ग़ज़लों पर भी उर्दू का घना रंग है। इनकी अनेक ग़ज़लें तो ऐसी हैं, जिन्हें यदि उर्दू लिपि में लिखा जाता तो वे उर्दू की उत्कृष्ट ग़ज़लें कहलातीं। अपने कथन के समर्थन में उनकी एक ग़ज़ल के कतिपय शेर प्रस्तुत करता हूं–

'कदम रंजा हैं सूये बाम एक शोखी कयामत की,
मेरे खूने–हिना–परवर से रंगी जीना होना है।
वो कल आएंगे वादे पर मगर कल देखिए कब हो,
गलत फिर, हजरते–दिल आपका तखमीना होना है।
बस ऐ शमशेर चलकर, अब कहीं उजल तगजीं हो जा,
कि हर शीशे को महफ़िल में गदाए–मीना होना है।'

शमशेरबहादुर सिंह से ही प्रभावित दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों में भी उर्दू–फ़ारसी का अतिवादी स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। उनकी अनेक ग़ज़लों में फ़ारसी व्याकरणसम्मत शब्द–योजना, प्रतीकों बिबों एवं उपमाओं के दर्शन होते हैं। देवनागरी लिपि में प्रकाशित होने के कारण दुष्यन्त की इन ग़ज़लों को भले ही हिन्दी में खपा लिया जाए, किंतु वास्तव में वे उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल की परंपरा के अनुरूप हैं। इस संदर्भ में दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों

के निम्नलिखित शेर उद्धृत किए जा सकते हैं।

'लोग तहज़ीबो–तमद्दुन के सलीके सीखें,
लोग रोते हुए गाने लगें, ये तो हद है।'

+++

'इस क़दर पाबन्दी–ए–मज़हब कि सदके आपके,
जब से आज़ादी मिली है, मुल्क में रमज़ान है।'

+++

'हुज़र आरिज़ो–रुख़सार क्या तमाम बदन,
मेरी सुनो तो मुजस्सिम गुलाब हो जाए।
उठाके फेंक दो खिड़की से सागरो–मीना
ये तिश्नगी जो तुम्हें दस्तयाब हो जाए।'

नए हिन्दी ग़ज़लकारों में नरेन्द्र वशिष्ठ ने फ़ारसी व्याकरणशास्त्र के अनुरूप सामासिक पदावलियों तथा बहुवचन शब्दों का प्रयोग किया है। एक उदाहरण देखिए–

'जिन सवालों के जवाबात अभी तक न मिले,
उन सवालों को बदस्तूर उठाए रखिए।
रामो–गौतम की तरह आप नहीं है अवतार,
अपने दामन में गुनाहों को छुपाए रखिए।'

इसी परिप्रेक्ष्य में ज्ञानप्रकाश विवेक के रचना–संसार का अनुशीलन करने पर उनकी ग़ज़लों में भी यत्र–तत्र उर्दू–फ़ारसी का गहरा रंग मिलता है। यथा–

'हर खुशी में छिपा हुआ ग़म था,
हँसने वाला भी चश्मे–पुनरनम था।
कब्र अपनी बना रहे थे सभी,
किस कदर सोगवार आलम था।
मील–हा–मील साथ चलता रहा,

दर्द ही था जो मेरा हमदम था।

ज़िंदगी थी कोई अनारकली,

वक्त बेरहम मुगले–आजम था।'

इनके अतिरिक्त अनेक उर्दू शायरों की हिन्दी रंग की ग़ज़लें उर्दू–फ़ारसी के अतिवादी स्वरूप से प्रभावित हैं।

हिन्दी ग़ज़लों में शब्दों के बहुवचन बनाने के लिए हिन्दी व्याकरण के निर्देशों का पालन करना चाहिए, जबकि अनेक ग़ज़लकारों ने बहुवचन शब्दों का प्रयोग करते समय फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र का आश्रय लिया है। उदाहरण के लिए इनामाम, ख़यालात, जंगलात जैसे बहुवचन शब्द हिन्दी व्याकरण के अनुरूप न होकर फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र पर आधारित हैं।

हिन्दी ग़ज़लकारों ने फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र द्वारा प्रदत्त छूट के अनुरूप अपनी रचनाओं में ऐसे शब्दों का प्रयोग भी किया है, जिन्हें दबाकर बोलना या लिखना पड़ता है। यदि उन्हें दबाकर लिखा या बोला न जाए तो लयभंग होकर गेयता में बाधा उत्पन्न होती है। 'तेरा' को 'तिरा' और 'मेरा' को 'मिरा' पढ़ने की छूट फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र में दी गई है। इसी प्रकार हिन्दी के कुछ अन्य शब्दों और अक्षरों को भी दबाकर पढ़ने की अनुमति दी गई है। जैसे–

'यहां फ़रेब की, नफ़रत की फ़सल उगती है,

यहां बताओ कोई प्रीत क्या उगाएगा।'

यहां 'की' शब्द को दबाकर 'कि' के रूप में पढ़ना होगा।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी ग़ज़ल में उर्दू–फ़ारसी के बहुत से शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। यद्यपि इससे भाषा समृद्ध होती है, किंतु ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हुए इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वे हिन्दी बोलचाल के हों तथा हिन्दी के निकट हों। फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र से भी तटस्थ रहते हुए हिन्दी ग़ज़लकारों को अपनी रचनाओं में हिन्दी व्याकरणसम्मत भाषा का प्रयोग करना चाहिए। तभी वे हिन्दी ग़ज़ल का सच्चे

अर्थों में कल्याण कर सकेंगे।

(2) संस्कृतनिष्ठ हिन्दी स्वरूप) उर्दू–फ़ारसी तथा बाद में ग़ज़ल की लोकप्रियता को देखते हुए संस्कृत भाषा तक में ग़ज़लें लिखी जाने लगी हैं। हिन्दी में भी ऐसे ग़ज़लकारों का एक वर्ग सामने आया, जिसने अपनी ग़ज़लों के लिए विशुद्ध हिन्दी तथा संस्कृतनिष्ठ भाषा को अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अपनाने के प्रति निष्ठा व्यक्त की। ऐसे ग़ज़लकारों में निराला, चन्द्रसेन विराट, विकल साकेती, कुंअर बेचैन, भवानी शंकर आदि के नाम निस्संकोच लिए जा सकते हैं।

यद्यपि संस्कृत या हिन्दी भाषा ग़ज़ल की प्रकृति एवं रूप–विन्यास से भिन्न है, फिर भी हिन्दी के उत्साही ग़ज़लकारों ने अपने ग़ज़ल–संसार का निर्माण विशुद्ध हिन्दी एवं संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली की पृष्ठभूमि पर किया है। उन्होंने अपनी हिन्दी भाषा में रचित ग़ज़लों में उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल जैसा प्रवाह, लोच एवं संगीतात्मकता उत्पन्न करने का प्रयास किया है। कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि हिन्दी ग़ज़ल में वह चमक, परिष्कार एवं तन्मयता आ ही नहीं सकती, जो उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल में विद्यमान है। विद्वानों से मेरा निवेदन है कि वे विशुद्ध हिन्दी भाषा में लिखी गई ग़ज़लों का अध्ययन करें, तो संभव है कि उन्हें अपनी इस धारणा में परिवर्तन करना पड़े।

संस्कृतनिष्ठ सामासिक पदावली से युक्त हिन्दी भाषा का प्रयोग हमें 'निरालाजी' की हिन्दी ग़ज़लों में मिलता है। उनकी इस प्रकार की ग़ज़लों का एक अंश यहां उद्धृत किया जाता है–

'हवा ने हल्के झोंकों से प्रसूनों की महक भर दी,
विहंगों ने द्रुमों पर स्वर मिलाकर राग गाया है।
प्रवासी दूर के परिचित किसी से मिलने को आतुर,
प्रकृति ने स्वर्ण–केशर से वसन जैसे रंगाया है।
कलोलों के भरे, देखा सकल जलचर बराती हैं,
नदी का सिंधु ने सवेरे से गौना कराया है।'

vFkok&

'साधना आसान हुई संसार के व्यापार में,
सत्य की अनवद्यता से आ गए विस्तार में।
कामना की किरण की तेज़ी मलिन पड़ती गई,
सृष्टि का धन खुल गया भूला अखिल के प्यार में।
सिंधु उमड़ा पूर्णिमा के चन्द्र से जैसे बढ़े,
स्त्रोत से सब धो गए आए हुए प्रस्तार में।'

ग़ज़ल शैली में जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखी गई रचनाओं में भी हिन्दी तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया गया है। मंचीय कविता में विकल साकेती, बलबीर सिंह रंग आदि की हिन्दी ग़ज़लों में भी विशुद्ध हिन्दी का रंग मिलता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार चद्रसेन 'विराट' की ग़ज़लों में विशुद्ध हिन्दी भाषा का सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी–

'इसीलिए प्रार्थना बुद्ध की होती अस्वीकार ह्रदय से,
शीलवती श्रद्धा तो होती पर विश्वास सुशील कहां है।
लाओ, घर पहुंचा ही देगी पगडंडी दिखाकर तम में,
जो अब भी टिमटिमा रही है, वह अंतिम कंदील कहां हैं।'

हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में अन्यतम स्थान रखनेवाले ग़ज़लकार कुंअर बेचैन की अनेक ग़ज़लें विशुद्ध हिन्दी भाषा में ग़ज़ल लेखन के नए आयामों का उद्‌घाटन करती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में उनकी एक ग़ज़ल का अंश यहां प्रस्तुत है–

'उस एक अपरिचय को पहचान लिया जाए,
यह सोच के ही घर से प्रस्थान किया जाए।
प्रारंभ ही सुंदर हो जिस रूप के सपने का,
उस स्वप्न का आगे भी अनुमान किया जाए।
मृग, मीन, कमल, खंजन उपमान रहे जिनके,

उन नैन को इन सबका उपमान किया जाए।
वो रूप है या कोई शुभ यज्ञ की वेदी है,
उस रूप पे संयम का बलिदान किया जाए।
मंदिर की तरह जिसका आलोक निखरता है,
उस रूप का दर्शन कर, सम्मान किया जाए।'

भवानी शंकर की ग़ज़लों में भी यत्र–तत्र विशुद्ध हिन्दी भाषा का प्रयोग मिलता है। इतना ही नहीं, प्रतीक बिंब एवं चिंतन के दृष्टिकोण से भी इन्होंने भारतीय संस्कृतिक परिवेश को ही अपनाया है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी–

'जितने थे घाव, सब प्रबुद्ध हो गए,
सबके सब समझौते युद्ध हो गए।
भूख–प्यास का मैंने भोग लगाया,
रत्नजटित ठाकुरजी क्रुद्ध हो गए।
थे अशुद्ध जो अपने पूजाघर में,
मदिरालय में जाकर शुद्ध हो गए।
अवमूल्यन स्नेह का हुआ है इतना,
अपने ही रक्तकण विरुद्ध हो गए।'

इसी प्रकार जाड़े की चांदनी से संबंधित एक हिन्दी ग़ज़ल में हिन्दी की तत्सम शब्दावली का प्रयोग सराहनीय है–

'यहां वहां फैली यह जाड़े की चांदनिया,
बड़ी भली लगती है यह जाड़े की चांदनिया।
रूपायित करती है, अधुनातन मानव को,
टुकड़ों में बंटी हुई जाड़े की चांदनिया।
मदमाता दर्शन औ' मोहक स्पर्श लिए,
पर–स्त्री जैसी यह जाड़े की चांदनिया।

धरती पर एकमात्र उपमा है बची हुई,
दूध से नहाई यह जाड़े की चांदनियां।'

इसी संदर्भ में प्रस्तुत शोधार्थी की एक ग़ज़ल भी उद्धरणीय है, जिसमें हिन्दी–संस्कृत मिश्रित शब्दावली का प्रयोग करते हुए यह प्रयास किया गया है कि हिन्दी ग़ज़ल अपने नाम की गरिमा एवं अस्मिता बनाए रखे–

'अधरों का आचमन किया,
मत कहो दुराचरण किया।
मन–विहंग ने उड़ान भर,
प्रेम सुरभि–युत गमन किया।
जीर्ण–शीर्ण पुण्य ग्रंथ का,
परिवर्तित आवरण किया।
दृग–भाषा–कोश का नया,
संपादित संस्करण किया।
भाव सभी बन गए ग़ज़ल,
जब प्रिय का सुस्मरण किया।'

हिन्दी ग़ज़लों में हिन्दी की तत्सम एवं संस्कृत मिश्रित शब्दावली के प्रयोग से इस विधा के आगे बढ़ने, निखरने तथा परिपक्वता को प्राप्त होने की संभावनाएं निरंतर बलवती होती जा रही हैं। निश्चय ही, हिन्दी के अनेक ग़ज़लकारों ने उर्दू–फ़ारसी भाषा एवं व्याकरण से बचने हुए हिन्दी ग़ज़ल को हिन्दी के परिधान में आवृत करके प्रस्तुत किया है। समकालीन ग़ज़लकारों को इससे प्रेरणा लेकर हिन्दी ग़ज़ल को नितांत हिन्दी के रंग में प्रस्तुत करते हुए उसके नाम को सार्थक करना चाहिए।

¼[k½ xty esa ç;qä ikfjHkkf"kd 'kCnkoyh-

रसवादी आचार्यों ने कल्पना और अनुभूति को कविता का आवश्यक तत्व माना है। कल्पना और अनुभूति के सहारे ही वह मानस में उद्भूत भावनाओं के शब्दचित्र खींचकर अपनी बात को कलात्मक ढंग से पाठक के अंतःकरण को संप्रेषित करता है। भावपक्ष की दृष्टि से कल्पना और अनुभूति का अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

साधारण रूप में कल्पना एक ऐसी शक्ति है, जिसके द्वारा कवि के मन में नाना प्रकार के अप्रत्यक्ष चित्र उत्पन्न हुआ करते हैं। संस्कृत में 'कल्पना' शब्द की उत्पत्ति 'कलृप' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है सृष्टि करना। आंग्लभाषा में इसे 'Imagination' कह सकते हैं।

अनुभूति से हमारा आशय कवि के मानस में उद्भूत उस भावविधि से है, जिसे वह अपने कटु अथवा मधुर अनुभवों द्वारा बहुत कुछ खोकर प्राप्त करता है। मनोविज्ञान की शब्दावली में कह सकते हैं कि आवेग उनकी दिशा शक्ति तथा उनका एक–दूसरे को प्रभावित करना किसी भी अनुभूति की अनिवार्य एवं मौलिक वस्तुएं हैं। विद्वानों ने अनुभूति के अनेक भेद किए हैं, जिनमें सौंदर्यानुभूति, कल्पनात्मक अनुभूति, काव्यात्मक अनुभूति एवं रसानुभूति प्रमुख हैं।

सौंदर्यानुभूति को परिभाषित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, 'कुछ रूप–रंग की वस्तुएं ऐसी होती हैं, जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि इसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। अतः सत्ता की यही तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति हैं।''

कलात्मक अनुभूति कविता के काव्यात्मक मूल्य का निर्धारण करती है। इस प्रकार अनुभूति एवं कल्पना के मिश्रण के उत्पन्न कविता ही प्रभावोत्पादकता एवं संप्रेषणीयता से युक्त होती है।

काव्यानुभूति श्रेष्ठ एवं सूक्ष्म रूप से व्यवस्थित होती है तथा इसमें कवि–मानस से उठकर पाठक के मानस तक पहुंचने की स्वाभाविक क्षमता होती है।

पाश्चात्य समीक्षक रिचड्र्स ने रसानुभूति को अलौकिक अनुभूति माना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कविता में कल्पना एवं अनुभूति का अन्योयाश्रित संबंध है। वास्तव में कविता विभिन्न अनुभूतियों का एक समूह है, जो कल्पना से समंवित होकर पाठक को वैसी ही तीव्रानुभूति कराती है, जैसा कि कवि हृदय अनुभव करता है और यही कविता की सबसे बड़ी विशेषता है।

कल्पना भावों अथवा अनुभूतियों को पुष्ट करती है, उन्हें आकर्षण प्रदान करती है, उसके लिए सामग्री उपस्थित करती है और साथ ही अभिव्यक्ति में सहायक भी होती है।

इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए जयशंकर प्रसाद जी ने काव्य को आत्मा की संकल्पनात्म्क अनुभूति कहा है।

अब प्रश्न उठता है कि कवि की अनुभूतियां एक साधारण पाठक के गले कैसे उतर सकती हैं। यह कवि की सामर्थ्य पर निर्भर है कि वह अनुभूतियों को किस सीमा तक पाठक के हृदय में संप्रेषित कर सकता है। प्रत्येक मनुष्य का मन अलग–अलग होता है। उनकी अनुभूतियां भी भिन्न–भिन्न होती हैं, परंतु जब कवि की यही अनुभूतियां पाठकों की सामान्य अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं तो संप्रेषण की प्रक्रिया संपन्न होती है। रिचड्र्स के अनुसार संप्रेषण तब घटित होता है जब एक मन अपने परिवेश के प्रति इस प्रकार से प्रतिक्रिया व्यक्त करता है कि दूसरा मन उससे प्रभावित हो जाता है और उस दूसरे मन में ऐसी अनुभूति उत्पन्न होती है, जो प्रथम मन की अनुभूति के समान और अंशतः उसके कारण उत्पन्न होती है।

कल्पना एवं अनुभूति के परिभाषिक एवं शास्त्रीय अध्ययन के पश्चात् हमें इस बात पर विचार करना है कि गीत–प्रगीत आदि की भांति गजलें किस प्रकार तीव्रानुभूति की संप्रेषणीयता में सहायक हैं।

गजलों की प्रधान विशेषता उनकी संक्षिप्तता होने के कारण उनमें दोहा छंद की भांति थोड़े में बहुत कुछ कहने अथवा गागर में सागर भरने की सामर्थ्य निहित होती है। अतः गजलों में अनुभूति की संप्रेषणीयता का महत्त्व असंदिग्ध है। वास्तव में यदि गजल को कवि अनुभूतियों का विस्फोट कहें तो यह अतिशयोक्ति न होगी। गजलों में कवि अपना दुःख–दर्द, हर्ष–उल्लास, ग्लानि–क्षोभ, प्रायश्चित, उपालंभ, देश–काल तथा परिस्थितियों की प्रति आत्म–दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। गजल के एक–एक मिसरे में कवि का अंतर्जगत प्रतिबिंबत होता है।

गजलें शुद्ध भावात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हैं। उनमें अनुभूति की आवेशमयी तीव्रता के दर्शन होते हैं, जो भाव–संप्रेषणीयता को खोए बिना ही मूल आवेग की शक्ति के साथ प्रस्तुत की जाती है और प्रबुद्ध पाठक को प्रभावित करती है। तीरे–नजर एवं प्रेम की मधुर पीड़ा तथा प्रेम–पात्र की निष्ठुरता से ओत–प्रोम इनकी एक गजल के दो मिसरे प्रस्तुत हैं–

'कोई मेरे दिल से पूछे, तेरे तीरे–नीमकश को

ये खलिश कहां से होती, जो जिगर के पार होता।

ये कहां की दोस्ती है, कि बने दोस्त हैं नासेह

कोई चारासाज होता, कोई गम गुसार होता।।'

इसी प्रकार प्रिय के अधरों को चिनगारी और फल की संज्ञा देते हुए फैज अहमद फैज की मौलिक अनुभूति देखिए–

'अगर शरर है तो भड़के, जो फमल है तो खिले,

तरह–तरह की तलब, तेरे रंगे–लब से है।'

बहादुरशाह जफर ने अपनी एक गजल में प्रेम के रोग को अनंत जीवन एवं स्वास्थ्य से श्रेष्ठ बताते हुए कहा है–

'इश्क का आजार सेहर से है बेहतर ऐ तवीब

जो रहे उस शोख के बीमारे गम अच्छे रहे।'

गजलों के बादशाह जिगर मुरादाबादी ने अपनी एक गजल के माध्यम से प्रेम–कठिन्य की अनुभूति इन शब्दों में कराई है–

'हम इश्क के मारों का इतना ही फसाना है,

रोने को नहीं कोई, हँसने को जमाना है।

ये इश्क नहीं आसां इतना ही समझ लीजे,

इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।'

प्रेम के इसी प्रसंग में प्रवंचना को स्वर देनेवाले कवि विद्यासागर वर्मा की एक अनुभूति द्रष्टव्य है–

'यों मोहब्बत में दगा देते हैं लोग।

आग पानी में लगा देते हैं लोग।'

मोहब्बत में दगा देने और पानी में आग लगा देने की तुलनात्मक अनुभूति संभवतः और कहीं न मिलेगी। इतना ही नहीं, इसी गजल के अन्य मिसरे में कवि नायिका के दो नेत्रों को नींद की दो गोलियों की संज्ञा देते हुए एक नितांत मौलिक अनुभूति प्रस्तुत करता है–

'नेत्र है या नींद की दो गोलियां

दृष्टि मिलती है, सुला दते हैं लोग।'

प्रेमपरक गजलों से हटकर यदि हम सामाजिक, व्यंग्यात्मक एवं कटु यथार्थवादी गजलों का अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि कवि की पीड़ा एवं अनुभूतियों बहुआयामी सामाजिक चेतना से जुड़कर व्यंग्य, उत्पीड़न एवं आक्रोश की अभिव्यक्ति बन गई हैं। सुप्रसिद्ध गजलकार स्व. दुष्यंत कुमार ने हिंदुस्तान का मानवीकरण अपनी एक गजल में

इस प्रकार किया है–

'कल नुमाइश में मिला वह चीथड़े पहने हुए,

मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है।'

प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से कवि ने भारत की विपन्नता का संक्षिप्त किंतु सटीक मानचित्र खींचा है।

इसी प्रकार कोरे आदर्श से यथार्थ को श्रेष्ठ मानते हुए कवि निरंकार देव सेवक अपनी गजल में कहते हैं–

'देवता बन न सुरलोक की बात कर,

मुझको लगते हैं अच्छे खरे आदमी।'

पर ऐसे खरे आदमी नगण्य प्राय ही मिलते हैं, क्योंकि आज मानवीय मूल्यों का निरंतर हास होता जा रहा है और शैतान को भी आदमी की आदमियत पर संदेह होने लगा है। कवि निरंकार देव सेवक के ही शब्दों में–

'मुझको देखा तो शैतान चिल्ला पड़ा,

आदमी, आदमी, बाप रे आदमी'

इस प्रकार हम देखते हैं कि गजलें अपने लघु कलेवर में कल्पनाओं एवं अनुभूतियों की विशालता को समाहित किए रहती हैं। जहां तक प्रभावोत्पादकता एवं तीव्रानुभूति कराने की सामर्थ्य का प्रश्न है, गजलें दोहा, छंद से पीछे नहीं हैं, जिसके सफल प्रयोक्ता बिहारीलाल ने विलासिता में लिप्त होकर कर्तव्य को भूले हुए राजा जयसिंह को एक ही दोहे की मार से सही मार्ग दिखला दिया है।

आज का युग विज्ञान एवं व्यवस्तता का युग है। आज का मानव साहित्य के नाम पर पोथे पढ़ने के लिए समय नहीं निकाल पाता। उसे तो काव्यानंद के लिए संक्षिप्त, किंतु

प्रभावोत्पादक सामग्री चाहिए, जो तत्काल तीव्रानुभूति करा सके। चूंकि चौदह पंक्ति की होते हुए भी गजल का प्रत्येक मिसरा एक स्वतंत्र भावानुभूति से युक्त होता है, इसलिए हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि गजल तीव्रानुभूति की संप्रेषणीयता में सहायक है और उसके माध्यम से कवि, पाठक और श्रोता के मानव को उन्हीं अनुभूतियों से आंदोलित करता है, जिनसे भाव–विहल होकर वह अपनी लेखनी उठाता है।

¼x½ ledkyhu fgnh xty dh fo'k"krk -

हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में रचनाधर्मियों का एक ऐसा वर्ग सामने आया, जिसने समास–गुंफित उर्दू–फ़ारसी भाषा तथा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भाषा के बीच का मार्ग अपनाते हुए हिन्दी रचना–यात्रा को जारी रखा। इनमें निरंकारदेव सेवक, जहीर क़ुरैशी, गिरिराजशरण अग्रवाल, कुंअर बेचैन, रामावतार चेतन, डॉ.उर्मिलेश जैसे शीर्षस्थ ग़ज़लकारों का प्रमुख स्थान है। इन्होंने अपनी हिन्दी प्रकृति की ग़ज़लों में भाषा के अतिवादी स्वरूप के स्थान पर आम आदमी द्वारा बोली जानेवाली भाषा का प्रयोग करके हिन्दी ग़ज़ल को सर्वहारा वर्ग के आंगन तक पहुंचाने का प्रयास किया। इन रचनाधर्मियों ने ग़ज़ल को सरल हिन्दी मुहावरे में सोचा, लिखा और गा–गाकर आम आदमी की परिवेशगत व्यथा को आम आदमी तक पहुंचाया। इन ग़ज़लों की भाषा में हिन्दी के साथ–साथ सरल उर्दू–फ़ारसी के वे शब्द भी समाहित हो गए, जो दैनिक बोलचाल की भाषा में घुल–मिल गए हैं। इस प्रकार इन ग़जलकारों ने जहां एक ओर हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग किया है, वहीं दूसरी ओर हिन्दी और उर्दू के मध्य की दूरी को मिटाकर भाषागत विवाद को हल करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। बोलवाल की भाषा एवं प्रचलित मुहावरों के प्रयोग से ही हिन्दी ग़ज़ल सर्वग्राह्य बनकर लोकप्रिय हो सकी है।

निरालाजी की कुछ ग़ज़लों में दैनिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग मिलता है। इन ग़ज़लों में हिन्दी के तत्सम शब्दों के साथ–साथ उर्दू के लोक–प्रचलित शब्दों को भी

आत्मसात कर लिया गया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

'किनारा वह हमसे किए जा रहे हैं,
दिखाने को दर्शन दिए जा रहे हैं।
ज़माने की रफ्तार में कैसा तूफां,
मरे जा रहे हैं जिए जा रहे हैं'

निरंकारदेव सेवक की ग़ज़लों में उर्दु भाषा के सरल एवं प्रचलित शब्दों के समन्वय से भाषागत एकता की भावना का विकास हुआ है। इस संदर्भ में उनकी ग़ज़लों के निम्न शेर द्रष्टव्य हैं–

'मैं ही जा कर के जब तक जमाता नहीं,
उनकी महफ़िल में कुछ रंग आता नहीं।
हमने देखा है गुमराह होते हुए,
रास्ता अपना खुद जो बनाता नहीं।'

अथवा–

'तुम न आए मेरे पास तो क्या हुआ,
अब तो है भी नहीं आस तो क्या हुआ।
जान से जाने वाले चले भी गए,
उनमें जागा न अहसास तो क्या हुआ।
ज़िक्र तक जिसमें इन्सानियत का नहीं,
रच दिया तुमने इतिहास तो क्या हुआ।
शेर कहने से कुछ दिल बहलता तो है,
शायरी मेरी बकवास तो क्या हुआ।'

दुष्यन्त के ग़ज़लगत भाषा–विवाद को हल करने के उद्‌देश्य से जहीर कुरैशी की हिन्दी प्रकृति की ग़ज़लों भाषा, बिंब, प्रतीक एवं हिन्दी मुहावरों की दृष्टि से अपना अलग महत्व रखती हैं। जहीर कुरैशी की ग़ज़लें निश्चत ही हिन्दी प्रकृति की ग़ज़लों का प्रतिनिधि

ात्व करती हैं, क्योंकि यह कहीं भी उर्दू भाषा शैली से प्रभावित नहीं हैं। उनमें हिन्दी अथवा उर्दू के ऐसे शब्दों के प्रयोग से बचा गया है, जिनके लिए पाठक को शब्दकोश का आश्रय लेना पड़े। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी–

'धीरे–धीरे टूट रहे हैं ख़ुशफ़हमी के किले तमाम,
मीलों पीछे छूट गए हैं ख़ुशियों के सिलसिले तमाम।
रेल चल पड़ी लेकिन किसकी आंखों में आंसू दीखे,
प्लेटफ़ार्म पर हाथ विदाई की मुद्रा में हिले तमाम।
कंकड़ की निर्दयता को छालों के दुःख से क्या लेना,
इसीलिए यात्राओं में पैरों के छाले छिले तमाम।
कोई गणित नहीं है ऊपर–नीचे आने–जाने का,
ज़िले हुए तहसीलें टप्पे बन बैठे हैं ज़िले तमाम।'

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल की हिन्दी ग़ज़लों में आम आदमी की भाषा का प्रयोग हुआ है। वास्तव में उर्दू में ऐसे बहुत–से शब्द हैं, जिनका सही विकल्प हिन्दी में प्राप्त नहीं होता। अतः ऐसे शब्दों को दैनिक बोलचाल की भाषा में मूल रूप में ही ग्रहण कर लिया गया है। यहां पर डॉक्टर अग्रवाल की हिन्दी ग़ज़ल के कतिपय शेर उद्धृत करना समीचीन ही होगा–

'किसी के अश्क़ बहते हैं तो आंचल मुस्कराते हैं,
कि सूरज अस्त होता है सितारे झिलमिलाते हैं।
उदासी से भरी आंखों में जब भी झांककर देखा,
लगा जैसे मुझे पतझर के कुछ मौसम बुलाते हैं।
जो आंसू तुमने सौंपे हैं, मुझे उनसे गिला क्यों हो,
समय का दौर ऐसा है, कि अपने ही रुलाते हैं।'

इसी प्रसंग में कुंअर बेचैन की हिन्दी ग़ज़ल के तीन शेर प्रस्तुत हैं–

'जहां इन्सान की औकात से दौलत बड़ी होगी,

महल बनकर खड़े होंगे, झुकी हर झोंपड़ी होगी।
जरा सोचो कि मुंह तक रोटियां क्यों आ नहीं पाईं,
तुम्हारी ही कलाई में कहीं कुछ गड़बड़ी होगी।
न यह पूछो कि क्यों टूटा हुआ है आइना दिल का
किसी की आह ने तस्वीर आंसू की जड़ी होगी।'

हिन्दी ग़ज़ल के समर्थ हस्ताक्षर रामावतार चेतन की ग़ज़लों में भी हिन्दुस्तानी भाषा का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इस संदर्भ में उनके कतिपय शेर द्रष्टव्य हैं–

'ऐसे मंजर तो बार–बार नज़र आते हैं,
लोग अपनों से ख़बरदार नज़र आते हैं।
शोख़ा सन्नाटा हमें कनख़ियों से घूर रहा,
आज तूफ़ान के आसार नज़र आते हैं।
एक हज़रत हैं अपनेब आपको कहते चेतन,
जिनको दुश्मन भी सगे यार नज़र आते हैं।'

आधुनिक पीढ़ी के सशक्त एवं युवा हिन्दी ग़ज़लकार डॉ.उर्मिलेश की बहुत–सी ग़ज़लें दैनिक बोलचाल की भाषा के स्परूप को उजागर करती हैं। थोड़ा पढ़ा–लिखा व्यक्ति भी इनकी ग़ज़लों की सर्वग्राह्यता से प्रभावित हो सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में सर्वथा अछूते विषय पर लिखी हुई इनकी ग़ज़ल के कतिपय शेर उद्धरणीय हैं–

'मजबूरियों का जाल है औरत की ज़िंदगी,
कितना बड़ा सवाल है औरत की ज़िंदगी।
ये जुल्म, बलात्कार तो चांटे की तरह हैं,
सहलाया हुआ गाल है औरत की ज़िंदगी।
जो चाहे जिसके सामने इसको परोस दे,
सुविधा से भरा थाह है औरत की ज़िंदगी।
चूनर की जगह इसको कफन तो न दीजिए,

वैसे ही तंग हाल है औरत की ज़िंदगी।'

नई पीढ़ी के हिन्दी ग़ज़लकारों में श्याम बेबस का नाम नया, किंतु जाना–पहचाना है। उनकी ग़ज़लें भी प्रयोग की दृष्टि से जनभाषा का समर्थन करती हैं। भाषिक पृष्ठभूमि में इनकी एक ग़ज़ल द्रष्टव्य है–

'धूल बनकर आसमां पर छा रहा है आदमी,
नर्क धरती को बनाता जा रहा है आदमी।
उड़ गई है नींद रातों की औ' दिन का चैन भी,
नींद वाली गोलियां अब खा रहा है आदमी।
जिस जगह जनहाइयां हों और कोई शै न हो,
उस जगह ख़ुद धीरे–धीरे आ रहा है आदमी।
ज़िंदगी से हो गया मायूस शायद इसलिए,
गीत प्रतिपल मृत्यु का ही गा रहा है आदमी।'

हिन्दुस्तानी भाषा में लिखी गई ग़ज़लों में हिन्दी मुहावरों के प्रयोग से अर्थगांभीर्य एवं लालित्य में वृद्धि हुई है। एक ग़ज़ल के दो शेरों में तीन मुहावरों का अत्यंत कुशलता से प्रयोग हुआ है।

'उन आंखों का मर गया पानी,
अब तो सर से गुजर गया पानी।
लोग कैसे उन्हें पसंद करें,
जिनके मुख से उतर गया पानी।

आंखों का पानी मर जाना, सर से पानी गुज़र जाना और मुख से पानी उतर जाना हिन्दी में प्रचलित मुहावरे हैं, जिनके सफल प्रयोग से कथ्य को प्रभावशाली बनाया गया है।

हिन्दी में ग़ज़ल की लोकप्रियता बढ़ाने के साथ–साथ हिन्दी ग़ज़लों का एक लंबा काफिला रचनाधर्मिता की दृष्टि से सफलता की खोज में निकल पड़ा है। आज ग़ज़ल–लेखन एक फ़ैशन–सा बन गया है, किंतु अध्ययन के प्रभाव में लिखी जा रही हिन्दी ग़ज़लें भाषिक

संरचना एवं शिल्प–सौष्ठव की दृष्टि से कितनी सफल हो रही हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। पत्र–पत्रिकाओं एवं संकलनों में प्रकाशित तथा मंचों से पढ़ी जा रही हिन्दी ग़ज़लों में अधिकतर दैनिक बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग हो रहा है, किंतु विस्तार–भय के कारण सभी कवियों की ग़ज़लों से उदाहरण दे पाना संभव नहीं है।

संक्षेप में भाषिक संरचना की दृष्टि से हिन्दी ग़ज़ल में भाषा के तीन स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें दुष्यन्त कुमार, शमशेरबहादुर सिंह, निराला आदि की ग़ज़लों में समास गुंफित उर्दू भाषा, चन्द्रसेन विराट, विकल साकेती, बलवीर सिंह रंग आदि की ग़ज़लों में संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भाषा तथा निरंकारदेव सेवक, गिरिराजशरण अग्रवाल, कुंअर बेचैन, जहीर कुरैशी, डॉ.उर्मिलेश, ओंकार गुलशन सहित आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल के प्रायः समस्त रचनाधर्मियों की ग़ज़लों में दैनिक बोलचाल की हिन्दुस्तानी भाषा के दर्शन होते हैं। निरालाजी के ग़ज़ल साहित्य में भाषा के इन तीनों स्वरूपों का प्रयोग हुआ हैं।

भाषा की दृष्टि से हिन्दी ग़ज़ल साहित्य का मूल्यांकन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हिन्दी ग़ज़ल एक सशक्त विधा बनती जा रही है। हिन्दी ग़ज़लों की फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र पर आधारित समास–गुंफित उर्दू–फ़ारसी शब्दावली से परहेज करना चाहिए, क्योंकि केवल देवनागरी लिपि में ही लिख दिए जाने से कोई ग़ज़ल हिन्दी ग़ज़ल नहीं हो जाती। संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भाषा के प्रयोग से भी हिन्दी ग़ज़ल सर्वहारा वर्ग की ग्राह्यता से परे होकर केवल बुद्धि–विलास का साधन मात्र रह जाएगी। ऐसी स्थिति में दैनिक बोलचाल वाली हिन्दुस्तानी भाषा में लिखी गई ग़ज़लें अधिक लोकप्रियता अर्जित कर रही हैं, क्योंकि उनकी भाषा आम आदमी की भाषा है। हिन्दुस्तानी भाषा में लिखी गई ग़ज़लों में उर्दु–फ़ारसी अथवा अपवाद रूप में अंग्रेजी के वे ही शब्द प्रयोग किए जा रहे हैं, जो दैनिक बोलचाल के रंग में घुलमिल गए हैं। हिन्दी ग़ज़लकारों का चाहिए कि वे हिन्दी की शुद्ध, हिंतु सरल शब्दावली का प्रयोग करते हुए दैनिक बोलचाल में आनेवाले उर्दू–फ़ारसी अथवा अंग्रेजी के शब्दों का यथासंभव सही विकल्प हिन्दी में तलाश करने का प्रयास करें। वे केवल अन्य भाषाओं के उन्हीं लोक–प्रचलित शब्दों को ग्रहण करें, जिनका

कोई विकल्प हिन्दी के पास न हो।

हिन्दी ग़ज़ल को भाषा, मुहावरों, बिंबों एवं प्रतीकों की दृष्टि से हिन्दी प्रकृति के अनुकूल बनाए रखना ही इस विधा के रचनाधर्मियों से अपेक्षित है।

¼?k½ xty esa ç;qä x.k nks"k]jl]vyadkj-

यद्यपि अलंकारों के प्रयोग से काव्य के सौंदर्य में अभिवृद्धि होती है, किंतु हिन्दी ग़ज़ल की विधा में मतला, शेरों एवं निर्धारित बह्रों या लयखंड़ों के अनुपालन को ही काव्य–सौष्ठव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। अतः हिन्दी ग़ज़लकारों का ध्यान अलंकारों के बलात् प्रयोग की ओर नहीं गया। हां, कथ्य को प्रभावशाली बनाने के उद्‌देश्य से प्रतीकों, बिबों एवं अछूती उपमाओं का प्रयोग किया गया है। इन प्रयागों के कारण प्रायः उपमा एवं रूपक अलंकार की खोज का अभियान चला ही दिया जाए तो अनुप्रास एवं अन्य अर्थालंकार के विभेदों के उदाहरण भी हिन्दी ग़ज़ल साहित्य में मिल जाएंगे।

वैसे तो अलंकार असंख्य है। नए अलंकारों की सृष्टि भी होती रहती है, क्योंकि मनुष्य की बुद्धि का विकास कभी रुक नहीं सकता। उसके द्वारा कहे गए वाक्यों के रूपों तथा नई–नई कल्पनाओं की वृद्धि भी नहीं रुक सकती। साहित्य–शास्त्रियों ने अलंकार के दो प्रारंभिक भेद किए हैं–1. शब्दालंकार, 2. अर्थालंकार।

शब्दालंकार वे हैं, जिनमें केवल विशेष शब्दों के कारण काव्य में सुंदरता आती है। यदि शब्द–विशेष के स्थान पर उसके ही अर्थवाले दूसरे शब्द रख दिए जाएं तो बहुधा वह सौंदर्य नष्ट हो जाता है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि विभेद प्रमुख हैं।

अनुप्रास अलंकार ऐसे स्थानों पर प्रभावी होता है, जहां वाक्य के शब्दों में एक या कई व्यंजन एक से अधिक बार एक ही क्रम से आते हैं। अनुप्रास अलंकार के पांच उपभेद माने गए हैं–1. छेकानुप्रास, 2. वृत्त्यानुप्रास, 3. लाटानुप्रास, 4. श्रुत्यनुप्रास और 5. अन्त्यनुप्रास।

इनमें से वृत्त्यानुप्रास और अन्त्यनुप्रास का प्रयोग हिन्दी ग़ज़लों में बहुलता से मिलता है।

साधारणतया वृत्तियों के अनुसार शब्दों में एक अथवा अनेक वर्णों की समता कई बार होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार होता है। हिन्दी ग़ज़ल के अग्रलिखित शेर में उसका विधिवत निर्वाह हुआ है–

'क़हक़हों की कहानी को दुहराओ जब,
मेरी ख़ाली निगाहों को फिर सोचना।'

यहां पर 'क' वर्ण की चार बार आवृत्ति शब्दों के आरंभ में हुई हैं, अतः यह शेर वृत्त्यनुप्रास अलंकार का सफल उदाहरण है।

इसके अतिरिक्त छंद के चरण में वर्ण या वर्णों की मैत्री से अन्त्यनुप्रास अलंकार होता है। हिन्दी ग़ज़लों में काफ़िए और रदी फ़ के नियम निर्देशों के पालन से अन्त्यनुप्रास सौंदर्य उत्पन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ हिन्दुस्तानी भाषा की एक ग़ज़ल द्रष्टव्य है–

'चीखती हैं कूल पर संवेदना की सीपियां,
गर्म बालू पर न ऐसे तुम नचाओ मछलियां।
शहर ये बदशक्ल लोगों का है शायद इसलिए,
आईनों पर लग गई है इस जगह पाबंदियां।
क़र्ज माफ़ी की उम्मीद लेकर मैं गया था जिसके पास,
फ़ीस के लिए वो लिख रहा था अर्जियां।
कैसे दावत दूं उसे तिनकों के घर में दोस्तों,
सुर्ख अंगारों से भर रक्खी थीं जिसने झोलियां।
दीप जलता हाथ पर रखकर निकल आया हूं मैं,
मेरे पीछे रह गई हैं हांफती–सी आधियां।
शब्द इक रोटी का लिक्खा है सभी ने बार–बार
देखकर हैरां हूं भूखे बालकों की कापियां।'

इस ग़ज़ल के मतले तथा प्रत्येक शेर के अंत में क्रमशः सीपियां, मछलियां, पाबंदियां, अर्जियां, झोलियां, आंधियां, कापियां शब्दों के प्रयोग से उत्पन्न वर्णमैत्री के कारण अन्त्यनुप्रास का सफल निर्वाह हुआ हैं।

यमक शब्दालंकार का दूसरा विभेद है। यमक अलंकार का सौंदर्य काव्य में किसी शब्द या वाक्यांश के एक से अधिक बार आने तथा उनके अर्थ सर्वत्र भिन्न होने पर दृष्टिगोचर होता है। यमक के पुनः दो भेद माने गए हैं–1. सभंग यमक, 2. अभंग यमक।

जहां ऐसे शब्दों की आवृत्ति होती है, जिसमें से कुछ दूसरे शब्दों के अंश मात्र होते हैं, स्वयं पूरे शब्द नहीं होते। वहां वे केवल श्रवण–सुखद कुतूहल उत्पन्न करते हैं। अर्थ की दृष्टि से यमक का उद्देश्य हल नहीं होता है। ऐसे स्थलों पर सभंग यमक अलंकार होता है। उदाहरणार्थ हिन्दी ग़ज़ल का एक शेर देखिए–

'रेत ही रेत नज़र की हद्द तक,
जल या जलजात नहीं है कोई।'

इसमें 'जलजात' शब्द का अंश 'जल' ग्रहणा करके पूर्ण प्रयुक्त 'जल' के साथ यमक का निर्वाह किया गया है, किंतु 'जलजात' के अंश 'जल' के कोई अर्थ स्पष्ट नहीं होता, अतः यहां संभग यमक अलंकार का निर्वाह हुआ है।

कहीं–कहीं हिन्दी ग़ज़ल के मकतों में कवियों ने अपने उपनामों के प्रयोग द्वारा श्लेष अलंकार का सफल निर्वाह करते हुए अपने कुशल कवि–कौशल का परिचय दिया है। एक–दो उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी–

'अब न रोके अश्रु बरसाकर हमें कोई यहां,
हम प्रवासी हैं न ठहरेंगे बहुत दिन रह चुके।'

अथवा–

'तुम्हारे रंग की यह रूपरेखा
बड़ी हतभागिनी है तुम कहां हो।'

प्रथम शेर में प्रवासी शब्द के दो अर्थ हैं–1. कवि का उपनाम; 2. विदेश में रहनेवाला।

इसी प्रकार दूसरे शेर में 'रंग' शब्द भी कवि के उपनाम तथा रंग (Colour) के अर्थ में प्रयोग हुआ है अतः यहां श्लेष अलंकार है।

अर्थालंकार से हमारा तात्पर्य ऐसे शब्दों के प्रयोग से है, जिनके अर्थ में रमणीयता, मनोहरता या सौंदर्य सन्निहित हो। अर्थालंकार के अंतर्गत उपमा, रूपक, अपह्नुति, उल्लेख विरोधाभास, मानवीकारण, पुनरुक्ति–प्रकाश, काव्यलिंग यथा संख्या आदि अन्यान्य विभेद आते हैं।

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य में उपमा अलंकार का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है, क्योंकि उपमाओं के माध्यम से कवि अपनी अभिव्यक्ति को अधिक संक्षिप्त एवं संप्रेषणीय बनाने की सामर्थ्य रखता है। उपमा अलंकार के विषय में यह तो विदित ही है कि इसके अंतर्गत हम किसी वस्तु का वर्णन करके उससे अधिक प्रसिद्ध किसी वस्तु से उसकी समानता करते हैं। उपमा अलंकार के चार अंग माने गए हैं–1. उपमेय, 2. उपमान, 3. वाचक, और 4. साधारण धर्म।

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य में टटकी एवं अछूती उपमाओं के दर्शन होते हैं। हिन्दी ग़ज़लकार अधिकतर उपमान प्रकृति से खोजते हैं, किंतु उनका प्रयास रहता है कि यह उपमान आधुनिक जनजीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त कर सकें। उदाहरण के रूप में झुलसे हुए वृक्षों की उपमा समाधि के चिह्नों से देना अपने–आप में कितनी नवीनता रखता है। इस संदर्भ में एक शेर देखिए–

'ये झुलसे पेड़ खड़े, जैसे हों कब्रों के निशां,
कहां छिपी हो बहारों सफर नहीं कटता।'

इसी प्रकार निम्नलिखित शेर में कोमलता के प्रसंग में हृदय की उपमा मोम से देना कितना सटीक प्रतीत होता है–

'यह हृदय मोम सा गलता गया धीरे–धीरे,
रूप की आंच बता प्यार की सीमा क्या है?'

एक अन्य हिन्दी शेर में लाल अधरों के लिए रक्त चंदन जैसे नवीन उपमान अन्वेषण

करके उपमा का कैसा सफल निर्वाह किया गया है, देखिए–

'अधर पर याद अधरों की सुलगती रक्त चंदन सी
अरे शत तृप्तियों से भी महकती प्यास प्यारी है।'

कभी–कभी काव्योत्कर्ष में अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से एक उपमेय की समता के लिए एक साथ बहुत से उपमान प्रयोग किए जाते हैं, जिसमें उपमाओं की माला–सी तैयार हो जाती है। ऐसे स्थलों पर मालोपमा अलंकार माना जाता है। हिन्दी ग़ज़ल के निम्नलिखित शेर में धूप के लिए सहमी–सहमी, लज्जित एवं ख़ामोशी जैसी उपमाओं का एक साथ प्रयोग करके मालोपमा अलंकार का निर्वाह किया गया है–

'सहमी–सहमी सी, लज्जित सी, ख़ामोशी–सी,
मेरे आंगन में बैठी हुई धूप है।'

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य में रूपक अलंकार का बहुलता से प्रयोग किया गया है। रूपक से हमारा तात्पर्य काव्य में उस स्थिति से है, जब उपमेय और उपमान के मध्य अत्यधिक समता चढ़ जाने से दोनों एक–से प्रतीत होने लगते हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी ग़ज़लों से कतिपय शेर द्रष्टव्य हैं–

'हिन्दी–मंदिर है, इसमें जगह कम नहीं,
खोल दे द्वार इसके सभी के लिए।'

+++

'अंजुरी भर यादों के जुगनू गठरी भर सपनों का बोझ,
सांसों भर एक नाम किसी का पहरों–पहरों रहता हैं।'
'स्नेह–दीपक तो किसी का अब सजाएंगे हम कहां,
जो भवन हमने बनाए थे, कभी के ढह चुके।
अब अछूते रूप का पीयूष पीकर क्या करें,
कल्पनाएं मर चुकी हैं भाव सारे दह चुके हैं।'
'नींद का शहर होगा, स्वप्न की गली होगी,

आंसुओं के पनघट पर, वह कुसुम कली होगी।'

इन शेरों में क्रमशः ह्रदय–मंदिर, यादों के जुगनू, सपनों का बोझ, स्नेह–दीपक, रूप का पीयूष, नींद का शहर, स्वप्न की गली, आंसुओं का पनघट जैसे शब्द समूहों के द्वारा अलंकार का सफल निर्वाह हुआ है। रूपक अलंकार के अंतर्गत सांगरूपक एक उपभेद के रूप में माना गया है। इसमें उपमेय में उपमान का आरोप होने के साथ–साथ भी उसके सहचर पदार्थों या अंगों का भी उपमेय के अंगों पर आरोप किया जाता है। यहां पर हिन्दी ग़ज़लों से सांग रूपक के दो उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं–

'अर्थों की उंगली को थामे, शब्दों की पगडंडी पर,
एक कथा ही रोज चली है चिट्ठी हरकारों तक।'
'ये दुनिया वास्तव में, छल फरेबों का पिटारा है,
किसी ने हँस के लूटा है, किसी ने छुप के मारा है।'

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य में किसी वस्तु या बात को छिपाकर उसके स्थान पर किसी अन्य काल्पनिक वस्तु या बात की स्थापना करके अपह्नुति अलंकार का प्रयोग किया है। उदाहरणस्वरूप हिन्दी ग़ज़लों के कतिपय शेर प्रस्तुत हैं'–

'क्यों अनाड़ी बन चिकित्सा कर रहे हो,
वक्ष के ये घाव हैं, फोड़े नहीं है।'
'हर निमय क्रम से लिखूं ये देह है कागज़ नहीं,
और भी कुछ चाहिए, अवसाधना से भक्ति तक।'
'यह तो फैली हुई है मेरे सामने,
जिसको कहते हैं सच चांदनी धूप है।'

प्रथम शेर में फोड़े के स्थान पर वृक्ष के घाव, द्वितीय शेर में काग़ज़ के स्थान पर देह ओर तृतीय शेर में चांदनी के स्थान पर धूप की स्थापना की गई है। अतः यहां अपह्नति अलंकार का सफल निर्वाह हुआ है।

अनुभूति की तीव्रता को अधिक संप्रेषणीय बनाने के उद्देश्य से कवियों ने अपनी हिन्दी

ग़ज़लों में एक तथ्य कस अनेक प्रकार से वर्णन करके उल्लेख अलंकार का प्रयोग किया है। इस प्रसंग के कतिपय शेर द्रष्टव्य हैं।

'अपना है और अपनों से अन्जान है शहर,
सच पूछिए तो चेहरों की पहचान है शहर।'
'जब से प्राण! तुम्हें देखा, तब से मेरा संसार तुम्हीं हो,
सलिल तरंग, प्रवाह तुम्हीं हो, आरपार मंझधार तुम्हीं हो।'

यहां प्रथम शेर में शहर तथा द्वितीय शेर में प्रिय का वर्णन अनेक रूपों में किया गया है। अतः ये शेर उल्लेख अलंकार के उत्तम उदाहरण हैं।

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य में विरोधाभास अलंकार के माध्यम से भी कथ्य को प्रभावशाली एवं सुंदर बनाने का प्रयास किया गया है। इस संदर्भ में दो शेर उद्धृत किए जाते हैं–

'महानगर का सभ्य जगत यह जंगल अजब निराला है,
धन–सत्ता के बल पर बकरी भी शेरों को खाली हैं।'
'धूप निकली तो हमें उसने भी अंधा कर दिया,
कैसे कह दें, हम अंधेरों से उबरकर आ गए।'

यहां बकरी के द्वारा शेरों को खाना तथा धूप के द्वारा अंधा कर दिया जाना परस्पर विरोधी बातें होने के कारण विरोधाभास अलंकार का सफल निर्वाह हुआ है, क्योंकि यहां दो विरोधी वस्तुओं में वास्तव में विरोध न होने पर भी विरोध–सा प्रतीत होता है, वहां विरोध ाभास अलंकार होता है।

हिन्दी ग़ज़लों में मानवीकरण अलंकार का भी बहुलता से प्रयोग हुआ है। अनेक स्थानों पर भावनाओं, अचेतन पदार्थों, प्राकृतिक उपादानों तथा मानसिक दशाओं में मानवीय गुण आरापित कर दिया जाते हैं। ऐसे स्थलों पर मानवीकरण अलंकार की पुष्टि होती है। उदाहरणार्थ–

'सांझ ढले जब सन्नाटा मेरे घर का मेहमान हुआ,
मेरी यादों का मेरी तनहाई पर अहसान हुआ।'

'उन पर्वतों के पांव में मरूस्थल का रेते है,
जिन पर्वतों की आंख में बादल नहीं कुंवर।'
'मीठी नज़रों ने तुम्हारी छू लिया जब भी मुझे,
कितनी क्वांरी हसरतों के हाथ पीले हो गए।'

यहां क्रमशः सन्नाटा, पर्वत, मीठी नज़रों तथा क्वांरी हसरतों को मानवीय रूप में प्रस्तुत किए जाने के कारण मानवीकरण अलंकार है।

हिन्दी ग़ज़लों में कहीं–कहीं कवियों द्वारा अपने भावों को बल प्रदान करने के उद्देश्य से कुछ शब्दों को एक ही स्थान पर दो बार प्रयोग कर दिए जाने से पुनरुक्ति प्रकार अलंकार के दर्शन होते हैं। इस संदर्भ में कतिपय शेर द्रष्टव्य हैं–

'तुम ऐसे खो गए हो, जैसे विवाह के दिन,
खो जाएं सजते–सजते कंगन नई दुल्हन के।'
'मेरी जां मेरी आहों को फिर सोचना,
गीली–गीली निगाहों को फिर सोचना।'
'सूने–सूने बाग–बगीचे सूना–सूना पर आंगन,
अंधियारे में राह ढूंढ़ता, भटक रहा है पागल मन।'

यहां क्रमशः सजते–सजते, गीली–गीली, सूने–सूने एवं सूना–सूना की पुनरुक्ति से अभिव्यक्ति को अधिक बल मिला है। अतः इन शेरों में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार हैं।

काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग भी हिन्दी ग़ज़लों में यत्र–तत्र मिलता है। साधारणतया काव्यलिंग अलंकार वहां प्रभावी होता है, जहां वाक्य अथवा पद के अर्थ द्वारा किसी उक्ति की पुष्टि का कारण बतलाया जाए। हिन्दी ग़ज़लों से काव्यलिंग अलंकार के एक–दो उदाहरण प्रस्तुत हैं।–

'जो न कहनी थी उसे भी नयन सबसे कह चुके,
स्वप्न में सोचा न था जिसको वही पथ कह चुके।'
आंख से मदिरा पिलाओ और क्या आशा करूं मैं,

गीत गाकर झूम जाओ और क्या आशा करूं मैं।'

यहां नयनों द्वारा अनकही बातों को अभिव्यक्ति तथा नयनों द्वारा ही मदिरा पिलाने की बात का वर्णन काव्यलिंग अलंकार के माध्यम से किया गया है।

कभी–कभी कुछ पदार्थों का उल्लेख करके उसी क्रम से उनसे संबंध रखने वाले अन्य पदार्थ, कार्य या गुण वर्णित होते हैं तो वहां यथासंख्या अलंकार होता है। हिन्दी ग़ज़लों से यथासंख्या अलंकार का एक उदाहरण देखिए–

'था गुलाबों का बिस्तर क्यों सोए नहीं,
हम तो शूलों की शयया शयन कर गए।
कल्पना का विहग नभ में उड़ता नहीं,
यंत्रणा के अहेरी कतर पर गए।'

यहां गुलाबों के बिस्तर पर न सोकर शूलों की शयया पर शयन करने से कवि का तात्पर्य सुख के स्थान पर दुःख निमग्न रहने से है। इसी प्रकार कल्पना का पक्षी इसलिए आकाश में नहीं उड़ पाता है, क्योंकि यंत्रणा के शिकारी ने उसे पंख काट दिए हैं। अतः यहां स्पष्ट रूप से यथासंख्या अलंकार है।

इस प्रकार अलंकारों की दृष्टि से हिन्दी ग़ज़ल सात्यि का अवलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी ग़ज़लकारों ने अनायास ही अपनी रचनाओं में अलंकारों की विशाल संपदा संजोकर रखी है। उन्होंने इनका प्रयोग सायास या पांडित्य–प्रदर्शन के उद्देश्य से नहीं किया है, अपितु अभिव्यक्ति के प्रवाह में स्वाभाविक रूप से यह अलंकार उनकी रचना–यात्रा में सम्मिलित हो गए हैं।

(घ) रस–परिपाक

रस की काव्य की आत्मा माना गया है। जिस प्रकार खट्टा, मीठा, तीता, कसैला आदि रसों का स्वाद जिह्वा से अनुभव किया जाता है, वैसे ही काव्य में श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शांत, वात्सल्य, भक्ति आदि रसों की अनुभूति होती है। रस के अभाव में कविता नीरस प्रतीत होती है। और श्रोता अथवा पाठक को प्रभावित नहीं कर

पाती है।

हिन्दी ग़ज़ल सीधे पाठकों को प्रभावित करके उनके हृदय में उतर जाने की क्षमता रखती है, क्योंकि इसमें इन रसों की अनुभूति कराने की सामर्थ्य विद्यमान है। यहां हम विस्तार भय के कारण रस प्रकरण पर शास्त्रीय विवेचना न प्रस्तुत करते हुए हिन्दी ग़ज़ल साहित्य में निहित इन विभिन्न रसों का आस्वादन करेंगे।

समस्त रसों में श्रृंगार रस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए इसे रसराज भी कहा जाता है। श्रृंगार का स्थायी–भाव प्रेम अथवा रति है। इसमें स्त्री–पुरुष का पवित्र प्रेम ही वर्णित होता है। स्त्री–पुरुष के मिलन और वियोग के कारण उनके मानसिक विकारों में परिवर्तन उत्पन्न होता है। इससे श्रृंगार रस के दो भेद हो जाते हैं–1. संयोग श्रृंगार, 2. वियोग श्रृंगार।

संयोग श्रृंगार में नायक और नायिका के मिलन, दर्शन, वार्तालाप, स्पर्श आदि प्रेमपूर्ण क्रियाकलापों का वर्णन होता है, जबकि वियोग श्रृंगार में प्रेमी और प्रेमिका के एक–दूसरे से अलग रहने के कारण उत्पन्न विरह दशा का वर्णन होता हैं।

उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल साहित्य सुरा, सुंदरी एवं प्रेम, यौवन से परिपूर्ण होने के कारण श्रृंगार रस से आप्लावित है, किंतु हिन्दी ग़ज़लों ने ग़ज़ल को यथार्थवादी स्वर देते हुए उसे सामाजिक जन–चेतना से जोड़ने का प्रयास किया है। अतः हिन्दी ग़ज़लों में श्रृंगार रस की अनुभूति अपेक्षाकृत कम हुई है। फिर भी हिन्दी में पंरपरागत प्रेमपरक ग़ज़लें लिखी गई हैं, जो निराला शिष्ट एवं शील–श्रृंगार की रसानुभूति कराने में समर्थ हैं। महाकवि निराला की हिन्दी ग़ज़ल के निम्नलिखित शेर संयोग–श्रृंगार से आपूर्ण हैं–

'उनके बाग में बहार देखता चला गया,
कैसा फूलों का उभार देखता चला गया।
प्रेम का विकास वह, आंखें चार हो गईं।
पड़ा रश्मियों का हार देखता चला गया
मैंने उन्हें दिल दिया, उनका दिल मिला मुझे,

दोनों दिलों का सिंगार देखता चला गया।'

नरेश कुमार शाद की एक हिन्दी ग़ज़ल में श्रृंगार रस का परिपाक हुआ है। देखिए–

'आप आए हैं इस तरह मन में,
फूल खिल जाए जिस तरह वन में।
रस भरे होंठ, मदभरी आंखें,
रंग सा भर रहे हैं जीवन में।
याद करते हैं जिसको मधुशाले,
मोहिनी है वह आपके मन में।
अपनी ही चाप को सुनेंगे आप,
मेरे मन की हर एक धड़कन में।'

एक अन्य स्थान पर कवि कृष्ण शलभ ने अपनी ग़ज़ल के माध्यम से श्रृंगार रस की अनुभूति इस प्रकार कराई है।–

' मदिर संकेत देते हैं, तुम्हारे मद भरे लोचन,
हमें जीने नहीं देगा, तुम्हारा तन, हमारा मन।
नहाई हो जरा अंदाज से अब जुल्फ़ तो झटको,
झरेंगी रिमझिमी बुंदियां, मुखर हो जाएगा सावन।'

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य से श्रृंगार रस का एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है–

'खिड़कियों को बंद कर लिया जाए,
हस्ताक्षरित अनुबंध कर लिया जाए।
पास आते हुए लजाओ मत,
प्रीति को अब छंद कर लिया जाए।
प्यार उन्मुक्त वासनाओं पर,
खूब प्रतिबंध कर लिया जाए।'

संयोग श्रृंगार की अपेक्षा विप्रलंभ श्रृंगार की महत्ता अधिक होती है। जिस प्रकार कंचन

अग्नि में तपकर और अधिक शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार विरह की अग्नि में जलकर प्रेम अधिक पुष्ट, परिष्कृत और पवित्र हो जाता है। हिन्दी ग़ज़लों में विप्रलंभ श्रृंगार के शेर भी यत्र–तत्र अपनी संपूर्ण भाव–भंगिमाओं सहित दृष्टिगोचर होते हैं। इस कथन के समर्थन में सुप्रसिद्ध हिन्दी ग़ज़लकार कुंअर बेचैन के कतिपय शेर प्रस्तुत किए जाते हैं–

'ये हमें कैसी नई मजबूरियों के ख़त मिले,
पास रखकर भी दिलों की दूरियों के ख़त मिले।
देर तक सोते रहे चुपचाप नैनों के हिरन,
जब उन्हें बिछुड़ी हुई कस्तूरियों के ख़त मिले।'

+++

'दिल से प्यारी, जां से प्यारी, खुद से प्यारी चिट्ठियां,
देखती ही रह गईं, हमको हमारी चिट्ठियां।
जिस दिये की रोशनी में हमने लिक्खी थीं तुम्हें,
उस दिये में ही जला डालीं तुम्हारी चिट्ठियां।
देखने में जो हमें फूलों से भी हल्की लगीं,
कर गईं वो ही हमारे दिल को भारी चिट्ठियां।'

कुछ हास्य कवियों द्वारा हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में हस्तक्षेप किए जाने के परिणामस्वरूप हिन्दी ग़ज़ल साहित्य में हास्य रस के आस्वादन के अवसर भी उपलब्ध हो सके। हास्य रस से तात्पर्य किसी व्यक्ति या वस्तु की साधारण से अनोखी आकृति, वेशभूषा, वार्तालाप, विचित्र चेष्टाओं अथवा क्रियाओं को देखकर उत्पन्न काव्य–विनोद से है। काका हाथरसी की हिन्दी ग़ज़लों में हास्यरस के स्थल प्रचुरता से मिलते हैं। इस प्रसंग में उनकी एक ग़ज़ल के कतिपय शेर प्रस्तुत हैं–

'ये नागिन जैसी लट, जो आपने कांधे पे डाली है,
प्लास्टिक मेड है, या पूंछ घोड़े की लगा ली हैं।
वो संसद आज की तहज़ीब में संसद नहीं जिसमें,

न चप्पल है, न जूता है, न थप्पड़ है, न गाली हैं।'

इतना ही नहीं, दिन–प्रतिदिन जनसंख्या–वृद्धि–जनित निर्धनता के दुष्परिणामों की ओर संकेत करते हुए हास्यरस के माध्यम से कवि का कथन है कि–

'भला खाना खिलाएं भी तो कैसे आठ बच्चों को,

हैं दो टूटी पलेटें घर में लोटा है न थाली हैं।'

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य में सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों पर व्यंग्त किए गए हैं। व्यंग्त और हास्य में सूक्ष्म अंतर होने के कारण यत्र–तत्र व्यंग्यपरक शेरों में हास्य रस का भी आभास मिलता है। यथा–

'चुराकर ले गया है कंस गायें,

कन्हैया पी रहा है जाम प्यारे।'

हिन्दी ग़ज़लों में यत्र–तत्र करुण रस से संबंधित शेर भी मिलते हैं। करुण रस से हमारा तात्पर्य प्रिय व्यक्ति के पीड़ित अथवा अप्राप्य होने तथा इष्ट वस्तु, वैभव आदि के नष्ट होने से उत्पन्न क्षोभ या क्लेश की व्यंजना से है। यहां करुण रस की अनुभूति करानेवाले कतिपय शेर प्रस्तुत हैं, जिनका स्थापी भाव शोक हैं–

'ऐ मेरे गमनास कमरे में,

है बहुत दिल उदास कमरे में।

+++

'हर सांस पर लदा है बोझ किसी थकन का,

ज्यों आंख के क्षितिज पर हो भार अश्रुघन का।

हम द्वार पर खड़े थे पत्रों की प्रतीक्षा में,

पर हाथ तार आया प्रिय प्रीति के निधन का।'

यद्यपि ग़ज़ल माधुर्य से युक्त एक कोमलतम एवं संगीतात्मक विधा है, किंतु कहीं–कहीं वर्तमान समस्याओं से ग्रसित भयावह परिवेश का चित्रण करने में कविगण अपने को रौद्र रस के प्रयोग से न बचा सके। साधारणतया रौद्र रस का संचार किसी के द्वारा किए गए

असाधारण अपराध, अपमान, अपकार अथवा निंदा के कारण उत्पन्न क्रोध से होता है। हिन्दी ग़ज़लों में यत्र–तत्र रौद्र रस का आभास करानेवाले शेर प्रयुक्त हुए हैं।

'दरवाज़े पर नाम लिखा है, सोने के सिंहासन का,
लेकिन भीतर जाकर देखा, मिले लुटेरे कमरे में।
एक बैट्री, आधी लाठी, कब तक पहरेदार रहे,
जब भीतर हो बंदूकों के, अनगिन फेरे कमरे में।
भौंहे ताने मिली समस्या, बांह चढ़ाए कोलाहल,
खड़ा हुआ था एकाकीपन, आंख तरेरे कमरे में।'

वीभत्स रस के शेर भी हिन्दी ग़ज़लों में यत्र–तत्र देखने को मिलते हैं। यहां यह बताने की विशेष आवश्यकता नहीं है कि गंदी, भद्दी, अरुचिकर एवं घृणास्पद वस्तुओं के वर्णन से हृदय में उत्पन्न ग्लानि द्वारा वीभत्स रस की निष्पत्ति होती है। इस प्रसंग में हिन्दी ग़ज़लों से दो शेर उद्धृत करना पर्याप्त होगा–

'सर जब कट कर गिर ही गया तो जख्मी धड़ से जूझा मैं,
रात बड़ा घमासान का रण था, तेज़ हवा और तनहा मैं।'

+++

'ज़िंदगी का उदाहरण देखों,
लाश राशन–दुकान तक पहुंची।'

हिन्दी ग़ज़लों में शांत रस की निष्पत्ति कुशलता से हुई है। प्रायः संसार की असारता, नश्वरता, क्षणभंगुरता तथा परमात्म–तत्त्व का बोध होने से मन को अत्यंत शांति प्राप्त होती है। इसी मानसिक शांति के वर्णन द्वारा हृदय में शांत रस की उद्‌भावना होती है। यहां शांत रस की अनुभूति करानेवाले कतिपय शेर प्रस्तुत हैं–

'दे सके प्रेम दे, ले सके प्रेम ले,
प्रेम संपत्ति ज़िंदगी के लिए।
आज तू है बड़ा यह न अभिमान कर,

यह बड़प्पन है बस दो घड़ी के लिए।'

+++

'आ गई आराधना अनुराग से आसक्ति तक,

गीत सीमित हो गए उठकर सथा से व्यक्ति तक।'

कभी–कभी नन्हे–मुन्ने बच्चों के सौंदर्य, उनकी तोतली वाणी, उनकी चेष्टाओं, उनके निश्छल स्वभाव एवं क्रियाकलाप आदि को देखकर बरबस ही मन उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। फलतः हृदय में उनके प्रति जो स्नेह उत्पन्न होता है, उसी वात्सल्य रस की निष्पत्ति होती है। सूर साहित्य में वात्सल्य रस का सफल प्रयोग हुआ है। यद्यपि हिन्दी ग़ज़लें प्रौढ़ पाठकों एवं साहित्य–प्रेंमियों के लिए मानसिक भोजन उत्पन्न कराती हैं, किंतु कुछ ऐसे ग़ज़लकार भी है, जिन्होंने बाल मनोभावनाओं एवं क्रियाकलापों को अत्यधिक निकट से निरख–परख कर बच्चों के लिए हिन्दी बाल ग़ज़लों की रचना की। अतः इन रचनाओं में वात्सल्य रस का होना स्वाभाविक है। यहां प्रस्तुत शोधार्थी की एक बाल ग़ज़ल के कतिपय शेर वात्सल्य रस के आस्वादन हेतु उद्धृत किए जाते हैं–

'ज़िंदगी हँसकर बिताना चाहिए,

चुटकुले सुनना–सुनाना चाहिए।

रात–दिन आंसू बहाने से भला,

फूल बनकर मुस्कराना चाहिए।

चाट का ठेला खड़ा है सामने,

आज कुछ खाना–खिलाना चाहिए।

आ गया इतवार पापाजी हमें,

आज तो सर्कस दिखाना चाहिए।

मास्टरजी हम पढ़ेंगे शौक से,

पर खिलौने कुछ दिलाना चाहिए।'

इसके अतिरिक्त भक्तिमार्गीय विद्वानों के अनुसार यदि भक्ति रस को भी स्वीकार कर

लिया जाए तो हिन्दी ग़ज़लों में यत्र–तत्र भक्ति भाव उत्पन्न करने वाले आध्यात्मिक भावना से ओतप्रोत शेर अपने संपूर्ण भावोत्कर्ष के साथ उपलब्ध होते हैं। यथा–

'तृप्ति के बाद की प्यास दो,
आस्था के अमलतास दो।
शैव–श्रद्धा हृदय को मिले,
वैष्णवी पूर्ण विश्वास हो।'

हिन्दी ग़ज़लों में प्रेम, सौंदर्य, सुकुमारता, माधुर्य एवं संगीतात्मकता के साथ–साथ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के स्वर मुखरित होने के कारण श्रृंगार रस के साथ–साथ अन्य रसों का परिपाक भी हुआ है। हां, वीर एवं भयानक रसों की निष्पत्ति हिन्दी ग़ज़लों में नहीं हुई है, क्योंकि यह रस की प्रकृति एवं विषयवस्तु की परिधि से परे है।

(ड) हिन्दी ग़ज़ल में काव्य–दोष

हिन्दी ग़ज़ल की बढ़ती हुई लोकप्रियता से प्रभावित होकर अनेक रचनाकार इस विध ाा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बना रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप पत्र–पत्रिकाओं एवं हिन्दी ग़ज़लों की बाढ़–सी आ गई है। दूसरे शब्दों में ग़ज़ल लेखन एक फ़ैशन–सा बनता जा रहा है, किंतु हिन्दी ग़ज़ल के नाम पर जो कुछ छप रहा है, शिल्प के निकष पर उनमें से बहुत कम रचनाएं ही खरी उतरनेवाली हैं। इनका एकमात्र कारण हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में उतरनेवाले रचनाकारों में अध्ययन का अभाव है। किसी भी विधा का शास्त्रीय अध्ययन किए बिना उस क्षेत्र में सफल लेखन नहीं किया जा सकता। अतः हिन्दी ग़ज़ल के संदर्भ में पर्याप्त अध्ययन करने के उपरांत ही अपनी कलम को मांजने का अभ्यास करें। यहां हम हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में अभ्यास करने वाले कवियों तथा काव्य–प्रेमियों की सुविधा के लिए हिन्दी ग़ज़लों में पाए जानेवाले काव्य–दोषों की ओ संकेत करेंगे।

हिन्दी ग़ज़लों में प्रायः निम्नलिखित काव्य–दोष पाए जाते हैं।–

1. **;fr Hkx&**कहीं–कहीं यति भंग होने से हिन्दी ग़ज़ल अपनी लय तथा सुंदरता खो

बैठती है। किसी शेर या मिसरे में दो प्रकार से यति भंग होता है। एक तो यह शेर या मिसरा अपनी निश्चित बह्र से गिर जाए और दूसरे यह कि किसी स्वर को ऐसी परिस्थिति में दबाया या गिराया जाए जबकि काव्यशास्त्र इसकी अनुमति न देता हो। हिन्दी में शब्दों के स्वरों को दबाकर या गिराकर पढ़ने से काव्य–सौंदर्य नष्ट हो जाता है। अतः हिन्दी ग़ज़लकारों को चाहिए कि वे यति भंग के दोष से बचकर साहित्य–सृतन करें।

2. **'kCnkrj.k&**कभी–कभी ग़ज़ल के शेरों में शब्द अपने सही स्थान से बहुत ज्यादा अलग करके रख दिए जाते हैं, जिससे अर्थ में उलझाव उत्पन्न हो जाता है। लय को बनाए रखने के लिए शब्दों की इस उलट–पलट से शब्दांतरण का दोष आ जाता है।

3. **tfVyrk&**कभी–कभी हिन्दी ग़ज़लों में ऐसे शब्द आ जाते हैं, जो साधारणतया पढ़े–लिखे लोगों की भाषा में प्रयुक्त न होते हों, या ऐसे अर्थ में प्रयुक्त होते हों, जिस अर्थ में शेर में लिए गए हैं। इससे पाठकों को अर्थसिद्धि के लिए शब्दकोश का आश्रय लेना पड़ता है। भावार्थ के संदर्भ में उत्पन्न यह जटिलता भी एक प्रकार का काव्यदोष ही है।

4. **v'yhyRo&**जब किसी शेर में किसी ऐसे शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसके वास्तविक अर्थ के अतिरिक्त कोई कुरुचिपूर्ण अर्थ निकल सकता हो अथवा शब्दों के मेल से किसी अश्लील शब्द का उच्चारण होता हो, वहां अश्लीलत्व दोष उत्पन्न हो जाता है। यह अत्यंत गंभीर दोष है। हिन्दी ग़ज़लकारों को इस दिशा में सावधान रहना चाहिए।

5. **uhjl y;&l;ktu&** कभी–कभी बह्र या लयखंड के नियमानुपालन करने के उद्देश्य से केवल वज़्न पूरा करने के लिए जब 'के', 'ये', 'पर', 'त', 'भी' आदि बहुत से भर्ती के शब्दों का प्रयोग कर दिया जाता है तो शेर में कसाव या चुस्ती नहीं रह जाती है और बह्र की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। उर्दू में इसे सुस्त बंदिश तथा हिन्दी में नीरस लय संयोजन के नाम से जाना जाता है।

6. **lo'uke&nks"k&** कभी–कभी असावधानीवश हिन्दी ग़ज़ल के शेर के एक मिसरे में तुम, तू या उससे संबद्ध सर्वनाम तथा दूसरे मिसरे में आप या उससे संबद्ध सर्वनाम का प्रयोग होने से सर्वनाम संबंधी दोष उत्पन्न हो जाता है। कवियों को इससे बचते हुए

सर्वनामों के उचित प्रयोग के प्रति सचेष्ट रहना चाहिए–

7. **r|dkr&nk"k&** जब दो क़ाफ़िये ऐसे लाए जाएं, जिनमें बाद वाला टुकड़ा तो एक ही हो, लेकिन पहले के टुकड़े सम स्वर में हों अर्थात उनके अंतिम स्वर एक–से न हों तो ग़ज़ल के शेरों में तुकांत–दोष आ जाता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

'बड़ा बेरहम है जहां साथियो,
न होगी गुज़र अब यहां साथियो।
चलो आज से ही फुटपाथ खोजें।
गिरवी है अपना मकां साथियों।
जली हसरतें बच रहा बस धुआं,
हुआ धुंधमय आसमां साथियों।'

इन शेरों में जहां और यहां का काफ़िया ठीक है, किंतु जहां और यहां के साथ मकां तथा आसमां का क़ाफिया अन्त्यनुप्रास की दृष्टि से ठीक नहीं है। अतः कवियों को इस दोष से बचते हुए क़ाफ़िया तथा रदीफ़ संबंधी नियमों का सावधानी से पालन करना चाहिए।

इन दोषों के अतिरिक्त भी हिन्दी ग़ज़ल में अनेक छोटे–मोटे काव्य–दोष संभावित हैं, जिनकी चर्चा हम यहां विस्तार भय के कारण नहीं कर पा रहे हैं।

हिन्दी ग़ज़लकारों को चाहिए कि फ़ैशन अथवा अंधानुकरण के रूप में इस विधा को न अपनाकर हिन्दी ग़ज़ल के स्वरूप एवं शिल्प के संबंध में शास्त्रीय अध्ययन करें। इसके साथ–साथ इन्हें हिन्दी ग़ज़ल के पुरोधाओं द्वारा लिखी गई ग़ज़लों से भी प्रेरणा एवं दिशा–निर्देश लेना चाहिए। तभी उन्हें सच्चे अर्थों में हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में मान्यता मिल सकेगी।

(2) हिन्दी ग़ज़ल एवं उर्दू–फ़ारसी के शिल्प–विधान का तुलनात्मक अध्ययन उर्दू–फ़ारसी में ग़ज़ल की लोकप्रियता से प्रभावित होकर हिन्दी कवियों ने ग़ज़ल की विधा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। फ़ारसी के पश्चात ग़ज़ल ने उर्दू भाषा में काव्य–सौष्ठव के उच्च शिखरों को स्पर्श किया है। उर्दू ग़ज़ल का प्रभाव भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र एवं उनके

कतिपय पूर्ववर्ती कवियों पर भी पड़ा और उन्होंने उर्दू ग़ज़ल के समानांतर हिन्दी में इस विध ाा को पनपने का अवसर प्रदान किया। हिन्दी के इन कवियों ने उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल के लिए निर्धारित बह्रों (लयखंड़ों) पर हिन्दी देवनागरी लिपि में ग़ज़लें लिखी, किंतु भाषा एवं मुहावरों की दृष्टि से इन्होंने फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र का ही आश्रय लिया। कालांतर में इस परंपरा की ग़ज़लों में हिन्दी का रंग निखरा और उनमें कुछ नवीनताएं भी आईं, जिनके परिप्रेक्ष्य में ग़ज़ल अपने जटिल बंधनों से खुल सकी। उसने उर्दू–फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र के मोह से बचकर हिन्दी संस्कारों को अपनाते हुए नई सामाजिक चेतना की प्रतिस्थापना की और शिल्प के सौंदर्य में भी नए आयामों का उद्‌घाटन किया।

भावपक्ष की दृष्टि से श्रृंगारिकता यद्यपि उर्दू–ग़ज़ल की अपनी निजी विशेषता है, किंतु हिन्दी ग़ज़ल में निहित श्रृंगारिकता में भारतीयता का रंग स्पष्ट परिलक्षित होता है। उर्दू ग़ज़ल में सौंदर्य–वर्णन का जो स्वरूप रहा, उसमें कहीं–न–कहीं अभारतीय संस्कृति की झलक मिलती रही, किंतु हिन्दी ग़ज़ल में श्रृंगारिकता का रूप शुद्ध भारतीय रहा है। दूसरे शब्दों में भारतीय सांस्कृतिक चेतना का श्रृंगार ही हिन्दी ग़ज़ल की आंतरिकता में सन्निहित है।

श्रृंगार का एक अध्यात्म–समन्वित रूप भी है। लौकिक रंग में आध्यात्मिक तरंग का अनायास मिलन ही ग़ज़ल की अपनी विशेषता है। सूफी काव्य की भांति हिन्दी की श्रृंगारिक ग़ज़लों में आत्मा को पुरुष तथा परमात्मा को नारी माना गया है, किंतु इसमें प्रायः भारतीय नारी के रूप की ही झलक मिलेगी।

उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल में प्रेम, सौंदर्य, सुरा, सुंदरी जैसे विषयों को भी बह्रबद्ध किया गया है, जबकि हिन्दी ग़ज़ल की सार्थकता आधुनिक समाज की परिवेशगत पीड़ा को स्पष्ट रूप में कहने तथा अप्रत्यक्ष रूप से उनके कारणों पर व्यंग्य करने में निहित है।

शिल्प–सौष्ठव की दृष्टि से भी हिन्दी ग़ज़ल एवं उर्दू–फारसी ग़ज़ल में पर्याप्त सौम्य एवं वैषम्य दिखाई देता है। अनेक शिल्पगत प्रसंगों में हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल में एकरूपता पाई जाती है, जबकि कुछ संदर्भों में हिन्दी ग़ज़ल उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल से

काफी अलग–अलग प्रतीत होती है। इन शिल्पगत समानताओं एवं असमानताओं का आकलन करने के लिए हिन्दी ग़ज़ल एवं उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल के शिल्प–विधान का तुलनात्मक अध्ययन करना अति आवश्यकत है।

उर्दू–फारसी ग़ज़लों में बह्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्हीं बह्रों (लयखंड़ों) के आधार पर उर्दू–फारसी ग़ज़लें लिखी जाती हैं। फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र में बह्रों के पालन पर विशेष बल दिया गया है। जिस प्रकार हिन्दी कविता का मुख्य आधार पिंगल–शास्त्र एवं छन्दशास्त्र है, उसी प्रकार उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल के लिए फ़ारसी छंद–शास्त्र में बह्रों का निध ारिण किया गया है। बह्रों के विषय में हम पहले ही विस्तृत चर्चा कर चुके हैं। बह्र के टूटने पर ग़ज़ल में काव्य–दोष माना जाता है।

हिन्दी ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल को एक छंद विशेष क रूप में अपनाया है। हिन्दी ग़ज़ल में उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल के लिए निर्धारित बह्रों को तो अपनाया गया है, किंतु उसके कथ्य को परंपरागत उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल से न लेकर आम आदमी के जीवन से संबद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी ग़ज़ल को सर्वथा हिन्दी का परिवेश देनेवाले रचनाकारों ने हिन्दी छंदों में लिखने का प्रयोग किया है। अनेक अन्वेषी रचनाकारों ने हिन्दी ग़ज़लों में संस्कृति छंदों के साधारण वर्णवृत्तों का प्रयोग भी किया था। सुप्रसिद्ध उर्दू शायर अमीक हनफ़ी ने दोहा एवं मंदाक्रांता छंदों में हिन्दी ग़ज़लें लिखकर उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल एवं हिन्दी–ग़ज़ल के मध्य एक सेतु का कार्य किया। तुलनात्मक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उर्दू–फ़ारसी की बह्रों का प्रयोग उर्दू–फ़ारसी एवं हिन्दी ग़ज़लों में समान रूप से किया गया हैं किंतु नए प्रयोगों की दृष्टि से एवं हिन्दी ग़ज़लों को हिन्दी का गहरा रंग देने के उद्देश्य से हिन्दी कविगण हिन्दी एवं संस्कृत के छंदों में भी ग़ज़लें लिखने की परंपरा स्थापित कर रहे हैं।

जहां तक प्रतीकों के प्रयोग का प्रश्न है, उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल में कफस, बहार, पतझड़ गुल, चमन, पत्थर, बिजली, संग, मोम, आबेहयात, मय, मयखाना, मीनार, गुंबद, नूर, तूर आदि ईरानी सभ्यता से गृहीत प्रतीकों को अपनाया गया है। हिन्दी के प्राचीन ग़ज़लकारों

ने भी इन्हीं प्रतीकों का प्रयोग अपनी हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी गई ग़ज़लों में किया है, किंतु आधुनिक हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपनी रचनाओं में भारतीय परिवेश से गृहीत पौराणिक एवं जनजीवन से संबद्ध प्रतीकों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ हिन्दी ग़ज़ल के दो–एक शेर प्रस्तुत हैं–

'एकलव्यों से नहीं, पूछो यह द्रोणाचार्य से,
क्यों समर्पण के अंगूठे दान में मांगे गए।'

+++

फिर युधिष्ठिर को पुकारा है समय के यक्ष ने,
कान में इतना ही पीपल के कहा वट वृक्ष ने।'

यहां द्रोणाचार्य, एकलव्य तथा युधिष्ठिर, यक्ष का प्रयोग पौराणिक प्रतीकों की दृष्टि से सफल रहा है।

उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लों की भाषिक सरंचना फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र के निर्देशानुसार की गई है। इन ग़ज़लों में उर्दू–फ़ारसी की भारी–भरकम समास–गुंफित शब्दावली का प्रयोग मिलता है। उर्दू–फ़ारसी लिपि का प्रयोग भी इन ग़ज़लों में हुआ है। हिन्दी के आरंभिक ग़ज़लकारों ने भी उर्दू–फ़ारसी की शब्दावली का प्रयोग बहुलता से किया है। आधुनकि हिन्दी ग़ज़लकारों में भाषिक संरचना की दृष्टि से दो वर्ग मिलते हैं। एक वर्ग उन लोगों का है, जो हिन्दी ग़ज़ल के लिए हिन्दी संस्कृत की तत्सम शब्दावली के प्रयोग पर बल देते हैं, जबकि दूसरे वर्ग में वे लोग आते हैं, जिन्होंने उर्दू एवं हिन्दी के मध्य सामंजस्य स्थापित करते हुए दैनिक बोलचाल की हिन्दूस्तानी भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। भाषिक प्रयोगों को लेकर सुधी समीक्षकों में मत–मतांतर एंव भ्रांतियों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। उर्दू–फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र के नियमानुसार भारी–भरकम शब्दावली का प्रयोग करके देवनागरी लिपि में लिखी गई ग़ज़लें हिन्दी ग़ज़लें कदापि नहीं कहीं जा सकतीं। इस दृष्टि से दुष्यन्त कुमार की कतिपय ग़ज़लों को भी हिन्दी ग़ज़ल मानने में अनेक तकनीकी समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। हिन्दी ग़ज़ल से हमारा अभिप्राय देवनागरी

लिपि में लिखी गई उन ग़ज़लों से है, जो हिन्दी–संस्कृत की तत्सम शब्दावली या दैनिक बोलचाल की सरल हिन्दुस्तारी भाषा में लिखी गई हों।

उर्दू–फ़ारसी के वे ही शब्द हिन्दी ग़ज़ल में खप सकते हैं, जो सर्वहारा वर्ग की बोलचाल की भाषा में घुल–मिलकर एकाकर हो गए हों।

कुछ लोग भ्रांतिवश मुसलमान कवियों की ग़ज़लों को उर्दू–फ़ारसी तथा हिन्दी कवियों की ग़ज़लों को हिन्दी ग़ज़ल मान लेते हैं। वास्तव में इन दोनों के मध्य सूक्ष्म अंतर विद्यमान है। जहीर कुरैशी की आम आदमी की भाषा में लिखी गई ग़ज़लों को हिन्दी ग़ज़ल ही माना जाएगा, जबकि शमशेरबहादुर सिंह तथा दुष्यन्त कुमार की उन ग़ज़लों को उर्दू ग़ज़ल ही माना होगा, जिसमें फ़ारसी व्याकरण शास्त्र के अनुरूप उर्दू–फ़ारसी शब्द–विन्यास का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल एवं हिन्दी ग़ज़ल के मध्य अंतर स्पष्ट करने में भाषिक संरचना की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लों के कथ्य को अधिक प्रभावोत्पादक तथा संप्रेषणीय बनाने के लिए मुहावरों के प्रयोग पर बल दिया गया है। वास्तव में मुहावरा ही भाषा का प्राण है। ग़ज़ल के शेरों में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लकारों ने मुहावरों का प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से न केवल भाषा में चुस्ती एवं प्रवाह उत्पन्न होता है, अपितु अभिव्यक्ति में तीव्रता भी आती है। निस्संदेह मुहावरों के सफल प्रयोग से ग़ज़ल में साधारण शेर भी उत्कृष्ट कोटि के प्रतीक होने लगते हैं। चूकि ग़ज़ल में थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहना पड़ता है, अतः मुहावरों के माध्यम से अपनी बात कहकर ग़ज़लकार अर्थ–गांभीर्य उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। इसीलिए उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में उर्दू–फ़ारसी के मुहावरों का प्रयोग करते हुए ग़ज़ल साहित्य के सौंदर्य में अभिवृद्धि की है।

हिन्दी में उर्दू–फ़ारसी मुहावरों को दो रूपों में अपनाया गया है। एक तो सीधे ही फ़ारसी मुहावरों का जो अनुवाद उर्दू में कर लिया गया, उसे अपना लिया। जैसे 'अंगुश्त' के स्थान पर दांतों तले उंगली दबाना तथा 'आव शुदन' के स्थान पर पानी–पानी होने का प्रयोग इसी आधार पर हिन्दी में प्रचलित हुआ। दूसरी प्रकार के उर्दू के वे मौलिक मुहावरे

हैं, जिन्हें हिन्दी में ज्यों ता त्यों ग्रहण कर लिया गया। इन मुहावरों में सर कलम करना, ख़ाक में मिलना आदि आते हैं। उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लों में प्रयुक्त मुहावरे मुस्लिम सभ्यता एवं संस्कृत में पले जीवन से लिए गए हैं, जबकि हिन्दी ग़ज़लों में प्रयुक्त मुहावरे हमारे देश के सर्वहारा वर्ग के जीवन से ग्रहण किए गए हैं। वस्तुतः मुहावरा उस प्रक्रिया का नाम हैं, जिससे मनुष्य जीवन के विभिन्न अवयवों से प्रगाढ़ परिचय प्राप्त कर लेता है। यही कारण है कि कथ्य को व्यापक आयाम देने के लिए उर्दू–फ़ारसी एवं हिन्दी ग़ज़लकारों ने मुहावरों का प्रयोग अपनी–अपनी भाषागत सीमाओं में रहकर किया है।

रस–प्रयोग के संदर्भ में भी उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल एवं हिन्दी ग़ज़ल में साम्य एवं वैषम्य दृष्टिगोचर होता है। उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल दीर्घकाल से रोमानी भावधारा से जुड़ी रही है। उसका वर्ण्य विषय लौकिक या आध्यात्मिक स्तर पर प्रेम, यौवन एवं सौंदर्य से संबद्ध रहा है। अतः इन ग़ज़लों में श्रृंगार रस की ही प्रधानता रही है। इसके विपरीत हिन्दी ग़ज़ल ने प्रेम की विविध दशाओं के अतिरिक्त सर्वहारा वर्ग के दुःख–दर्द, परिवेशगत विसंगतियों, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों तथा यथार्थवादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति प्रदान की है। हिन्दी में बच्चों के लिए बाल मनोभावों के अनुरूप विषय–वस्तु का चयन करके बाल–ग़ज़लें लिखने का प्रयोग भी आरंभ किया गया है। इसलिए हिन्दी ग़ज़लों में श्रृंगार के अतिरिक्त हास्य, करुण, रौद्र, वीभत्स, शांत, वात्सल्य एवं भक्ति रस का भी प्रयोग यत्र–तत्र मिलता है।

ग़ज़ल के विभिन्न अंगों यथा शेर, मक़ता, मतला, रदीफ़, क़ाफ़िया आदि की दृष्टि से भी उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल एवं हिन्दी ग़ज़ल में काफी समानता पाई जाती है। हिन्दी ग़ज़लकार 'मक़ता' में उपनाम के प्रयोग के संबंध में उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लकारों की भांति एकनिष्ठ नहीं है।

उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल में काफ़िये के प्रयोग में काफी सुविधा है। उदाहरण के रूप में यदि ग़ज़ल के प्रारंभिक शेर में 'जलता' का क़ाफ़िया 'ऐसा' बांधा है तो वह अंत तक केवल 'आ' का ही निर्वाह करेगा और 'तन्हा', 'कोहरा', 'चेहरा', 'पैसा' आदि क़ाफ़ियों का प्रयोग कर

सकता है। हिन्दी ग़ज़ल में एसी बात नहीं हैं। हिन्दी ग़ज़लकारों ने यदि प्रारंभ में 'जलना' क़ाफ़िया 'गलना' बांध दिया है, तो उसे अंत तक इसी नियम का निर्वाह करते हुए 'छलना', 'ढलना', 'फलना' आदि का ही प्रयोग करना होगा। उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल में रदीफ़ के पालन पर भी विशेष बल दिया गया है, जबकि हिन्दी में बिना रदीफ़ की ग़ज़लें लिखने की छूट है।

संगीत के अत्यधिक निकट होने तथा गायन से संबद्ध होने के कारण उर्दू–फ़ारसी की ग़ज़ल में ट, ठ, ढ, ण जैसे कर्णकटु अक्षरों का प्रयोग निषिद्ध है, जबकि जनजीवन की समस्याओं, कठिनाइयों एवं प्रतिकूल परिवेश से जूझते हुए मानव के जीवन से संबद्ध होने के कारण हिन्दी ग़ज़ल में इन अक्षरों का प्रयोग एक सीमा तक किया भी जा सकता है।

निष्कर्षतः शिल्प–विधान की दृष्टि से हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल में पर्याप्त साम्य पाया जाता है। हिन्दी ग़ज़ल का कथ्य उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल से भिन्न होने के कारण अनेक स्थानों पर वैषम्य भी दृष्टिगोचर होता है। नए प्रयोगों के मोह के कारण भी कई अर्थों में हिन्दी ग़ज़ल उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल से अलग दिखाई पड़ती है। संभवतः यही कारण है कि उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल अपनी कोमलता, माधुर्य एवं संगीतात्मकता से लोगों के दिलों में उतरने की क्षमता रखती है, जबकि हिन्दी ग़ज़ल सर्वहारा वर्ग द्वारा भोगे गए यथार्थ क्षणों की सच्ची अभिव्यक्ति द्वारा जनसाधारण से भावतादात्म्य स्थापित कर सकी है। अपने–अपने क्षेत्र में दोनों की लोकप्रियता का यही रहस्य है।

¼M-½ fgUnh xty dk ey Nn fo/kku ¼cgj½

हिन्दी एवं संस्कृत की छंदबद्ध कविता में जिस प्रकार विभिन्न छंदों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार ग़ज़लों के लिए विभिन्न बह्रें सुनिश्चित की गई हैं। इन्हें लयखंड भी कहते हैं। बह्र में वर्ण, लय, गति एवं यति का ध्यान रखा जाता है। बह्र एक नियमित लय है, जिसका जन्म स्वरों के आरोह–अवरोह से होता है। उच्चारण की तीव्रता एवं मंदता तथा

उन लोगों का विशिष्ट क्रम ही लय की उत्पत्ति का मुख्य साधन है। बह्रा के अनुपालन के कारण ही ग़ज़ल में संगीतात्मकता उत्पन्न हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उसे उत्तम ढंग से गाया जा सकता है। गति का क्रम ठीक रखने के लिए यति का विधान किया गया है। पंक्ति पढ़ते समय सांस के टूटने के क्रम के अनुसार स्थान–स्थान पर विश्राम लेना पड़ता है। इसी विश्राम को यति कहते हैं। इस प्रकार गति और यति के संयोग को दृष्टिगत रखते हुए बह्रों का निर्माण किया गया है।

फ़ारसी छंदशास्त्र में बह्रों का विस्तार से वर्णन मिलता है। बह्र का पालन करने में मात्राओं की गणना के साथ–साथ यति का भी विचार होता है।

संस्कृत छंदों में जिस प्रकार 'दशाक्षरी' का महत्व होता है, उसी प्रकार उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लों की बह्र को समझने के लिए 'अरकान' होते हैं। यह 'अरकान' दस प्रकार के होते हैं–1. फ़ऊलुन, 2. फ़ाइलुन, 3. मुस्तफ़इलुन, 4. मफ़ाईलुन, 5. फ़ाइलातुन, 6. मुतफ़ाइलुन, 7. मफ़ाइलातन, 8. फ़अलातुन, 9. मफ़ाऊलात् और 10. मुसतज़अलुन।

इन 'अरकानों' को निर्धारित आवृत्तियों एवं निश्चित संयोग के अनुरूप गुनगुनाते रहने से विभिन्न बह्रों का निर्माण होता है। इन्हीं बह्रों या लयखंड़ों को गुनगुनाते हुए कवि अपने भावों को उसी सांचे में ढालते हुए लिपिबद्ध करके ग़ज़ल के विभिन्न शेरों की संरचना करता है।

वैसे उर्दू–फ़ारसी छंदशास्त्र में लगभग 37 बह्रों का उल्लेख मिलता है, किंतु प्रचलित और लोकप्रिय बह्रों की संख्या 12 है। इनके नाम हैं–1. मुतक़ारिब, 2. तुतदारिक, 3. हजज़, 4. रजज़, 5. रमल, 6. कामिल, 7. मुजारिअ, 8. मुक़्तज़िब, 9. मुज्तस, 10. मुसरह, 11. सरीअ और 12. खफ़ीफ़।

इन बह्रों के विषय में यहां अधिक चर्चा करना उचित नहीं है, क्योंकि इनका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं।

हिन्दी में ग़ज़ल चूंकि उर्दू–फ़ारसी से आई है, अतः हिन्दी ग़ज़लकारों ने फ़ारसी छंदशास्त्र में वर्णित इन बह्रों अथवा लयखंड़ों को अपनाने पर विशेष बल दिया है। यद्यपि

अनेक कवि हिन्दी ग़ज़ल को दोहा, मन्दक्रांता आदि छंदों में भी लिखने का प्रयास कर रहे हैं, किंतु उर्दू–फ़ारसी से आयातित उन बह्रों का प्रचलन भी हिन्दी ग़ज़ल में पर्याप्त रूप से हो रहा है। हिन्दी ग़ज़लों में इन बह्रों के नियम–निर्देशों के अनुपालन में स्थान–स्थान पर भटकाव दिखाई देता है। कवि अध्ययन के अभाव में अथवा नए प्रयोगों के मोह में पड़कर कहीं–कहीं बह्र को बदल देता है या उसे तोड़ डालता है। उर्दू में ग़ज़ल की स्थायी बह्रें 19 हैं, जिनमें 12 तो अत्यधिक प्रचलित हुई हैं। कालांतर में हिन्दी कवियों ने हिन्दी भाषा की संरचना एवं उसकी गीतात्मक इकाइयों के रचाव को देखते हुए उसमें और वृद्धि की है। आज जबकि हिन्दी में ग़ज़ल की धूम मची हुई हैं, हिन्दी के अनेक ग़ज़लकार गुनगुनाते–गुनगुनाते नई–नई बह्रें गढ़ लेते हैं और उसी सांचे में अपने मनोभावों एवं अनुभूत सत्यों को अनुस्यूत करके ग़ज़ल की रचना करने में तल्लीन हैं।

वास्तव में उर्दू में ग़ज़ल की अवधारणा जब उर्दू–फ़ारसी से आई है, तो उसके छंदशास्त्रों में वर्णित बह्रों से संबंधित नियम–निर्देशों का अध्ययन एवं अनुपालन हिन्दी ग़ज़लकारों के लिए आवश्यक है। अपनी सुविधा के अनुसार वे हिन्दी छंदों में भी ग़ज़लें लिख सकते हैं या नई–नई बह्रें गढ़ सकते हैं, किंतु उर्दू–फ़ारसी छंदशास्त्र के संबंध में उनका पर्याप्त एवं स्पष्ट चिंतन होना चाहिए। ग़ज़ल के लिए निर्धारित बह्रों के शास्त्रीय अध्ययन के अभाव में यदि हिन्दी ग़ज़लकार नितांत हिन्दी प्रकृति की ग़ज़लें हिन्दी के छंदों में ही लिखते रहेंगे तो वे ग़ज़ल के वास्तवकि रूप से दूर हटते जाएंगे और उनकी रचनाधर्मिता ग़ज़ल की आत्मा को खो बैठेगी।

हिन्दी के प्रबुद्ध ग़ज़लकारों ने न केवल फ़ारसी छंदशास्त्र में वर्णित बह्रों के बंधन को स्वीकारते हुए ग़ज़ल अस्मिता को हिन्दी में यथावत बनाए रखा है, अपितु नई–नई बह्रों की खोज करके छांदिक शिल्प–संपन्नता की दृष्टि से हिंदी ग़ज़ल के लिए व्यापक आयामों का उद्घाटन किया है। दुष्यन्त कुमार, जहीर कुरैशी, निरंकारदेव सेवक, कुंअर, बेचैन, ज़की तारिक, चन्द्रसेन विराट, शिवओम अंबर आदि की हिन्दी ग़ज़लें इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण हैं।

NBk v/;k;

ledkyhu xty vkj thou n'ku dh pqukfr;k - ¼1975 ls vc rd ½

(क) चुनौतियों के आधार

(ख) सामजिक चुनौती .

(ग) राजनितिक परिवेश .

(घ) भाषिक और धार्मिक चुनौती ,

(ङ) समकालीन गजल और मंचीय सभ्यता.

NBk v/;k;

ledkyhu xty vkj thou n'ku dh pukfr;k

आज हिंदी गजल में हमें व्यवस्था से असंतुष्टि विसंगतियों पर प्रभाव व्यंग राजनीतिक छल कपट दोहरे चरित्र तमाम सामाजिक समस्याएं रिश्ते–नाते परिवार परिदृ श्य आम आदमी से जुड़े विभिन्न चित्र दिखाई देते हैं द्य आज तमाम उर्जावान गजलकार अपने परिवेश के प्रति सचेत हैं ,और अपने इशारों में उसकी सफल अभिव्यक्ति कर रहे हैं, डॉक्टर कुंवर बेचौन जब भूख और रोटी की बात करते हैं ,तब उसके अपने ही रंग अलग ही खुशबू देती है–

हजारों खुशबू दुनिया में है पर उससे कमतर है
जो भूखे को किसी सिकी हुई रोटी से आती है

यू देखा जाए तो समकालीन गजल जीवन दर्शन को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है द्य फिर भी सुविधा और शोध की दृष्टि से हम इनको कुछ भागों में बांट सकते हैं जैसे सामाजिक चुनौती के आधार क्या हो ,सामाजिक चुनौती क्या है ,राजनीतिक चुनौती क्या है, भाषिक और धार्मिक चुनौती गजल के सामने क्या है, समकालीन गजल में मंचीय सभ्यता का विश्लेषण कैसे किया जाए ,इत्यादि को सुविधा की दृष्टि से पढ़ा जा सकता है ,समझा जा सकता है ।

¼d½ pukfr;k d vk/kkj&

आज समकालीन हिंदी गजल बहुश्रुत ,बहू पठित विद्या बन चली है ,इसमें कोई दो राय नहीं है समकालीन हिंदी गजल क्या साहित्य की कोई भी विधा उस स्थिति में अधिक लोगों तक पहुंच सकती है द्य जब पाठक एवं श्रोताओं को यह लगे कि इस रचना में तो उसके अपने ही जीवन की छवि है इसमें तो उसके अपने सुख–दुख पिरोए गए हैं वह रचना जो लोगों के घाव पर मरहम लगाए और अंधेरे में दीपक जलाने का कार्य करें जीवन व्यापार के विभिन्न क्षणों में जिसे उदाहरण की तरह प्रस्तुत किया जा सके ,वह रचना जो

जीवन की तपती दोपहरी में अचानक छा जाने वाली बादल को सा दृश्य दिखाई दे कबीर ,तुलसी, रहीम, गालिब आदि आज इसी गुरु गुण के कारण जीवित हैं द्य हिंदी गजल ने भी इन दोनों को अपनाया है ,इसने सुंदरी की देह दृष्टि पर लफ्जों की कूची चलाना धीरे–१ ीरे कम कर दिया है द्य आम आदमी के सुख–दुख को अपना कंठहार बनाने में इसकी विशेष रूप से रुझान दिखाई देने लगी है द्य अतः चुनोतियों के आधार के रूप में सामाजिक राजनीतिक पारिवारिक सांस्कृतिक विषय प्रमुखता से अपनी पैठ बनाते चले गए और यह सारा विषय आम आदमी के इर्द–गिर्द ही परिक्रमा करने लगा नीरज जी जैसे स्थापित गीतकारों को भी गजल के आकर्षण ने अपने पास में बांध ही लिया था और वह कहने लगे–

वो और ही थी जिन्हें की खबर सितारों की!
मेरा यह देश तो रोटी की ही खबर मे रहा !!

¼[k½ lkekftd pqukfr;k

किसी भी देश के सांस्कृतिक एवं सभ्यता में समय–समय पर परिवर्तन होता है द्य इन सभ्यता संस्कृतियों के सम्मिलित हो जाने की वजह से आप से समन्वय होता है और यही वजह है कि ,किसी देश के साहित्य की रचनात्मकता और बदलाव उसकी साहित्य के अनुरूप होता है, हिंदी साहित्य में त्रिलोचन,निराला,शमशेर बहादुर सिंह ने गजलें लिखना और उसके रचनात्मक रुप को नया अंदाज दिया है द्य यद्यपि उनके गजलों का तत्व समय गजल नहीं माना जाता था ,अनूप गीत के रूप में स्वीकारा गया है द्य वास्तव में गजल अरब देश से चलकर इरान होते हुए बताइए गजल का रचनात्मक विन्यास अलग–अलग देशों की साहित्य के रचनात्मक समन्वय का परिणाम है द्य उर्दू गजल और हिंदी का रचनात्मक स्तर सजातीयता में किया गया हैद्य

हिंदी में दुष्यंत कुमार ने समकालीन हिंदी गजल को संघर्ष और प्रतिरोध की ताकत दी दुष्यंत कुमार तथा अदम गोंडवी में हिंदी गजलों को प्रभावी रचनात्मक रुप दिया 8 वीं

सदी में मीर ने मौजूदा जिंदगी को प्रमाणित करने वाली गर्ल्स ने लिखी अमीर को जो पीड़ा समंदर से गहरा ही लगी ,उसी तरह की दुष्यंत कुमार की गजलें की पीड़ा भी समंदर की तरह गहरी विस्तृत महसूस की गई ,जब सामाजिक चुनौतियों की बात की जाती है ,तो हिंदी समकालीन हिंदी गजल साहित्य के सरोकारों पर भी टिप्पणी करती है रामकुमार कृषक एक पत्रिका के संपादक होने के नाते गीत गजलों में से कुछ चयन करना पड़ता है ,यह वाकई कठिन काम होता है, जिसे करना ही पड़ता है वर्गीय सोच का पक्षधर होने के वजह से उन रचनाकारों पर विशेष ध्यान दिया जाता है जो तनिक हटकर कहने की कोशिश करते हैं गजल के सारे शेर उत्कृष्ट ही हो ऐसा किसी भी शहर के लिए संभव नहीं होता पर कुछ अपवाद तो सभी विधाओं में है ही मुंबई के एक चर्चित शायर हस्तीमल हस्ती आजादी के बाद के दौर पर एक शेर कहते हैं तो दिल को छू जाता है–

सरहद पर जो कटते तो कोई गम नहीं होता !
है गम तो यह सर घर की लडाई में कटे थे !!

समकालीन गजल के साथ में जाति,धर्म,भाषा,संप्रदाय जैसे कई विभागों में बंटे भारतीय समाज पर दिल के करीब तक पहुंचती है बहुत सटीक टिप्पणी सीधे दिल तक पहुंचती है अग्निवेश शुक्ल का एक शेर मुझे खूब भाया था

झगड़ा,प्यार,आंसू,मुस्काने,खुशियां और और गम रहते हैं !
एक साथ ही मेरे घर में कितने मौसम रहते हैं !!

¼x½ jktuhfrd ifjos'k dh pqukSfr;k

समकालीन हिंदी हिन्दी–गजल राजनितिक रूप से अनेक चुनौतियों का सामना करना होता है द्य और हिंदी गजलों को लेकर ये विर्भ्रम की स्थिति लगातार बनी रही और अभी भी कुछ लोग इससे उबर नहीं पा रहे हैं, जबकि हिन्दी–गजल समकालीन युग में पूरी प्रासंगिकता व टटकेपन केसाथ अपने समय के सच से मुख्खातिब है तथा हिन्दी–गजल को लेकर फतवे जारी करनेवाले लोगभी अब दबी जबान से ही सही, इसके महत्त्व व बढ़ती लोकप्रियता के वृहत्तर परिक्षेत्र के सन्दर्भ में सकारात्मक सम्मतियाँ देने लगे हैं समकालीन

हिन्दी–गजल दुष्यन्त कुमार से प्रारम्भ होती है या १६७५ में उनके 'साये में धूप' से पहले १६७४ में भवानीप्रसाद मिश्र के 'चौखटों के पार' से शुरू होती है या कि भारतेन्दु, हरिऔध ा, निराला, शमशेर या त्रिलोचन सेय ये एक अलग राजनैतिक परिवेश विमर्श का विषय है।

आज महत्त्वपूर्ण ये है कि समकालीन उर्दू या हिन्दी–गजल की सीमा–रेखा का राजनैतिक परिवेश उचित है या अनुचित। शिवशंकर मिश्र कहते हैंदृ ''समकालीन हिंदी में गजल का जन्म न तो दरबार में हुआ, न कोठे पर, न कविताई की आघ्जमाइश में, न मौज–मस्ती में। इसका जन्म जनता के बीच, जनता के दुख–दर्द, जनता के संघर्ष में जनता की ओर से विरोध और विद्रोह में हुआ है। जवाहर लाल नेहरू से इन्दिरा गाँधी और निराला से दुष्यन्त तक।'' या इसे इस तरह कहें कि समकालीन उर्दू या हिन्दी–गजल की उत्पत्ति के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आधार और कारण एक दूसरे से भिन्न रहे हैं ।

हिन्दी–गजल के विधिवत् स्थापत्य का श्रेय जिस दुष्यन्त कुमार को दिया जाता है, वस्तुतरू वो भारतीय लोकतंत्र के अधिनायकवादी चरित्र के कालखण्ड का दुरूह समय था। उस समय के सच से टकराने व संकेतों में अपने समय की शिनाघ्ख्त करने के क्रम में समकालीन हिन्दी–गजल एक अग्नि–परीक्षा से गुघ्जरी है और फिर उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। समकालीन हिन्दी–गजलकारों का दायित्व है कि वे भारत के जातीय मिथकों, प्रतीकों, मुहावरों और विश्वासों को पुनरू प्रतिष्ठित करें । अपनी समकालीनता के सन्दर्भ में अपनी संस्कृति और परम्पराओं का पुनर्पाठ करें, ये आश्वस्तपरक है कि आज की समकालीन हिन्दी–गजल इस उद्देश्य को लेकर चल रही है। इस पर सभी सहमत होंगे कि समकालीन हिंदी गजल को जनोन्मुखी भावना का स्वर व प्रतिरोध का तेवर उसके हिन्दी–गजल के रूप में आने पर ही मिला। समकालीन हिंदी गजल आज की सर्वाधिक लोकप्रिय छान्दस विधा है । वो हिन्दी ही नहीं, कई भाषाओं में लिखी जा रही है तथा उन भाषाओं के संस्कार में रच–बसकर लिखी जा रही है फिर मात्र हिन्दी–गजल को लेकर ये आवेश व विभ्रम क्यूँ ?, हिन्दी–गजलों को समझने, उसके तेवर और ताप से टकराने की

जगह आज की समीक्षा उसे परिभाषित करने में अधिक हल्कान हुई जा रही है। 'अनभै साँचा' के जनवरी–मार्च २०१३ के अंक में विशेष सम्पादक के रूप में दृ

ज्ञानप्रकाश 'विवेक' ने भी हिन्दी– गजल की एक परिभाषा गढ़ी हैदृ ''हिन्दी– गजल की सरल–सी व्याख्या है। समकालीन हिन्दी–गजल यानी देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली गजलें।'' अर्थात् आज की उर्दू–लिपि की दुरूहता के मद्दे–नजर गजल प्रकाशित करने का नया चलन शुरू हुआ है। दायें पृष्ठ पर उर्दू–गजल छपती है और बायें पृष्ठ उसे देवनागरी लिपि में छाप दिया जाता है। ज्ञानप्रकाश 'विवेक' की मानें तो वो एक ही समकालीन हिंदी गजल दायें पृष्ठ पर उर्दू– गजल है और बायें पृष्ठ पर हिन्दी–गजल। अगर अगले पृष्ठ पर उसे रोमन में छाप दिया जाय तो क्या उसे समकालीन अँग्रेघ्जी गजल कहा जायेगा । इस पर उनकी परिभाषा मौन है । कोई लिपिमात्र ही भाषा नहीं होती लिपि एक प्रतीक होती है । किसी भाषा व उसके शब्दों के पीछे एक लम्बी सांस्कृतिक विरासत होती है, परम्पराएँ होती हैं, उसके मुहावरे होते हैं।

एडवर्ड सईद के शब्दों मेंदृ ''एक संस्कृति के अर्थों को दूसरी संस्कृति पर थोपा नहीं जा सकता। एक भाषा और संस्कृति में उसकी गूढ़ व वास्तविक चीघ्जों को धारण और अभिव्यक्त करने की पूरी क्षमता होती है।'' हर भाषा का अपनाअलग संस्कार व समाज होता है।

इस बीच समकालीन हिन्दी–गजल के सशक्त हस्ताक्षर विनय मिश्र का गजल–संग्रह 'सच और है' पढ़ने को मिला । वस्तुतरू ये समकालीन हिन्दी–गजल की राजनैतिक परिवेश विमर्श ,विषय–वस्तु, उसकी भाषाई संरचना, हिन्दी के जातीय मिथकों, प्रतीकों व मुहावरों में अपने समय के सच से जूझने का दस्तावेघ्जसा है । इसे केन्द्र में रखकर हिन्दी–गजल के मूल स्वर तक पहुँचना सरल होगा।

विनय मिश्र उन बिरले रचनाकारों में हैं जिन्हें लोकप्रियता पहले मिलती है और उनका संकलन बाद में आता है। आज के समकालीन हिन्दी–गजल के परिदृश्य में विनय मिश्र का नाम एक प्रतिनिधि गजल–कवि के रूप में सुप्रसिद्ध है। लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं

ने विनय मिश्र की गजलों को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया है। राजनैतिक परिवेश अपनी संस्कृति, परम्परा से पूर्णतरू परिचित हैं ,तथा उसी से अस्थि–मज्जा लेकर अपने समय के सच से टकराते हैं। यही उनकी विश्वसनीयता है। गजल–संग्रह में हालाँकि जीवन के प्रत्येक परिक्षेत्र का संवदेनात्मक आकलन परिकलन किया गया है, परन्तु आज की राजनीति व उसके चरित्र का पर्दाफ्फाश करने का आग्रह बार–बार झलकता है। बहुतायत कवि अपने कविता–कैनवस में राजनीति को वर्ण्य–विषय के रूप में लेने से कतराते रहे हैं । आज भी गम्भीर साहित्य–लेखन की ये प्रचलित धारणा है कि राजनीति एक ऐसा इलाफ्का है कि जिसमें उसे कुछ करने की जगह नहीं है। विचारधारा को लेकर जो तथाकथित ध्रुवीकरण–सा लेखक–समाज में हुआ कि साहित्य विचारधारा के उपनिवेश के रूप में स्वीकार किया जाने लगा तथा राजनीति उसके लिए अछूत–सी हो गयी। मिलान कुन्देरा के एक पद का प्रयोग करें जो साहित्य की 'रेडिकल स्वयात्तता' का है, जिसमें साहित्य और राजनीति, साहित्य और समाज परावलम्बी तो हैं पर आत्मनिष्ठ भी, वे सभी समान मूल्य–विस्तार से जाँचे–परखे जा सकते हैं और उनके बीच कोई वर्ण–व्यवस्था नहीं है। इस 'रेडिकल स्वायत्तता' के रहते साहित्य न तो राजनीति से परहेफ्ज कर सकता है और न ही जीवन–विमुख हो सकता है। आज का समय चतुर्दिक राजनीतिक छल–प्रपंचों से संचालित है। अब बाफ्जार, मठ, सामाजिक घटक तक राजनीति करने लगे हैं। इस पूरे षड्यंत्र की समकालीन हिंदी गजल ने सतर्क दृष्टि से पड़ताल की है तथा अपनी राजनैतिक परिवेश गजलों को रेडिकल स्वायत्तता दी है। इन्होंने उन तमाम इलाफ्कों तक अपनी समकालीन हिंदी गजल–परिधि का विस्तार किया है जिन्हें वर्जित क्षेत्र मानकर उनके समकालीन गजल–कवियों ने परहेफ्ज किया है। ये सच है कि दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी–गजल–प्रारूप में अपने समय के सच की शिनाफ्ख्त की, परन्तु ये भी उतना ही सच है कि समकालीन हिंदी गजल के समय का सच दुष्यन्त के समय से कहीं अधिक जटिल और निर्मम हुआ है और समकालीन हिंदी गजल का काम उन औफ्जारों से नहीं चल सकता। आज समकालीन हिन्दी–गजल एक लम्बी व समृद्ध यात्रा तय कर उस मफ्काम पर

है कि वो अपना मुहाविरा खुद बना रही है और राजनैतिक परिवेश इसी समकालीन हिन्दी–गजल का प्रतिनिधित्व करते हैं।

समकालीन हिंदी गजल का बिम्ब–विधान सुपरिचित व ग्राह्य बिम्ब–विधान है । उनकी प्रतिबद्धताउनके उन सरोकारों को लेकर है जिसके लिए वे काव्य–परिदृश्य खड़ा करते हैं। समकालीन हिंदी गजल का काव्य अनलंकृत काव्य–साधना का स्वरूप है जिसमें चमत्कार उत्पन्न करने, शब्दों से लेखन,विशेष कला–कौशल साधने की अनावश्यक चेष्टा नहीं है। उनके बिम्ब अर्थगर्भी हैं, परन्तु अनावश्यक अर्थ–भटकाव की दुनिया में न ले जाकर सार्थक उद्देश्य की ओर संकेत देते हैं। तमाम कलावादी आन्दोलनों के पतन के बाद भी इतना तो तय है कि कविता एक कला है तथा एक सन्तुलित कलाकौशल उसे विशिष्ट बनाता है। प्रथमतरू और अन्ततरू कविता या गजल शब्दों का एक खास संयोजन है तथा गजल के शिल्प में कथ्य–भंगिमा, अन्दाघ्जे–बयाँ का विशेष महत्त्व है। राजनैतिक परिवेश एक प्रतिबद्ध सोद्देश्य रचनाकार हैं। समकालीन हिंदी गजल के पास एक सधी हुई भाषा है।

प्रत्येक कवि को अपने मुहावरे की तलाश होती है। जब कोई कवि अपना मुहावरा पा लेता है तो उसमें असीम कालजयी रचनाओं की सम्भावना के बीज अंकुरित होने लगते हैं। ये आश्वस्तिपरक है कि समकालीन हिंदी गजल ने अपने मुहावरे के काघ्फी सन्निकट हैं। अतरू उनमें आगे एक प्रतिनिधि कवि की सम्भावना दृष्टिगोचर होती है। जैसे–जैसे उनका जीवनानुभव बढ़ेगा उनके घ्गजल–कवि के व्यक्तित्व में छिपा कालजयी रचनाकार अपना आकार लेता जायेगा। कवि–कर्म अत्यन्त क्लिष्ट व जटिल कर्म है। कला का संयम और सोद्देश्य कलात्मकता को न जानने पर प्रायरू लोग अपने अन्दर की अराजकता के शिकार हो जाते हैं। प्रत्येक रचना एक ही जमीन या एक ही विशिष्टता से नहीं रची जा सकती। हर रचना की जमीन अलग–अलग होती है तथा रचनाकार को अपने अनुभव–दीप्त कदमों से रचना की जमीन तक जाना होता है। जैसी रचना की जमीन होगी भाषा, बिम्ब–विधान व कथ्य–भंगिमा भी उसी स्तर की होगी समकालीन हिंदी गजल में ये काव्य–कौशल प्रायरू उनकी सभी गजलों में दृष्टिगोचर होता है।

समकालीन हिंदी गजल की चिन्तन–परिधि में बाघ्जार का पसरता प्रारूप, शोषण, भाषावाद, क्षेत्रवाद, राजनैतिक व सांस्कृतिक मूल्य–क्षरण, विर्भ्रम, एकाकीपन, भय, कुण्ठा, निराशा, असुरक्षा, छीज रही मानवीय संवेदना है तथा वे एक बेह्तर परिदृश्य के आग्रही कवि हैं। गजल–शिल्प की अपनी एक सीमा होती है। उसमें कथा–चरित्र की गुंजाइश नहीं होती, को इस सीमा का अन्दाघ्जा है तथा वे जो, कुछ कहना चाहते हैं उसके लिए अपने कौशल से जमीन तलाश लेते हैं। आज की गजलें इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हैं कि उनमें सामाजिक सृजनशीलता है, जो ऐतिहासिक नवीनता की परिधि तक है। समकालीन हिंदी गजल की अपनी गजलों में एक बेह्तर दुनिया, एक बेह्तर समाज के लिए जूझते दिखते हैं। वे किसी भी कीमत पर आज के समय को आदमीयत के अनुकूल करना चाहते हैं।

मुक्तिबोध ने कहा है–

''बहुत–बहुत ज्यादा लिया।
दिया बहुत–बहुत कम।
मर गया देश।
अरे जीवित रह गये हम।''

राजनैतिक परिवेश खुद की कीमत पर देश को या कि समूची मानवता को जिलाने के पक्षधर हैं। अतरू राजनैतिक परिवेश की गजलों का मूल स्वर प्रतिरोध का स्वर है ,तथा ये गजलें दुर्दम जिजीविषाव मध्यवर्गीयकर्त्ता तथा सर्वहारा वर्ग के संघर्षों का आख्यान हैं । विनय मिश्र कहते हैंदृ

बम धमाकों शोर–गुल चीघ्खों के मंजर में !
तिनका–तिनका जोड़कर हिम्मत जुटाता हूँ !!

ये सर्वहारा–वर्ग व मध्यवर्गीयकर्त्ता का दर्द है जो एक साथ आतंकवाद व बाघ्जारवाद के आतंक से जूझता हुआ, अपनी दुर्दम जिजीविषा के द्वारा अपनी गृहस्थी और संवेदना का तिनका–तिनका जोड़कर इस विषम व निर्मम समय में जीवन–पथ की तलाश करता है। ये समकालीन हिंदी गजल की अनलंकृत काव्यसाधना का विरल रूप है जिसमें अपने

समय का सच है और इसे अभिव्यक्ति देने के लिए वे कोई तिलिस्म नहीं गढ़ते, लेकिन वे अपनी जिम्मेदारियाँ यहीं तक तय नहीं करते

हमारा काम है बाघ्जार में भी आदमी गढ़ना !

तुम्हारा काम घर–आँगन को भी बाघ्जार करना है !!

राजनैतिक परिवेश अपनी परम्परा से परिचित हैं ,और राजनैतिक परिवेश कि कविता कभी राजधानी के पक्ष में नहीं रही और हमेशा आम आदमी के पक्ष में खड़ी रही है ।

कृष्णमोहन झा की कविता हैदृ 'धरती के किसी कोने में

जब भी गुलेल पर पकड़ मघ्ज्बूत होती है

बहेलिये की

कविता की देह से खून चूने लगता है।'

कविता ही संवेदना के धरातल पर मानवता के लिए सुरक्षित जमीन तलाशती है। राजनैतिक परिवेश आज के बाघ्जार के चरित्र से सर्वथा परिचित हैं । दुनिया भर के देशों की सरहदों को अपनी ठोकर से गिराकर बाघ्जार ने पहले भूमण्डलीकरण का स्वप्नलोक दिखाया और अब उसने समूचे विश्व का भूमण्डलीकरण कर दिया है । आज का सबसे बड़ा संकट पूँजीवाद, अधिनायकवाद की कोख से जन्मे बाघ्जारवाद का आतंकवाद है जो आज नियमों, कानूनों, संविधान व मौलिक अधिकारों पर अपना खूनी पंजा गड़ाकर आदमी को एक वस्तु के रूप में बदलने पर आमादा है । उसके लिए पूँजी ही ब्रह्म है और मुनाघ्फा ही मोक्ष है एवं उतना ही सच ये भी है कि व्यवस्था के सारे सामाजिक व राजनैतिक संस्थान हताश मुद्रा में इस बाघ्जारवाद के समक्ष आत्म–समर्पण करते जा रहे हैं, परन्तु पूँजीवादी अधिनायकवाद और अधिक तीव्र गति से घर–आँगन में मण्डी की सम्भावनाएँ तलाश रहा है । आश्वस्तिपरक ये है कि विश्व–कविता बाघ्जार के इस रवैये के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर मुखर कर चुकी है । विनय मिश्र उसी विश्व–कविता के एक प्रतिनिधि ा–कविता के रूप में बड़ी सधी भाषा में बाघ्जार के चरित्र का पर्दाघ्फाश करने में सार्थक हस्तक्षेप कर रहे हैं तथा वे आश्वस्त करते हैं कि आज भी कविता ही एक मात्र वो औघ्जार

है जिसमें बाघ्जार में भी आदमी गढ़ने या आदमी को बचाने की ताघ्कत है । उसकी अँगुली पकड़कर इस मण्डी के दलदल से सुरक्षित पार हुआ जा सकता है।

हर तरफ गोलमाल है साहब !
क्या ख्याल है साहब !!
रिश्वत खाके जी रहे है लोग !
रोटियों का अकाल है साहब !!

¼?k½ Hkkf"kd vkj /kkfed pukfr;k

समकालीन हिंदी गजल को बसे ज्यादा भाषिक आधार पर बंटा गया हिंदी को हिन्दू से उर्दू को मुसलमान से,समकालीन हिंदी गजल ने विद्रूपताओं को तोडा है भाषा और काव्य विधान में भेद को स्पष्ट किया है ,एक शायर ने कहा है दृ

उर्दू की नर्म शाख पर रुद्राक्ष का फल है !
सत्यम को शिव बना रही हिंदी की गजल है !!

इसी तथ्य को कुछ खुलकर जमुनाप्रसाद उपाध्याय कुछ इस प्रकार कहते हैंदृ

नमाजी भी नहीं हैं जो, पुजारी भी नहीं हैं जो !
वो मन्दिर और मस्जिद के लिए गमगीन रहते हैं !!
अयोध्या है हमारी और हम सब हैं अयोध्या के !
मगर सुर्खी में सिंहल और शहाबुद्दीन रहते हैं !!

यहाँ जमुनाप्रसाद उपाध्याय मात्र अयोध्या–प्रकरण पर कुठाराघात करते हैं, परन्तु भाषिक और धार्मिक आधार के शेर के अर्थात् का फलक विस्तीर्ण है विवेक–चेतना व कला–चेतना के सन्तुलन के साथ जब कोई कवि अपनी परम्परा से प्राण–ऊर्जा लेकर कवि–कर्म करता है तो उसकी कविता में मौलिकता की विश्वसनीयता तो होती है साथ ही सच्चे अर्थों में वो लोक का कवि होता है। टी. एस. इलियट ने माना है कि कवि को परम्परा का ज्ञान होना चाहिए। 'ट्रेडिशन एण्ड इण्डिविघ्जुअल टैलेण्ट' में उन्होंने व्यक्तिगत प्रज्ञा के

प्रत्युत परम्परा को अधिक महत्त्व दिया है। विनय मिश्र अपनी परम्परा, संस्कार व अपने समाज की जीवन–शैली व उसकी उलझनों व सहमतियों से सर्वथा परिचित हैं। अतरू वे एक साथ तमाम परिस्थितियों का गहराई से आकलन–परिकलन कर पाते हैं कि आज के तथाकथित उत्तर–आधुनिक युग में जिन्दगी के पाँव कहाँ–कहाँ बोझिल हो रहे हैं और कहाँ एक बेह्तर दुनिया का नक्शा छीज रहा है ।

इस पूरे परिदृश्य में कुछ जन–आन्दोलनों की शुरूआत तो हुई, परन्तु उनके औंधे मुँह गिरने से ये प्रतीत होने लगा है कि अब लोग यथास्थितिवादी होने लगे हैं । किसी युग का वो सबसे खतरनाक कालखण्ड होता है जब लोग सच से टकराना तो दूर सच बोलने से भी कतराने लगते हैं। हम एक ऐसे असहिष्णु समय में जीने के लिए अभिशप्त हैं जिसमें सच बोलना एक अपराधसा होने लगा है। साहित्य समाज का दर्पण हो न हो, कविता अपने समय का दस्तावेघ्ज जरूर होती है । उसमें अपने समय का सांस्कृतिक इतिहास होता है और यही सूत्र पकड़कर साहित्य के युगों का काल–निर्धारण तक किया जा सकता है। समकालीन हिंदी गजल के शेर जब कभी आनेवाली सदियों में पढ़े जायेंगे तो अगली पीढ़ी जान सकेगी कि उसका अतीत कितना निर्मम रहा है,और उस मरे समय में समकालीन हिंदी गजल के संवेदनशील रचनाकार क्या लिखकर जीवित रहे हैं ।

समकालीन हिंदी गजल लोक से परिचित हैं तथा लोक–कथा का हवाला देकर मुहावरेदार भाषा में बाघ्जार के चरित्रगत षड्यंत्र का पर्दाघ्फाश करते हैं। एक पर एक पुरस्कार योजनाएँ, डिस्काउण्ट, कभी–कभी बाघ्जार 'सेण्टाक्लाघ्ज' का यूनीघ्फार्म पहनकर दानवीर की भूमिका का भी ढोंग करता है। इस 'सेण्टाक्लाघ्ज' के पेट के दाँत के प्रति विनय मिश्र आगाह करते हैं कि बाघ्जाररूपी दानव की माया की चकाचौंध में पड़ने पर सब कुछ नीलाम हो जायेगा और अस्तित्व पर भी संकट आ सकता है। ये अपनी सूक्ष्म अन्तदृ ष्टि से वस्तुस्थिति को भाँपने का भी कौशल रखते हैंदृ

हाथ में सोने का कंगन दाँत लेकिन पेट में !

एक बूढ़ा बाघ दानी हो गया है, सावधान !!

इस कदर नफरत थी जिसको खुशबूओं की बात पर !

वो अचानक रातरानी हो गया है, सावधान !!

यहीं तुलसीदास याद आते हैं–

नवन नीच कै अति दुखदायी । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई।।

भयदायक खल की प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी।।

अपने इन शेरों के माध्यम से समकालीन हिंदी गजल ने अपनी पूर्वज–परम्परा से जुड़ते हैं ,तथा अतीत को दृष्टि में रखकर या कि अपनी वृहद प्राचीन परम्पराओं से अनुभव के जीवन–रस का अवगाहन कर अपनी समकालीन चुनौतियों से और वर्तमान के अन्तर्द्वन्द्व से टकराते हैं। इसे परम्परावादी नहीं, परम्पराबोधी कवि कहते हैं तथा यही परम्पराशोध भी कर पाता है और अपनी परम्पराओं को वर्तमान के लिए अनुकूलित कर पाता है । 'सच और है' में हिंदी गजल ने इसी प्रकार कई शेरों में परम्परा का शोध किया है । अतरू वे समकालीन गजल तो हैं निरंतर भाषिक और धार्मिक चुनौतियों को स्वीकार भी करते है द्य

¼M½ ledkyhu xty vkj eph; lH;rk

समकालीन हिंदी गजल के सामने समकालीनता और मंचीय सभयता को लेकर बड़ी चुनौतियां थी ,जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पाबन्दी लग जाती है तब एक चुप्पी का सन्नाटा पसर जाता है और सन्नाटे की कोख में अनहद–नाद पलने लगता है । ये अनहद–नाद ही जब अवाम की समवेत आवाध्ज के रूप में प्रतिरोध की आँधी खड़ा करता है तब उसमें तानाशाही के बड़े–बड़े दुर्जेय दुर्ग भी भर–भराकर ढह जाते हैं। अपनी इस क्रान्तिधर्मी शेरगोई को समकालीन हिंदी गजल ने अपने कलात्मक संयम के चलते नारे की शक्ल नहीं लेने देते हैं समकालीन हिंदी गजल का जीवन–दर्शन मृत्यु का अतिक्रमण करता है ।

समकालीन गजलकार कहते हैं।

मौत ही मंजिल नहीं है, दोस्तो!
जिन्दगी आगे भी आखिरकार है !!

विश्व के लगभग समस्त दर्शनों में मृत्यु एक पड़ाव, अन्त या मंजिल के रूप में स्वीकार्य है। भारतीय दर्शन 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' का प्रतिपादन करता है तथा मृत्यु को परिधान–परिवर्तन का माध्यम मानकर पुनर्जन्म के सिद्धान्त की व्याख्या करता है, परन्तु समकालीन हिंदी गजल ने सीधे मृत्यु का ही अतिक्रमण कर अपनी मौलिक सैद्धान्तिकी का प्रतिपादन करते हैं। मृत्यु के बाद जब भौतिक देह नष्ट हो जाती है तब व्यक्ति अपने महान् कार्यों की अक्षर–देह के रूप में जीवित है । कालिदास, सूर, तुलसी, मीरा की साहित्य–सम्पदा उनकी अक्षर–देह के रूप में आज भी हमारे साथ ही नहीं है, अपितु हमारा मार्ग–निर्देशन भी करती है इनके लिए आवश्यक नहीं था की मंचीय जीवन ये जीते । इनका अर्थगर्भी संकेत ये है कि व्यक्ति को जीवन में ऐसा कुछ कर जाना चाहिए कि उसकी अक्षर–देह के रूप में उसका महान् कार्य युगों तक आनेवाली पीढ़ियों का मार्ग–निर्देशन करता रहे।

विस्थापन आज का बड़ा संकट है । समकालीन हिंदी गजल में भी आज उसकी पर्याप्त अनुगूँज है । रोघ्जी–रोटी की तलाश, महत्त्वाकांक्षा, राजनैतिक व सामाजिक कारणों से समाज का एक बड़ा वर्ग विस्थापन का दर्द झेल रहा है और इस विस्थापन में सबसे अधि ाक गाँव प्रभावित हुए हैं । अपना गाँव–घर छोड़कर जो लोग कहीं दूर अस्थायी या स्थायी रूप से बसने को बाध्य हैं वे घर लौट नहीं पाते, परन्तु अपनी यादों में उस घर को अन्तिम साँस तक बसाये रहते हैं, अर्थात् वे घर में नहीं, वरन् घर उनमें रहता है। इस विस्थापन के दर्द को समकालीन हिंदी गजल के समकालीन व अन्य कवियों ने भी कुछ इस तरह व्यक्त किया हैदृ

आ गये जो शह्न के धोखे में !
रास्ता घर का भूल जाओगे !!

–सुल्तान अहमद

गुलों में ज्यों चमन की खुश्बुएँ मौजूद रहती हैं !
कहीं जाऊँ वतन की खुश्बुएँ मौजूद रहती हैं !!

—कुंवर बेचौन

बन्द कल को क्या किया मुखिया के खेतों में बेगार !
अगले दिन ही एक 'होरी' और बेघर हो गया !!

—अदम गोण्डवी

भटकता हूँ दर—दर कहाँ अपना घर है !
इधर भी, सुना है कि उनकी नजर है !!

—त्रिलोचन

जिस घर से निकलने को 'शलभ' सोच रहे हो !
लौटे कोई दिन और तो ताले भी पड़ेंगे !!

—'शलभ' श्री राम सिंह

आज मंचीय सभयता में साम्प्रदायिकता, भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, राजनीति के कुत्सित खेल से ही जन्मे हैं और जह्र फैलाकर उसकी आँच पर रोटी सेंकने का कारोबार जारी है। कुछ शेर देखेंदृ

उधर इस्लाम खतरे में, इधर हैं राम खत्रे में !
मगर मैं क्या कहूँ है मेरी सुब्हो—शाम खत्रे में !!

—नूर मुहम्मद 'नूर'

कभी पेड़ों को भी छुट्टी दिया कर !
हवा तू भी कभी पैदल चलाकर !!

—देवेन्द्र आर्य

आप छल–बल के धनी हैं जीतिएगा आप ही !
आप से बेह्तर मेरी उम्मीदवारी है तो है !!

–एहतराम इस्लाम

सारा ध्यान खघ्जाने पर है !
उसका तीर निशाने पर है !!
अब इस घर के बँटवारे में !
झगड़ा बस तहघ्खाने पर है !!

–विज्ञान व्रत

रहनुमाओं की अदा पे फिदा है दुनिया !
इस बहकती हुई दुनिया को सम्भालो यारो !!

–दुष्यन्त कुमार

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज की राजनीति के छल–प्रपंच के उद्घाटन में विनय मिश्र अपने समकालीन व अन्य कवियों के साथ किस साझी संवेदना के साथ खड़े हैं तथा इस सियासी दाँवपेच– के विरुद्ध अपना मुखर बयान दर्ज करते हैंदृ

व्यवस्था के नियम तेरे हैं लेकिन !
मुझे वो चाहिए जो मेरा हघ्क है !!

यश मालवीय इसे कुछ इस तरह कहते हैंदृ

हमें इतिहास से मतलब नहीं है !
हमारे वघ्क्त का भूगोल दे दो !!

आज की राजनीति के अविश्वसनीय आचरण पर प्रश्न–चिह्न टाँकते हैं–

देखो गाल बजाते इनको आती कोई शर्म न लाज !
हैं संगीनों के साये में क्या देंगे भय–मुक्त समाज !!

विनय मिश्र

जब बुलेटप्रूघ्फ ग्लास–चेम्बर में देश के प्रधानमंत्री लाल किले की प्राचीर से जनता को आश्वस्त करते हैं कि 'भय–मुक्त रहिए' तब समकालीन हिंदी गजल के इस शेर का अर्थ स्वतरू खुलने लगता है । भूलीबिसरी कलंक–कथाओं को धो–पोछकर उन्हें वर्तमान की पोशाक में सजाने का षड्यन्त्र कर सामाजिक समरसता के विरुद्ध जो ताण्डव किया जाता है, समकालीन हिंदी गजल उस पर सधी टिप्पणी करता हैं।

रसातल से निकाले जा रहे हैं !

गड़े मुर्दे उखाड़े जा रहे हैं !!

समकालीन हिंदी गजल में यद्यपि मंचीय सभ्यता ने पुरजोर आवाज उठायी है तथापि मंचियता का बहुत बड़ा कार्य उनके विभिन्न विषयों में थे जैसे –

समकालीन हिंदी गजल की कथ्य–भंगिमा अलग है, परन्तु दुरूख साझा है और यही प्रवृत्ति उन्हें समकालीनपरिदृश्य में कविता रच रहे तमाम कवियों का सहोदर बनाती है तथा यही काव्य–प्रवृत्ति उनकेसमकालीन होने की गवाही देती है। कथ्य, बिम्ब–विधान, प्रतीक, शैली के साथ–साथ भाषा भी कवि के साथ गवाही में खड़ी होती है और मंच की भाषा उनके पक्ष में हलघ्फिया बयान लेकर खड़ी है।

आज लोकतंत्र का चौथा पाया मीडिया अराजकता का शिकार हो चला है। अब वो खबर ढूँढ़ता–बीनता नहीं, वरन् खबर पैदा कर रहा है, गढ़ रहा है। इस पर समकालीन हिंदी गजल में कहते हैं–

सबसे आगे, सबसे पहले तेज खबर देनेवाले

कितना पीछे छूट गया है देश तुम्हें मालूम नहीं

सोचने पर पाबन्दी लगाने और मशीनी आदमी ईजाद करने के लिए लार्ड मैकाले ने यहाँ जिस शिक्षापद्धति को विकसित करने का षड्यंत्र किया था, आघ्जादी के इतने बर्षों बाद भी हालात जस के तस हैं। उत्तर–आधुनिक युग के इस खतरनाक समय में जब कि विचारों के अन्त का फत्वा जारी हो रहा है, बाघ्जारू सभ्यता व नागर अपसंस्कृति हावी है। समकालीन हिंदी गजल इस सांस्कृतिक विचलन के विरुद्ध स्वर मुखर करते हैं–

आदमी जिस सफ़र में शामिल है !

लौट आये तो ज्यादा अच्छा है !!

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है की समकालीन हिंदी गजल अपनी गजल–यात्रा में कभी भारतीय दर्शन के निकट हैं, कभी मार्क्सवाद के प्रभाव में, तो कहीं गाँधी–दर्शन के सन्निकट और कहीं सबसे दूर अपनी स्वतरू की विचार–सरणि से जूझते हुए एक मौलिक रचनाकार हैं। वो रचनाकार जो अपने समय के सच से टकराने के क्रम में तमाम विचारधाराओं से टकराता भी है तथा तमाम विचारधाराओं का समर्थन या खण्डन कर रहा होता है। उसे इस खण्डन–मण्डन से कोई स्वार्थगत सरोकार नहीं, यही उसकी मौलिकता भी होती है औरउसकी विश्वसनीयता व ताफ़त भी। समकालीन हिंदी गजलों में उनके समय की तस्वीर साफ़–साफ़ देखी जा सकती है और उसकी आवाज़ स्पष्ट सुनी जा सकती है। इनके यहाँ मध्यवर्गीय गृहस्थ,सर्वहारा वर्ग सहित समूची मानवता के लिए तड़प की हद तक आत्मीयता है जिसे वे क्षतिग्रस्त नहीं होने देना चाहते। समकालीन हिंदी गजलों की इस कठिन समय से जूझ रहे सरल आदमी की जिम्मेदारिय , विवशताओं व संघर्ष का बिम्ब बार–बार उभरता है। समकालीन हिंदी गजलों की काव्य–प्रवृत्ति में प्रेम जीवन–तत्त्व के रूप में आता है, कदाचित् इसीलिए रूमानी गजलों का प्रायरू अभाव है जो कुछ कला–प्रेमियों को खटक सकता है, परन्तु समकालीन हिंदी गजलों का मानवता व जीवन–मूल्य के प्रति प्रेम है, एक बेहतर दुनिया के प्रति प्रेम है। वे जहाँ भी इनमें क्षरण पाते हैं उनकी हिंदी गजलों में प्रतिरोध का स्वर मुखर हो जाता है, क्योंकि किसी विचारक ने कहा है कि जो प्रेम नहीं करता वो क्रान्ति भी नहीं कर सकता। उपर्युक्त जितने वैचारिक और भावनात्मक आयामों की बातें मैंने कही हैं उन सब के उदाहरण समकालीन हिंदी गजलों के दर्शन और शिल्प में मौजूद हैं, जिन्हें यहाँ स्थान–संकोच के कारण दे पाना सम्भव नहीं है।

lkrok| v/;k;

fgnh vkj mnt xty dk r|ykRed v/;;u -

lkrok¡ v/;k;

mnZw vkSj fgUnh xty dk rqyukRed v/;;u -

गजल एक आयातित विधा है। इसने अरब से चलकर ईरान होते हुए भारत की यात्रा की है। मुसलमान–काल में भारत के उर्दू–कवियों के हाथों इसका पालन–पोषण हुआ। अतः हिंदी–गजल की पृष्ठभूमि के रूप में उर्दू–थ्हंदी गजल का अध्यन करना समीचीन होगा।

mnZw&fgUnh xtyksa dk Lo:i

गजल की परिभाषा एवं उद्गम के विषय में हम पिछले अध्याय में चर्चा कर चुके हैं। यहां पर हमें उर्दू–हिंदी गजल के स्वरूप एवं शिल्प के संबंध में विचार करना है।

उर्दू–हिंदी में गजल एक सशक्त विधा के रूप में लोकप्रिय हुई है। अतः उसके स्वरूप का अध्ययन करने के लिए भाव एवं भाषा की दृष्टि से उपलब्ध तत्संबंधित साहित्य पर विचार करना होगा।

¼d½ Hkko dh n`f"V ls mnZw&fgUnh xtysa

साधारणतया गजल प्रेम के विविध स्वरूपों की चर्चा के लिए ही एक सुरिक्षत विधा के रूप में मानी गई है। उर्दू–हिंदी के कवियों ने गजलों के माध्यम से प्रेम की विविध भावनाओं के शब्दचित्र अंकित किए हैं। हिंदी–साहित्य में प्रेम को दो स्वरूप माने गए हैं–

1. इश्के हकीकी
2. इश्के मजाजी

इश्के हकीकी से तात्पर्य अलौकिक प्रेम से है, जिसमें भक्ति, ईश्वर–प्रेम और संसार की नश्वरता से संबंधित प्रसंग आते हैं। इश्क मजाजी लौकिक प्रेम को कहते हैं, जिसमें प्रेमी और प्रेमिका के भौतिक प्रेम से संबंधित वार्तालाप या कथोपकथन होते हैं।

थ्हंदी साहित्य में इश्के हकीकी को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। थ्हंदी कवियों ने

अपनी गजलों में अलौकिक प्रेमी की सुंदरता, उससे मिलने की उत्कंठा एवं उसके रंग में रंग जाने की ललक को स्वर दिया है। इन कवियों की गजलें साधारण पाठक को लौकिक प्रेम की रसानुभूति कराती हैं, किंतु वास्तव में वे अलौकिक प्रेम की ओर संकेत करती हैं।

थ्हंदी के सुप्रसिद्ध कवि सादी शीराजी अपना दिल एक प्रेमी को दे बैठते हैं। मित्रों ने उनसे पूछा कि 'तूने उसे अपना दिल क्यों दे दिया?' इसके उत्तर में वे कहते हैं, 'मित्रो! मेरे प्रेमी से पूछ लो कि वह इतना सुंदर क्यों है?' उनका शेर प्रस्तुत है–

'दूस्तां मनअ कुनंदम कि चरा दिव तू दादम,

बायद अव्वल बतू मुफ्तन कि चुनी खूब चराई।

कवि प्रेमी के शाश्वत सौंदर्य पर मुग्ध है और वह प्रेमी अलौकिक पुरूष परमेश्वर है। इसी प्रकार हिंदी में गजल को प्रतिष्ठित करनेवाले कवि रूमी, खुसरो, हाफिज, इराकी, मगरबी, अहमद जाम और जामी आदि ने ईश्वर प्रेम के रंग में अपने पूर्णतया रंग लिया है। उनकी गजलों में आध्यात्मिकता और संसार की नाश्वरता के शब्दचित्र बहुलता से पाए जाते हैं। उनके नखशिख वर्णन में वासना की गंध नहीं पाई जाती, अपितु एक ऐसी गंध मिलती है, जिससे संसार का कण–कण गंधायित प्रतीत होता है। इस प्रकार थ्हंदी गजलों का भावपक्ष इश्के हकीकी या अलौकिक प्रेम से संपन्न है।

इसके विपरीत उर्दू गजल–साहित्य में इश्के मजाजी या लौकिक प्रेम के शब्दचित्र बहुलता से उपलब्ध होते हैं। चूंकि उर्दू गजल को विलासिता–प्रिय मुसलमान शासकों का संरक्षण प्राप्त रहा है, अतः इसका लौकिक प्रेम की रंगीनी से परिपूर्ण होना स्वाभाविक है।

उर्दू गजलों में प्रेम के विविध स्वरूपों यथा मिलन की अभिलाषा, प्रियतम का अत्याचार, विरह–वेदना, एक प्रिय को लेकर दो प्रतिद्वंद्वियों में पारस्परिक ईर्ष्या, प्रिय का नखशिख वर्णन, प्रतिज्ञा भंग या बेवफाई से लेकर शराब, साकी, प्याला, सुराही आदि से युक्त भावनाओं की इंद्रधनुषी झलक मिलती है।

प्रियतम के नखशिख वर्णन के अंतर्गत उसके आक्रमणकारी नेत्रों, बिखरे हुए बालों, रसभरे अधरों, चंद्रमा से सुंदर मुखमंडल, दिल को जीत लेनेवाली मुस्कराहटों आदि का वर्णन अत्यंत ही उक्ति–वैचित्र्य के साथ किया गया है। दक्षिण के सुप्रसिद्ध उर्दू कवि हजरत वली ने प्रिय के नेत्रों और होंठों का कितना सुंदर चित्रण अपनी गजल के एक शेर में किया है–

'तुझ लब की सिफ्त वाले बदख्शां सूं कहूंगा,

जादू है तेरे नैन गजाला सूं कहूंगा।'

इतना ही नहीं, प्रिय की पलकों ने उन्हें घायल भी कर डाला है। वे कहते हैं–

'जख्मी किया है मुझे मेरे पलकों की अनी ने

यह जख्म तेरा खंजरे–भालां सूं कहूंगा।'

मिर्जा सौदा को प्रिय की निगाह के प्रभाव से पानी में भी शराब का नशा मालूम पड़ता है। वे कहते हैं–

'टूटे तेरी निगाह से अगर दिल हबाब का,

पानी भी फिर पिएं तो मजा हो शराब का।'

शराब के प्याले को देखकर उन्हें प्रियतम की नशीली आंखों का स्मरण हो आता है और बस वे बिना पिए ही नशे में अपना होशो–हवास खो बैठते हैं–

'कैफीयते–चश्म उसकी मुझे याद है 'सौदा'

सागर की मिरे हाथ से लेना कि चला मैं।'

प्रियतम के नेत्रों और उसकी दृष्टियों के वर्णन में उर्दू गजल साहित्य भरा पड़ा है, जिसकी विस्तार से चर्चा न करके अब हम उसके गेसुओं पर आते हैं। वह अपने बालों को संवार रहा है, जिसे देखकर मीर हसन फरमाते हैं–

'वो जब तक कि जुल्फें संवारा किया।

खड़ा उस पे मैं जान वारा किया।

अभी दिल को लेकर गया मेरे आह,

वो चलता रहा मैं पुकारा किया।'

जनाब जोश मलिहाबादी इससे भी दो पग आगे हैं। उनका प्रियतम अपने केशों को संवारते समय स्वयं भी शरमाकर अपनी आंखें झुका लेता है। वह स्वयं ही अपने केशों पर मुग्ध हो जाता है–

'गजब है ये अदा उनकी दर्मे–आराइशे–गेसू,

झुकी जाती हैं आंखें खुद–ब–खुद शर्माए जाते हैं।'

महकते हुए केशों के साथ–साथ चांद–से सुंदर मुखमंडलवाले प्रियतम पर रीझकर नई पीढ़ी के सशक्त उर्दू कवि राज इलाहाबादी उसका पता पूछ बैठते हैं–

'ये हसीं चांद सा चेहरा ये महकते गेसू

तुम कहां के हो जरा ये तो बताते जाओ।

प्रियतम के चंद्रमुख पर आने वाली शोख मुस्कान का प्रभाव इतना सर्वव्यापी है कि बगीचों की समस्त कलियां खिलखिला उठती हैं। बहादुरशाह जफर के शब्दों में–

'गुंचे का मुंह है क्या कि तबस्सुम करेगा फिर,

गुलशन में गर वो शोख–गुल अंदाम हँस पड़ा।

प्रेम में विरह वेदना और निराशा को स्वर देनेवाले उर्दू कवियों में जिगर मुरादाबादी का विशेष स्थान है। उनकी गजलों में प्रियतम की निष्ठुरता, विरह की व्याकुलता एवं पीड़ा की अभिव्यक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई है। इन्हीं भावों से ओत–प्रोत उनकी एक गजल देखिए–

'क्या बताएं इश्क जालिम क्या कयामत ढाए है,

ये समझ लो जैसे दिल सीने से निकला जाए है।

जब नहीं तुम तो तसव्वुर भी तुम्हारा क्या जरूर,

उससे भी कह दो कि ये तकलीफ क्यों फरमाए है।

हाल ओ आलम न पूछो इज्तिराबे–इश्क का,

यक–ब–यक जिस वक्त कुछ होश–सा आ जाए है।

किस तरह जाऊं किधर देखूं किसे आवाज दूं,

ए हुजूमे–नामुरादी!जी बहुत घबराए है।'

प्रेम के प्रसंगों में पत्र–व्यवहार का अपना विशेष स्थान है। प्रेमी प्रिय की अनुपस्थिति में अपनी विभिन्न भावदशाओं का चित्रांकन पत्रों के माध्यम से करता है, किंतु यदि प्रिय निष्ठुर हो तो पत्र लिखना भी सार्थक नहीं होता। बहादुरशाह जफर के शब्दों में–

'लिख के भेजें उनको हम क्या खाक खत।

बिन पढ़े कर डालते हैं चाक खत।।'

कभी–कभी पीड़ा को छटपटहट आंसू बनकर आंखों से बह निकलती है और पत्र लिखने से पहले ही कागज गीला हो जाता है। उन्हीं के शब्दों में–

'तर न कर अश्कों से कागज तर–बतर,

लिखने दे ऐ दीदा–ए–नमनाक खत।

तूने क्या लिक्खा था जो रोने लगा,

पढ़के तेरा आशिके–गमनाक खत।'

जब बात आंसुओं तक आ पहुंचती है, तब सौदा के कुछ आंसुओं का अति गर्वोक्तिपूर्ण वैचित्र्य देखिए–

'समुंदर कर दिया नाम उसका नाहक सबने कह–कहकर,

हुए थे जमा कुछ आंसू मेरी आंखों में बह–बह कर।।'

प्रेम के अतिरिक्त साकी और शराब का वर्णन भी उर्दू गजल साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। विस्तार में न जाकर, जौक की गजल के दो शेर प्रस्तुत करते हैं–

'पी भी जा जौक न कर पेशो–पसे–जामे–शराब,

लब पे तौबा, तिरे दिल में हवसे–जामे शराब।

जौक जल्दी मए–गुलरंग से भर सागरे–मुल,

लबे नाजुक को है उसके हबसे–जामे शराब।'

वास्तव में शराब वह निंदित अमृत है, जिसकी लोग बुराई तो करते हैं, किंतु हृदय में उसे पीने की अभिलाषा भी रखते हैं।

इस प्रकार उर्दू– हिंदी गजल का भाव–पक्ष इश्के हकीकी और इश्के मजाजी के रंगीन दौर से गुजर रहा था, विशेषकर उर्दू–गजलकार लौकिक प्रेम की उन भावदशाओं का इतिवृत्तात्मक चित्रण करने में लगे थे, जो वासना की गंध से गंधायित हो चली थी। दूसरे शब्दों में लोग एक ही विषय पर गजलें लिख रहे थे–जैसे बहुत से विद्यार्थी गाय पर निंबध लिख रहे हों। उनमें कोई नयापन शेष नहीं रह गया था और गजल अपने परंपरागत रूप में संकीर्णता की परिधि में बंध चुकी थी।

तभी उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली ने गजल के इतिवृत्तात्मक स्वरूप के विरूद्ध आवाज उठाई। उनका विरोध लखनवी शैली की उस निष्प्राण कविता से था, जिसमें भौंडी कल्पना और शाब्दिक खिलवाड़ के साथ ही निम्न कोटि की वासना का भी पुट रहता है।

अब युग बदल चुका था। मुस्लिम शासकों की रंगे–महफिल उजड़ चुकी थी। अतः अब प्रेम की वह मस्ती और रंगीनी आशि–माशूक की संकीर्ण परिधि में बंधी न रह सकी। मौलाना हाली ने अपने सुझावों से गजल को एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने प्रेम के भाव को उसकी संकीर्णता से बहार निकालकर भूख, निर्धनता एवं कटु यर्थाथ से पीड़ित मानव तक पहुंचाया। उन्होंने आशिक–माशूक को प्रेम को देश–प्रेम, मानव–प्रेम और आध्यात्मिक का जामा पहनाया। इस प्रकार गजल का भावों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ एवं गजल का भाव–पक्ष यथार्थवाद एवं सामाजिक चेतना से संबद्ध हो गया। इस युग के कवियों में शाद अजीमाबादी, आसी गाजीपुरी, हसरत मोहानी, फानी बदायूंनी, असगर गोंडवी, डॉ. इकबाल, साहिर लुधियानवी आदि प्रमुख हैं।

डॉ. इकबाल ने गजल को जीवन के विविध पहलुओं से जोड़ा है। वे प्रेम के महत्त्व को स्वीकारते हैं, किंतु उन्हें वासनात्मक प्रेम से घृणा है। वे उस परमेश्वर से पुजारी हैं, जो दिल में बसा हुआ है। वे कहते हैं–

'खुदी का नशेमन तेरे दिल में है,

फलक जिस तरह आंख के तिल में है।'

इसी प्रकार सामाजिक चेतना एवं नवजागरण के कवि साहिर लुधियानवी भौतिक प्रेम से जीवन की अन्य आवश्यकताओं को श्रेष्ठ मानते हैं। वे प्रेम के गायक को चेतावनी देते हुए अपनी गजल में कहते हैं।

'अभी न छेड़ मोहब्बत के गीत ए मुतरिब,

अभी हयात का माहौल खुशगवार नहीं।।'

वे संसार में व्याप्त रूढ़िगत परंपराओं, प्रथाओं, संकीर्ण विचारों एवं बुराइयों को दूर करके नई रोशनी फैलाना चाहते हैं। वे अंधानुकरण के पक्षधर नहीं हैं। वे जीवन को अपने दृष्टिकोण से जीना चाहते हैं। उन्हीं के शब्दों में–

'भड़का रहे हैं आग लबे–नग्मागर से हम।

खामोश क्या रहें जमाने के डर से हम।।

कुछ और बढ़ गए जो अंधेरे तो क्या हुआ,

मायूस तो नहीं है तलू–ए–सहर से हम।।

ले दे के अपने पास फकत इक नजर तो है,

क्यों देखें जिंदगी को किसी की नजर से हम।।

माना कि इस जमीं को न गुलजार कर सके,

कुछ खार कम तो कर गए, गुजरे जिधर से हम।'

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उर्दू–हिंदी गजल का भाव–पक्ष इश्के हकीकी और इश्के मजाजी से संपन्न रहा है और आज की उर्दू गजल जीवन के यथार्थवादी दृष्टिकोण एवं सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति बन गई है। आम आदमी के जीवन के विविध चित्रों एवं उसके द्वारा भोगी हुई पीड़ाओं का शब्दांकन आज की उर्दू गजल में प्रचुरता से हुआ है।

¼[k½ Hkk"kk dh n`f"V ls mnZw&fganh xty

भाषा को भावों की अनुगामिनी कहा गया है। अतः किसी भी विधा के स्वरूप को समझने के लिए प्रयुक्त की गई भाषा का अध्ययन करना आवश्यक है। गजल का समारंभ ईरान की भूमि पर हुआ। ईरान में फारस नामक एक प्रांत है। अतः फारस के नाम पर देश को फारस और यहां की भाषा को हिंदी कहा जाने लगा। कालांतर में ईरान पर अरब शासकों का अधिकार हो जाने से हिंदी पर अरबी भाषा की अपनी अलग लिपि भी है। थ्हंदी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि रौदकी से लेकर सादी शीराजी

तथा परवर्ती कवियों ने हिंदी भाषा में गजलें लिखी हैं। इस समय लिखी गई गजलों की भाषा समास–गुंफित एवं शब्द–विन्यास जटिल है। भारी–भरकम एवं क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से भाषा सर्वसाधारण के लिए नहीं रह गई। प्रसिद्ध हिंदी कवि वाहिदी की गजल से एक उद्धरण प्रस्तुत है–

'खलके निशान–ए–दोस्त–तलब भी कुनंद बाज,

अज दोस्त गाफिल अंद बचंदी निशां कि हस्त।'

अमीर खुसरो की गजलों में भी यही भाषा प्रयुक्त हुई है।

'हर शबम जां बर लव आयद नासए जार आबरद,

तो कुजा भी बाद–बूए जां जफाकार आबुरद'

यह वह समय था जबकि हिंदी भाषा में गजलें लिखी जा रही थीं। यह भाषा अपने में क्लिष्ट एवं जटिल है। हमारे यहां इस भाषा का प्रचार–प्रसार हिंदी मुसलमान विजेताओं के आगमन से हुआ। वे अपने साथ ईरानी संस्कृति और सभ्यता के अतिरिक्त हिंदी भाषा भी भारत भूमि पर लाए। सर्वप्रथम दक्षिण भारत के कवियों पर थ्हंदी का प्रभाव पड़ा। वहां के आरंभिक कवियों में वली सबसे प्राचीन माने जाते हैं। उनकी गजल के एक शेर में भाषा देखिए–

'तुझ लब की सिफत वाले बदख्शां सूं कहूंगा।

जादू हैं तेरे नैन गजालां सूं कहूंगा।।'

उर्दू–हिंदी मिश्रित इस गजल की भाषा पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा अधिक प्रवाहपूर्ण है। इसमें 'नैन' जैसे हिंद शब्दों का प्रयोग हुआ है, इसी प्रकार अमीर खुसरों की कुछ गजलों में एक पंक्ति हिंदी की तथा दूसरी पंक्ति हिंदी की मिलती है। उदाहरण के लिए उनकी एक प्रसिद्ध गजल की दो पंक्तियां प्रस्तुत हैं–

'शबाने हिजरां दराज चूं जुल्फों रोजे बसलत चु उम्र कोताह

सखीं पिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां।'

दिल्ली साहित्य केंद्र के कवियों ने उर्दू–हिंदी मिश्रित भाषा में गजलें लिखी हैं। इन लोगों ने पूर्ववर्ती कवियों की क्लिष्ट भाषा के स्थान पर अपेक्षाकृत सरल, प्रवाहमय एवं प्रांजल भाषा का प्रयोग किया। इसमें हिंदी और हिंदी मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है। खान आरजू की गजलों की भाषा देखिए–

'आता है हर सहर उठ तेरी बराबरी को,

क्या दिन लगे हैं देखों खुर्शीदे खाबरी को।

उस तुंद–खू सनम से जब से लगा हूं मिलने,

हर कोई मानता है मेरी दिलवारी को।'

इस समय की गजलें भाषा की दृष्टि से पहले के अपेक्षा अधिक ओजपूर्ण हैं। हिंदी वाक्य–विन्यास और व्याकरण संबंधी नियम और कठोरता से बरते गए, फिर भी भाषा में हिंदी शब्दों का प्रचलन काफी बढ़ा।

दिल्ली की तबाही के पश्चात शुजाउद्दौला एवं आशिफुद्दौला के समय में यहां के बड़े–बड़े कवि अवध को चले गए, किंतु दिल्ली की साहित्यिक धारा की उर्वरा शक्ति क्षीण नहीं हुई। इस युग के कवियों में गालिब, जौक, मोमिन और दिल्ली के अंतिम बादशाह जफर का नाम उल्लेखनीय है। मिर्जा गालिब ने हिंदी भाषा में अच्छी गजलें कहीं हैं। इन्हीं गजलों में जटिल भावों के साथ–साथ क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। उनकी एक गजल की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

'नक्श फरियादी है किस की शोखी–ए–तहरीर का।

कागजी है पैरहन हर पैकरे तस्वीर का।।

बस कि हूं गालिब असीरी में भी आतिश–जेर–पा

मूए–आतिश दीदा है हल्का मेरी जंजीर का।।'

जौक की गजल में साधारण रूप से जबान का चटखारा समकालीन कवियों की अपेक्षा अधिक है, किंतु वे भी जहां विचार में नवीनता लाने का प्रयत्न करते हैं, सफाई से दूर जा पड़ते हैं। एक उदाहरण देखिए–

'अब तो घबरा के यह कहते हैं कि मर जाएंगे,

मरके भी चैन न पाया तो किधर जाएंगे।

जौक जो मदरसे के बिगड़े हुए हैं मुल्ला,

उनको मैखाने में ले आओ संवर जाएंगे।'

जफर की गजलों की भाषा सपाट और दैनिक बोलचाल की है। दाग की गजलों में भी सपाट, दैनिक जीवन में प्रयुक्त होनेवाली मुहावरेदार तथा प्रभावोत्पादक भाषा के दर्शन होते हैं।

लखनऊ साहित्य केंद्र पर भी उर्दू–हिंदी गजल का विकास हुआ। इस युग के कवियों में मुसहफी, इंशा, जुअरत आदि कवि आते हैं। मुसहफी ने हिंदी के चार तथा उर्दू के आठ दीवान लिखे हैं। इनकी भाषा में मीर और सौदा जैसा प्रवाह है। उनकी एक गजल की चार पंक्तियां प्रस्तुत हैं–

'निगाहे लुत्फ के करते ही रंगे अंजुमन बिगड़ा,

मुहब्बत में तेरी हमसे हर इक अहले वतन बिगड़ा।

नहीं तकसीर कुछ दर्जी की इसमें मुसहफी हरगिज,

हमारी नादुरुस्ती से बदन का पैरहन बिगड़ा।

इसी प्रकार इंशा की गजलों में भी भाषा एक नया रंग है। उदाहरण के लिए निम्न

पंक्तियां देखिए—

'यह जो महंत बैठे हैं राधा के कुंड पर,

अवतार बन के गिरते हैं परियों के झुंड पर।

शिव के गले से पार्वतीजी लिपट गईं,

क्या ही बहार आज है ब्रह्मा के रूंड पर।'

जुरअत की गजलों में भी भाषा का प्रवाह और शब्दों का चमन प्रशंसनीय है। इस प्रकार इन कवियों की गजलों में सफाई, सादगी और दैनिक जीवन की भाषा का प्रयोग मिलता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली ने परंपरागत चली आ रही गजल के वर्ण्य विषय एवं भाषा में आमूल परिवर्तन लाने के लिए सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उनका विरोध लखनवी शैली की उस निष्प्राण कविता से था। जिसमें चेतना का स्तर निम्न था और स्वाभाविकता का अभाव, जिसमें भोंड़ी कल्पना और शाब्दिक खिलवाड़ के साथ ही निम्न कोटि की वासना का भी पुट रहता था। अब तक चूंकि गजल एक लोकप्रिय विधा बन चुकी थी, अतः वे गजलों में शब्द—चमत्कार के स्थान पर जनसाधारण की बोलचाल की भाषा प्रयोग करने के पक्ष में थे। उर्दू—हिंदी शब्दों के स्थान पर उन्होंने देशी शब्दों के प्रयोग पर बल दिया। वे भाषा में नयापन चाहते थे। उन्हीं के शब्दों में, 'गजल में आवश्यक है कि अन्य काव्य—रूपों की अपेक्षा सादगी और सरलता का अधिक ध्यान रखा जाए।'

मौलाना हाली ने गजल के क्षेत्र में जो क्रांति परिवर्तन किए, उनसे प्रभावित होकर अनेक कवि सम्मुख आए, जिनमें अकबर इलाहाबादी, चकबस्त, इकबाल, नज्म तबातबाई, सफी लखनवी, नजर लखनवी, मिर्जा साकि, आरजू लखनवी, शाह अजीमाबादी, आसी गाजीपुरी, हसरत मोहानी, फानी बदायूंनी, असगर गोंडवी, जिगर मुरादाबादी आदि प्रमुख हैं।

व्यंग्य और विनोद के कवि होने के कारण अकबर इलाहाबादी ने अपनी गजलों में दैनिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ उनकी दो पंक्तियां प्रस्तुत हैं–

'डराविन साहब हकीकत से निहायत दूर थे।

मैं न मानूंगा कि मूरिस आप के लंगूर थे।।'

मौलाना नज्म तबातबाई ने भाषा की दृष्टि से अपनी उर्दू गजलों में वही नरमी और मिठास भर दी है, जो हिंदी गजलों में मिलती है। उनकी गजलों में नवीनता और अर्थ–गांभीर्य के दर्शन होते हैं तथा उनमें फूहड़पन और ग्रामत्व दोष कहीं भी नहीं आने पाया है। उन्होंने अपनी गजलों में मुहावरों और दैनिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग आकर्षक ढंग से किया है।

सफी लखनवी की गजलों में भारी–भरकम हिंदी–शब्द–विन्यास का सर्वथा अभाव है। उनकी भाषा चुस्त, स्पष्ट और प्रवाहपूर्ण, मुहावरेदार तथा दैनिक बोलचाल की है। उनकी गजल के दो शेर भाषा की दृष्टि से देखिए–

'गजल उसने छेड़ी मुझे साज देना,

जरा उम्रे–रफ्ता को आवाज देना।

न खामोश रहना मेरे हमसफीरो,

जब आवाज दूं तुम भी आवाज देना।'

नजर लखनवी की गजलों में अरबी–हिंदी के मधुर शब्दों का प्रयोग मिलता है। उनकी भाषा प्रवाह, माधुर्य और लोच से परिपूर्ण है। उनकी गजल का एक शेर प्रस्तुत है–

'तअल्लुके–गुलो–शबनम है राजे उल्फत भी,

उन्हें हँसाए जहां तक हमें रूलाए बहारा।'

मिर्जा साकिब ने अपने समकालीनों की अपेक्षा कुछ क्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया है,

किंतु इस क्लिष्टता के बावजूद उनकी भाषा कभी लड़खड़ाती नहीं है। इसके विपरीत आरजू लखनवी ने अपनी गजलों में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जिसमें एक भी शब्द अरबी या हिंदी का नहीं है। गजलों के माध्यम से उन्होंने एक जनभाषा विकसित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। कुछ गजलें शुद्ध उर्दू में और कुछ शुद्ध हिंदी में कही हैं। दोनों का एक–एक शेर प्रस्तुत है–

'बुरा हो इस मोहब्बत का हुए बर्बाद घर लाखों,
वहीं से आग लग उट्ठी ये चिनगारी जहां रख दी।'
'किसने भीगे हुए बालों से ये झटका पानी,
झूमकर आई घटा टूट के बरसा पानी।'

शाद अजीमाबादी की गजलों में देशज, मुहावरेदार और सरल भाषा के दर्शन होते हैं। डॉ. फिराक गोरखपुरी ने उन्हें बीसवीं और उन्नीसवीं शताब्दी की गजलगोई को जोड़नेवाली कड़ी माना है।

आसी गाजीपुरी ने अपने गजलों में लखनवी भाषा का प्रयोग किया है। फानी बदायूंनी की गजलों की भाषा सरल, कोमल और प्रवाहपूर्ण है। अनुभूति की तीव्रता के कारण यत्र–तत्र उनकी गजलों में थ्हंदी शब्द–विन्यास भी प्रस्तुत हुआ है।

भाषा की दृष्टि से जिगर मुरादाबादी की गजलें काफी सरल हैं। भाषा के कारण ही उनकी गजलों में गेयता और प्रवाह आश्चर्यजनक रूप से प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए उनकी गजल के दो शेर प्रस्तुत हैं–

'नजर मिलाके मेरे पास आके लूट लिया,
नजर हटी थी कि फिर मुस्करा के लूट लिया।
बड़े वो आए दिलो–जां के लूटने वाले,
नजर से छेड़ दिया गुदगुदा के लूट लिया।'

इसी प्रकार परवर्ती उर्दू कवियों ने भी अपनी गजलों में सरल, मुहावरेदार एवं बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। आज उर्दू गजलों की स्थिति यह है कि जब वे उर्दू लिपि में प्रकाशित होती हैं तो उर्दू पाठक आनंद लेते हैं ओर जब देवनागरी लिपि में प्रकाशित होती हैं तो उर्दू न जाननेवाले हिंदी पाठक भी उतना ही आनंद प्राप्त करते हैं।

उर्दू–थ्हंदी गजलों की भाषा के संबंध में ध्यान देने योग्य बात उसमें लिंग– विपर्यय का पाया जाना है। उर्दू–हिंदी में प्रायः प्रेमिका के लिए पुल्लिंग शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ गालिब की गजल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं–

'आए हो कल आज ही कहते हो कि जाऊं

माना कि हमेशा नहीं अच्छा कोई दिन और।

बोसा नहीं, न दीजिए, दुश्नाम ही सही,

आखिर जबां तो रखते हो तुम गर दहां नहीं।'

पहले शेर में प्रेमिका के लिए 'आए हो' तथा 'कहते हो' पुल्लिंग शब्द का प्रयोग किया है, जिसके स्थान पर क्रमशः 'आई हो' तथा 'कहती हो' जैसे स्त्रीलिंग शब्दों का प्रयोग होना चाहिए था। दूसरे शेर में 'रखते हो' के स्थान पर 'रखती हो' का प्रयोग अधिक उपयुक्त होता।

जौक की गजलों में भी इसी प्रकार प्रेमिका के लिए स्त्रीलिंग के स्थान पर पुल्लिंग शब्द प्रयुक्त हुए हैं। जैसे–

'क्या आए तुम जो आए घड़ी दो घड़ी के बाद।

सीने में सांस होगी अड़ी तो घड़ी के बाद।।'

यह प्रवृत्ति परवर्तियों की अपेक्षा प्राचीन कवियों में अधिक पाई गई है। आज की उर्दू गजल प्रायः इस दोष से मुक्त है।

इस प्रकार भाषा की दृष्टि से उर्दू–हिंदी गजलों का अध्ययन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अपनी प्रारंभिक अवस्था में गजलें अरबी–हिंदी भाषा में कही गई हैं। थ्हंदी कवियों में अमीर खुसरो अवश्य ऐसे कवि हो गए हैं, जिन्होंने हिंदी गजलों के अतिरिक्त ऐसी गजलें भी कहीं हैं, जिनमें हिंदी का सम्मिश्रण पाया जाता है। दूसरे दौर में मुसलमानों का प्रभुत्व स्थापित हो जाने से हिंदी शब्दों का बहिष्कार करके गजलों में उर्दू–हिंदी भाषा का प्रयोग होने लगा और गजल जनसाधारण की समझ से दूर होती चली गई। तीसरे दौर में मौलाना हाली के सद्प्रयत्नों से पुनः गजलों में उर्दू–हिंदी की क्लिष्ट शब्दावली के स्थान पर हिंदुस्तानी या दैनिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग होने लगा। आज की उर्दू गजल हिंदी के काफी समीप आ गई है। इसकी लोकप्रियता का यह भी एक प्रमुख कारण है।

mnl&fgnh xty dk f'kYi&fo/kku

प्रत्येक भाषा का काव्य अनेक रूपों में वर्गीकृत होने के साथ–साथ अपने शिल्प–सौष्ठव से संपन्न होता है। वैसे तो यदि अर्थ स्पष्ट करने की क्षमता हो तो कविता का आंशिक रसास्वादन हो ही सकता है, किंतु संपूर्ण रूप से रसास्वादन के लिए काव्यशास्त्र संबंधी आधारभूत तत्त्वों का अध्ययन अति आवश्यक है। गजल उर्दू–हिंदी का एक प्रमुख काव्य रूप है, जिसका अपना एक अलग शिल्प–विधान है। उर्दू–हिंदी गजल कुछ निश्चित बहों अथवा लयखंडों पर आधारित होती है। इसके अतिरिक्त काफिया, रदीफ, मिसरा, शेर आदि गजल के प्रमुख अंग हैं।

अतः उर्दू–हिंदी गजल के शिल्प–विधान के अंतर्गत हम उर्दू–थ्हंदी में प्रयुक्त छंदों, लयखंड़ों तथा गजल के अन्य अंगों का अध्ययन निम्नवत करेंगे–

(क) उर्दू–हिंदी में हिंदी के विपरीत मात्रिक छंदों का सर्वथा अभाव है। उनके स्थान पर निश्चित वजनवाले लयखंड प्रचलित हैं, जिन्हें बह भी कहते हैं। खलील–बिन–अहमद बसरी ने इस प्रकार के पंद्रह लयखंड निर्धारित किए हैं, जिनके विनिवर्तन से विभिन्न प्रकार की बहों का जन्म हुआ है। उर्दू–हिंदी कविता में उन्नीस प्रमुख बहें मानी गई हैं, जिन पर

संपूर्ण छंदशास्त्र आधारित है। उर्दू–हिंदी छंदशास्त्र में अलग–अलग वजन के चार–पांच शब्द प्रचलित हैं, जिनको हेर–फेर कर रखने से नई बहें बन जाती हैं। उर्दू–हिंदी गजलें भी इन्हीं बहों में आबद्ध की गई हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1- gt t% इसका शाब्दिक अर्थ अच्छी 'आवाज' है। प्रारंभ में यह लयखंड अरबी भाषा में कविताओं के लिए प्रचलित था, जिसे कालांतर में उर्दू–हिंदी कवियों ने भी अपनाया। इसमें 'मुफाईलुन' शब्द की चार बार आवृत्ति होती है। उदाहरणार्थ–'खुदा जाने वो क्या पूछें, हमारे मुंह से क्या निकले'?

2- jt t% इस लयखंड में 'मुतफाईलुन' शब्द की चार बार आवृत्ति होती है, जिसे गुनगुनाते हुए उसी वजन पर कविता लिखी जा सकती है। उदाहरणार्थ–'ये जिक्र और मुंह आपका साहिब खुदा का नाम लो?'

3- jee% इस लयखंड में आबद्ध कविताएं जल्दी–जल्दी पढ़ी जाती हैं। इसमें 'फाईलातुन' शब्द की तीन आवृत्तियों के पश्चात अंत में 'फाईनुल' भी रहता है। उदाहरणार्थ–'क्या गजब है उसकी तो मर्जी है, इसको टाल दो।'

4- dkfey% इस लयखंड में 'मुतफाईलुन' शब्द की चार बार आवृत्ति होती है। यह रजज के काफी समीप है। उदाहरणार्थ– 'ये भी इक सितम है कि ख्वाब में मुझे शक्ल आके दिखा गए।'

5- okfQj% इस लयखंड में गीत की अधिकता होती है अर्थात इस लयखंड में आबद्ध कविताएं जल्दी–जल्दी पढ़ी जाती है। इसमें 'मुफाईलातुन' शब्द की चार बार आवृत्ति होती है। उदाहरणार्थ–'कि तेरे बंदे हैं मेरे मालिक जरा हमारा ख्याल रखियो।'

6- e|rnkfjd% इसका शाब्दिक अर्थ 'मिलन' है। यह लयखंड अबुल हसन अखफस द्वारा निर्मित है, जिसे कालांतर में खलील–बिन–अहमद–बसरी द्वारा निर्मित लयखंड़ों में सम्मिलित कर लिया गया। इसमें 'फाईलुन' शब्द की चार बार आवृत्ति होती है। उदाहरणार्थ–'क्या करूं मैं गिला यार ने क्या किया?'

7- e|rdkfjc% इस लयखंड में कर्ता और कर्म एक–दूसरे के पास–पास होते हैं। इसमें 'फऊलुन' शब्द की चार बार आवृत्ति होती है। उदाहरणार्थ–'हे खूने–जिगर मेहमानी तुम्हारी।'

8- eulfjg% इस लयखंड में कर्म तथा उपादान सरलता से मिल जाते हैं। इसमें 'मुस्तफेलुन–मफऊलात' शब्दों की दो बार आवृत्ति होती है। उदाहरणार्थ 'इश्क सबसे बरतर है!'

9- eDrtc% प्रस्तुत लयखंड मुनसरिह से निर्मित किया गया है। इसमें 'मुस्तफेलुन फायलुन' शब्द दो बार प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ–'किस तरह उठाया जाए हम से रंजे बेताबी।'

10- e|tkjv% यह लयखंड मुनसरिह तथा हजज नामक लयखंडों से मिलता–जुलता है। इसमें 'मफऊल फाईलातुन' नामक शब्दों की दो बार आवृत्ति होती है। उदाहरण–'हम उन तलक न पहुंचे, वो हम तलक न पहुंचे।'

11- [kjhQ% इस लयखंड पर आधारित पंक्तियां प्रवाह की दृष्टि से उत्तम होती हैं। 'फाईलातुन मुफाईलुन फाइलातुन' शब्दों को गुनगुनाते हुए प्रस्तुत लयखंड में कविताएं आबद्ध की जा सकती हैं। उदाहरण– 'नजर आती नहीं बिसाल की सूरत।

12- eTrl% खफीक नामक लयखंड से निकाले जाने के कारण मुज्तस कहलाया। इसमें 'मुफाईलुन फअलातुन' शब्दों की दो बार आवृत्ति होती है। उदाहरणार्थ–'तुम अपने शिकवे की बातें न खोद–खोद के पूछो।'

13- rohy% अपने समय में सबसे लंबा लयखंड होने के कारण वह तवील कहलाया। इसमें 'फऊलुन मुफाईलुन' की दो आवृत्तियां होती है। उदाहरणार्थ–'तुम्हारी जुदाई में लबों पर दम आया है।'

14- e|nhn% इसी उत्पत्ति तवील नामक लयखंड से हुई है। हिंदी और उर्दू की अपेक्षा अरबी में इसका अधिक प्रयोग हुआ है। इसमें 'फाऊल फेलुन' शब्दों की तीन बार आवृत्ति होती है। उदाहरणार्थ–'खुदा की बातें खुदा ही जाने, न मैं ही जानूं, न आप जानें।'

15- c l hr% इस लयखंड में आरंभिक मात्राएं खींचकर पढ़ी जाती हैं। इस लयखंड पर रचना करने के लिए 'मुस्तफेलुन फायलुन' शब्दों को दो बार गुनगुनाना चाहिए। उदाहरणार्थ–'नाहक बला में पड़ा क्यों दिल तुझे क्या हुआ?'

16- l jhv% प्रस्तुत बह शीघ्रता से पढ़ी जाने के कारण सरीअ कहलाई। इस लयखंड का रमल नामक लयखंड के सादृश्य है। इसमें 'मुस्तफेलुन मफऊलात' शब्दों की दो आवृत्तियां पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ–'संग से बुत–बुत से खुदा हो गया।'

17- djhc% प्रस्तुत लयखंड मुजारअ तथा हजज नामक लयखंडों से काफी करीब है। इसीलिए इसे करीब कहा गया। 'फाइलातुन मुस्तफेलुन' को मन में गुनगुनाते हुए इस लयखंड पर आधारित रचना लिखी जा सकती है। उदाहरणार्थ–'एतबार कुछ तो रखो।'

18 e|'kkfdy% यह लयखंड करीब नामक लयखंड से काफी मिलता–जुलता है। इसमें 'फाइलात मुफाईल' शब्दों को गुनगुनो हुए रचना की जाती है। उदाहरणार्थ–'बारे गम को उठाना ही पड़ा आह।'

19- tnhn% जदीद का शाब्दिक अर्थ है नूतन या नवीन। कुछ लोगों के अनुसार इसका निर्माण खलील–बिन अहमद के पश्चात हुआ। कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि इस लयखंड का निर्माण खलील ने सबसे अंत में किया। कुछ भी हो, अपने समय का सबसे नवीन लयखंड होने के कारण यह जदीद कहलाया। इसमें 'फाइलातुन फाइलातुन मुस्तफेतुन' को आधार माना गया है। उदाहरण–'ले गया वो बेमुरव्वत आरामेदिल।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि उर्दू–हिंदी का संपूर्ण छंदशास्त्र इन्हीं उन्नीस लयखंडों पर आधारित है। इनका अध्ययन करके अलग–अलग लयखंडों पर आधारित अलग–अलग वजन की गजलें लिखी गईं। गजल के अतिरिक्त अन्य काव्यरूपों के लिए भी इन्हीं का

आश्रय लेना पड़ता है, किंतु उर्दू–हिंदी गजल के लिए तो ये लयखंड प्राण ही हैं।

¼[k½ xty d vx

गजलों के अंग में काफिया, रदीफ, मिसरा तथा शेर का प्रमुख स्थान है। अतः गजल शिल्प का संपूर्ण विवेचन करने के लिए इसके अंगों का अध्ययन कर लेना नितांत आवश्यक है।

dkfQ;k&काफिया का तात्पर्य तुक से होता है। गजल के शेरों में रदीफ से पहले जो अंत्यानुप्रासयुक्त शब्द आते हैं और जिनका प्रयोग तुक मिलाने की दृष्टि से किया जाता है, काफिया कहलाते हैं। उर्दू–हिंदी में तुक मिलाना हिंदी की अपेक्षा सरल है, क्योंकि वहां लगा, सदा, दुआ, बजा आदि का तुक मिला हुआ मान लिया जाता है। गजल में रदीफ की अपेक्षा काफिया का महत्त्व अधिक है। एक उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट करना समीचीन होगा–

'अगर जिंदगी का सहारा न डूबे,
खुदा की कसम दिल हमारा न डूबे।
मैं तूफां से बचकर चलता तो हूं लेकिन,
अरे बदनसीबी किनारा न डूबे।'

उक्त गजल के शेरों में सहारा, हमारा, किनारा आदि शब्द काफिया के रूप में प्रयुक्त किए गए हैं।

jnhQ% गजल के शेरों के अंत में जिन शब्दों की पुनरावृत्ति की जाती है, उन्हें रदीफ कहते हैं। यह काफिया के बाद आती है और अपने स्थान पर स्थिर रहती है। गजल के पहले शेर की दोनों पंक्तियों तथा बाद के प्रत्येक शेर की अंतिम पंक्ति के अंत में जिस शब्द–समूह की आवृत्ति पाई जाती है, उसे उस गजल की रदीफ कहते हैं। उदाहरणार्थ राज बरेलवी की एक गजल के निम्नलिखित शेर द्रष्टव्य हैं–

'अदाओ–नाजों गम्रमा बदगुमानी ले के आई हैं,

हजारों आफतें जालिम जवानी ले के आई है।

खुदा का शुक्र है मेरे मोहब्बत बाअसर निकली,

हिकायत हुस्न की उनकी कहानी ले के आई है।'

इस गजल के पहले शेर की दोनों पंक्तियों तथा अगले शेर के अंत में 'ले के आई है' शब्द समूह रदीफ के रूप में प्रयुक्त किया गया है। कभी–कभी एक ही अक्षर रदीफ के रूप में प्रयोग किया जाता है और कभी–कभी आधे से अधिक पंक्ति की रदीफ होती है। एक उदाहरण देखिए।

'मुझे तो प्यार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता।

वो बुत बेजार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता।।'

प्रस्तुत गजल के उपर्युक्त शेर में कितनी लंबी रदीफ का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार कुछ गजलों में रदीफ का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया जाता है। उदाहरणार्थ ताबिश देहलवी की एक गजल की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं–

वो खुश किस्मत है जो अपनी वफा की दाद यूं पा ले।

तेरी दीवाना ही कहकर पुकारें सब जहांवाले।।

न पूछो आतिशे–गम से हुआ है हाल क्या दिल का,

यहां छाले, वहां छाले, इधर छाले, उधर छाले।

इस गजल में रदीफ कोई नहीं। 'पाले', 'वाले', 'छाले' आदि काफिया के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

इस पकार हम देखते हैं कि अधिकांश गजलों में रदीफ का प्रयोग होता है, किंतु कहीं–कहीं अपवादस्वरूप यह नहीं पाई जाती है। अंतःरदीफ गजल के लिए विशेष

अनिवार्य नहीं है।

'kj&यह अरबी भाषा का शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ केश या बाल है। जिस प्रकार किसी तरुणी की सुंदरता की अभिवृद्धि में केश सहायक होते हैं, वैसे ही किसी गजल के भाव–सौंदर्य के लिए उसके शेरों का जानकार होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में गजल रूपी सुंदरी के लिए शेर उसके केश सदृश हैं। इन्हें गजल की आधारिक इकाई भी कह सकते हैं। शेर उस ईंट के सदृश भी हैं, जिनके सहारे ढांचा है, जिसमें विचार ढाले जाते हैं।'

वास्तव में गजल का प्रत्येक शेर अपनी दो पंक्तियों में एक स्वतंत्र भावचित्र अंकित करने की सामर्थ्य रखता है। अतः हम कह सकते हैं कि शेर गजल में प्रयुक्त वह आधारिक इकाई है, जिसके संक्षिप्त आयाम एक स्वतंत्र भाव प्रकाशन की क्षमता निहित रहती है।

गजल में शेर के दो अन्य रूप भी पाए जाते हैं।

eryk गजल के पहले शेर को मतला कहते हैं। इसकी दोनों पंक्तियों में एक ही रदीफ और काफिया होता है जबकि अन्य शेरों की अंतिम पंक्ति में ही यह विशेषता पाई जाती है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी–

'कोई दिन गर जिंदगानी और है,
अपने जी में हमने ठानी और है।
आतिशे–दोजख में ये गर्मी कहां,
सोजे–गम–हाए–निहानी और है।'

उक्त गजल के पहले शेर की दोनों पंक्तियों में 'और है' रदीफ तथा 'जिंदगानी' व 'ठानी' काफिये का प्रयोग मिलता है, जबकि दूसरे शेर की अंतिम पंक्ति में ही इस नियम का पालन हुआ है। अतः पहला शेर गजल का मतला कहा जाएगा।

edrk% गजल के अंतिम शेर को मकता कहते हैं। अरबों में मकता का शाब्दिक अर्थ कटा हुआ माना गया है। गजल में यह इस बात का प्रतीक है कि यहां रचना समाप्त होती है या यह गजल का अंतिम शेर है। इसमें प्रायः कविगण या शायर अपने उपनाम या तखल्लुस का भी प्रयोग कर देते हैं। उदाहरणार्थ–

'है ये मिरा रफीक यही है मिरा शफीक,
लूं किससे वां के जाने की दिल के सिवा सलाह।
ऐ 'जौक' जा न होशो–खिरद की सहाल पर ,
दे इश्क जो सलाह वही है बजा सलाह।'

इस गजल के अंतिम शेर की प्रथम पंक्ति में 'जौक' तखल्लुस का प्रयोग किया गया है, जबकि प्रथम शेर में ऐसा नहीं है। अतः अंतिम शेर मकता कहा जाएगा। कभी–कभी शायर तखल्लुस या उपाम का प्रयोग नहीं भी करते हैं, पर ऐसा कम देखते में आता है। कुछ लोगों की यह भी मान्यता है कि मकता में भाव प्रकाशन की क्षमता अपने चरमोत्कर्ष पर होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में मकता को गजल का सर्वश्रेष्ठ शेर कहा जा सकता है।

मिसराः किसी शेर के एक चरण या एक पंक्ति को मिसरा कहते हैं। दो मिसरे मिलकर एक शेर की संरचना करते हैं। शेर के दूसरे मिसरे में रदीफ एवं काफिये का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ–

'मजा तो ये है कि होते हैं वो मुझसे खफा,
तो और आता है उन पर जियादा प्यार मुझे।'

उक्त शेर की दोनों अलग–अलग पंक्तियां दो मिसरे हैं। अंतिम मिसरे में 'प्यार मुझे' में रदीफ और काफिया का प्रयोग मतले के आधार पर किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उर्दू–हिंदी गजलों के शिल्प–विधान में बह, काफिया और रदीफ का विशेश महत्त्व है। शेर को गजल को आधारिक इकाई के रूप में माना गया है।

मतला और मकता उसके दो अलग–अलग स्वरूप हैं। चूंकि उर्दू में गजल हिंदी से आई है, अतः हिंदी गजलों का ही शिल्प–विधान उर्दू में प्रयुक्त किया गया है। उर्दू और हिंदी गजल के शिल्प–विधान में कोई उल्लेखनीय अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है।

mi l agkj

mi lgkj

उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल की पृष्ठभूति में हिन्दी–ग़ज़ल के उद्भव और विकास का अध्ययन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि अनुभूति की तीव्रता संक्षिप्तता, कथ्य की व्यापकता, संप्रषणीयता एवं प्रभावोत्पादकता के बल पर, हिन्दी ग़ज़ल जन–जीवन से जुड़ती जा रही है। हिन्दी ग़ज़ल की अवधारणा उर्दू से और उर्दू में फ़ारसी से हुई। यद्यपि फ़ारसी में ही ग़ज़ल को स्वतंत्र अस्तित्व मिला, किंतु उसका मूल उत्स अरबी काव्य ही है। अरबी कवि प्रायः अपने शासकों की प्रशस्ति में क़सीदे लिखते थे, जिसका प्रारंभिक अंश प्रेमपरक एवं श्रृंगारिक भावों से ओतप्रोत होता था। क़सीदे के इस अंश को तश्बीब कहा जाता था, जिसे फ़ारसी कवियों ने ग़ज़ल का नाम दिया। यह सत्य है कि फ़ारसी भाषा में ग़ज़ल का जन्म हुआ, परंतु उर्दू–कवियों ने इसे एक परंपरा के रूप में विकसित करके उर्दू–कविता का श्रेष्ठतम, अनुपम और सशक्त काव्य–रूप बना दिया।

हिन्दी में ग़ज़ल की इस परंपरा का श्रीगणेश तेरहवीं शताब्दी में अमीर ख़ुसरो, कबीर और उनके समकालीन कवियों द्वारा स्फुट रूप में हुआ। अमीर ख़ुसरो की अनेक ग़ज़लों का रंग हिन्दी ग़ज़ल में निहित हिन्दी की संभावनाओं को स्पष्ट करता है। कालांतर में भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र से लेकर निराला, शमशेर और दुष्यन्त तक हिन्दी की सुदीर्घ परंपरा का विकास हुआ। प्रयोगवादी कवियों में शमशेरबहदुर सिंह पर हिन्दी ग़ज़ल का गहरा रंग है। यद्यपि उनकी देवनागरी लिपि में प्रकाशित ग़ज़लें उर्दू–ग़ज़ल के अधिक समीप है, किंतु कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से इन ग़ज़लों का अपना पृथक महत्त्व है। इनकी ग़ज़लों से प्रभावित दुष्यन्त कुमार ने तो अपनी हिन्दी ग़ज़लों के माध्यम से धूम मचा दी। उन्होंने अपनी ग़ज़लों में हिन्दुस्तान के सर्वहारा वर्ग द्वारा भोगे हुए यथार्थ तथा आपातकालीन व्यवस्था के खोखले संदर्भों का सच्चा एवं सटीक चित्रण करके उसे सामाजिक चेतना से जोड़ने का सार्थक प्रयास किया है। दुष्यन्त की ग़ज़लें कहीं–कहीं फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र के बंधन से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकी हैं।

उर्दू–फ़ारसी की सामाजिक शब्दावली का प्रयोग कहीं–कहीं उनकी ग़ज़लों को दुरूह बना देता है। कालांतर में भाषा की दृष्टि से अन्य दो प्रकार के हिन्दी ग़ज़लकार सामने आए। एक तो वे जिन्होंने उर्दू–फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र उर्दू–फ़ारसी की भारी–भरकम शब्दावली से बचकर अपनी हिन्दी ग़ज़लों में केवल उन्हीं विदेशी शब्दों का प्रयोग किया, जो दैनिक बोलचाल ही हिन्दी भाषा में घुल–मिल गए हों और जिनका सही विकल्प हिन्दी में उपलब्ध न हो। दूसरी श्रेणी के वे हिन्दी ग़ज़लकार हैं, जिन्होंने विशुद्ध हिन्दी भाषा में ग़ज़ल लिखकर हिन्दी साहित्य में इस विधा को स्थायी महत्त्व देने का प्रयास किया है। आज तो हिन्दी ग़ज़ल लेखन एक फ़ैशन–सा बन गया है। प्रत्येक नगर में हिन्दी ग़ज़लकार के रूप में कई–कई नाम उभर रहे हैं। बड़ी पत्र–पत्रिकाओं के साथ–साथ क्षेत्रीय एवं लघु पत्र–पत्रिकाओं में भी हिन्दी ग़ज़लें धूमधाम से प्रकाशित हो रही हैं। इतना ही नहीं, हिन्दी ग़ज़ल की संभावनाओं से प्रभावित होकर हिन्दी ग़ज़ल से संबद्ध अनेक रचनाधर्मी अपने अलग मंच अथवा खेमे लगाकर तेवरी, अनुगीत, गीतिका आदि के प्रवर्तकों के रूप में स्थापित होने के लिए प्रयासरत हैं। यहां हम हिन्दी ग़ज़ल की संभावनाओं एवं उसके भविष्य के विषय में विचार करते हुए हिन्दी ग़ज़ल के उन्नयन में पत्र–पत्रिकाओं के योगदान पर प्रकाश डालेंगे।

(1) fgUnh xty dh lHkkouk,a ,oa mldk Hkfo";

निस्संदेह हिन्दी ग़ज़ल एक संभावनाशील विधा है। अमीर खुसरों, कबीर और भारतेंदु हरिश्चन्द्र से लेकर दुष्यन्त और उनके समकालीन कवियों तक उपलब्ध हिन्दी ग़ज़ल की परंपरा निरंतर आगे बढ़ती जा रही है। दुष्यन्त ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों से ऊपर उठकर सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं से जूझते हुए आम आदमी के दुःख–दर्द को अपनी ग़ज़लों में ढालकर जनमानस से तादात्म्य स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया। इसीलिए दुष्यन्त की ग़ज़लों के दर्पण में जन–जीवन की पीड़ा के सच्चे चित्र प्रतिबिंबित होते हैं। वास्तव में दुष्यन्त कुमार ने अपनी रचनाधर्मिता से हिन्दी ग़ज़ल को लोकप्रियता दिलाने के साथ–साथ नई दिशा एवं संभावनाएं भी प्रदान की हैं।

हिन्दी ग़ज़ल की विकास–यात्रा में दुष्यन्त कुमाल मील के पत्थर की भांति नए सभावनाशील यात्रियों का मार्गदर्शन करने में समर्थ हुए हैं। समकालीन एवं परवर्ती हिन्दी ग़ज़लकारों पर किसी न किसी रूप में दुष्यन्त के रचना–संसार का प्रभाव पड़ा है। इधर हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में स्थापित होने की संभावनाएं लिए हुए जो प्रतिभाएं उभर रही हैं, वे किसी न किसी रूप में दुष्यन्त के रचना–संसार का प्रभाव पड़ा है। इधर हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में स्थापित होने की संभावनाएं लिए हुए जो प्रतिभाएं उभर रही हैं, वे किसी न किसी रूप में दुष्यन्त के कथ्य को ही अपनी ग़ज़लों के माध्यम से अभिव्यक्त कर रही हैं। दुष्यन्त की ग़ज़लों के पीछे जो गहरी फिक्र है, सोच–समझ का जो गंभीर स्तर है, अप्रस्तुत विधान की जो खूबी है तथा संवेदना की जो सरलता और तल्खी है, उसे पूरी तरह पहचानकर नई पीढ़ी को निर्धारित बह्रों की नींव पर हिन्दी ग़ज़ल की भित्तियां खड़ी करनी चाहिए। दुष्यन्त की ग़ज़लों में निहित फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र संबंधी दोषों से बचने की आवश्यकता है। हिन्दी ग़ज़ल के नाम पर लोग उर्दू–फ़ारसी व्याकरण का प्रयोग भी खूब कर रहे हैं। उर्दू के लोक–प्रचलित शब्दों का प्रयोग तो हिन्दी ग़ज़ल में ग्राह्य है, किंतु उर्दू–फ़ारसी व्याकरण के आधार पर शब्दों का प्रयोग तो हिन्दी ग़ज़ल को स्वीकार्य नहीं है। उदाहरण के रूप में उर्दू ग़ज़लकार 'शामे–ग़म' लिखें तो ठीक हैं, लेकिन हिन्दी ग़ज़लकार को 'शाक का ग़म' या 'ग़म भरी शाम' लिखना चाहिए।

हिन्दी ग़ज़ल के कथ्य का उत्स भारतीय संस्कृति, यहां की ग्राम प्रकृति, उदार दर्शन तथा पौराणिक आख्यानों से होना चाहिए। प्रसन्नता का विषय है कि हिन्दी के ग़ज़लकार भारतीय परिवेश से चुनकर ही नई उपमाओं, नए बिंबों एवं नए प्रतीकों का प्रयोग कर रहे हैं। आधुनिक हिन्दी ग़ज़लों में साक़ी, शराब और मयखाने के स्थान पर गंगाजल में धुले तुलसी के पत्ते, पीपल की छांव, नीम के दर्द और आम आदमी की धूप से तपती संगमरमरी देह पर अमृत की भांति चमकते हुए स्वेद–कणों का उल्लेख मिलता है, जो न केवल हिन्दी ग़ज़ल की संभावनाओं को रेखांकित करता है अपितु उसके स्वर्णिम भविष्य को भी रूपायित करता है।

हिन्दी ग़ज़ल को एक स्वतंत्र और मान्य विधा के रूप में पुष्पित–पल्लवित देखने के लिए हिन्दी ग़ज़ल के छंद–विधान के विषय में गंभीरतापूर्वक चिंतन करना होगा। हिन्दी ग़ज़लकारों को एक बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि ग़ज़ल चाहे हिन्दी में कही जाए अथवा फ़ारसी में, हम इसके मूल शैल्पिक ढांचे की उपेक्षा नहीं कर सकते। ग़ज़ल की बह्र, रदीफ़, क़ाफ़िये का पूर्णतः पालन करते हुए हमें ग़ज़ल को हिन्दी में सोचना चाहिए। इतना ही नहीं, निर्धारित बह्रों के साथ–साथ हिन्दी ग़ज़ल के लिए हिन्दी छंदों की तलाश भी करनी चाहिए।

आज हिन्दी–ग़ज़ल के कथ्य एवं शिल्प को जिस आनुभूतिक और वैचारिक ऊष्मा की आवश्यकता है, वह हमारी पीढ़ी के अनेक कवियों की ग़ज़लों में देखने को मिल रही है। आज हिन्दी ग़ज़ल की लोकप्रियता इतनी बढ़ रही है कि इससे उर्दू कवि और शायर भी प्रभावित होते जा रहे हैं। उर्दू के अनेक कवियों द्वारा भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर हिन्दी रंग में लिखी जा रही ग़ज़लें, हिन्दी ग़ज़ल की संभावना एवं उसके भविष्य के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं।

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य को संस्कारित करने एवं समृद्ध बनाने के लिए हिन्दी ग़ज़ल के साहित्यिक एवं सैद्धांतिक अध्ययन–अनुशीलन की आवश्यकता है। हिन्दी ग़ज़ल की भाषिक सीमा–रेखा, रख–रखाव तथा व्याकरण पर हिन्दी–सेवी शासकीय एवं व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा एक–दो दिवसीय विचार–गोष्ठियां आयोजित करके अखिल भारतीय स्तर पर वैचारिक आदान–प्रदान होना आवश्यक है। उन गोष्ठियों में समर्थ हिन्दी ग़ज़लकारों के अरिक्तिक हिन्दी भाषाविद् भी बुलाए जाने चाहिए।

इसके अतिरिक्त प्रांतीय स्तर पर शासकीय साहित्य अकादमियों द्वारा राज्य के प्रतिष्ठित एवं प्रतिभावान हिन्दी ग़ज़लकारों की कृतियों के प्रकाशन हेतु सहायता अनुदान की व्यवस्था करके उन्हें प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए। इस संदर्भ में ज्ञान प्रकाश विवेक के हिन्दी ग़ज़ल संकलन 'धूप के हस्ताक्षर' को साहित्यानुदार देकर हरियाणा साहित्य अकादमी ने एक स्तुत्य कार्य किया है। अन्य प्रांतीय अकादमियों को भी अपने हिन्दी

ग़ज़लकारों को प्रोत्साहित एवं पूरस्कृत करना चाहिए।

इससे सार्थक लेखन की दृष्टि से हिन्दी ग़ज़ल की दशा सुधरने के साथ–साथ नए रचनाकारों को नई दिशा भी प्राप्त होगी।

कुल मिलाकर हिन्दी ग़ज़ल को नया आयाम प्रदान करने के लिए संकल्पित और समर्पित रचनाधर्मियों की एक लंबी सूची इसकी सशक्त संभावनाओं एवं स्वर्णिम भविष्य के मंगल विहान की उद्घोषणा करती है। इतना ही नहीं, हिन्दी ग़ज़ल, नई कविता, अकविता, अगीत आदि सामयिक आंदोलनों की भांति अस्थायी न रहकर हिन्दी साहित्य में एक शाश्वत विधा का रूप ग्रहण करती जा रही है। हिन्दी ग़ज़ल की संभावनाओं एवं उसके भविष्य का इससे बढ़कर प्रमाण और क्या होगा?

(2) fgUnh xt y d mUu;u e i=&if=dkvk dk ;kxnku

साहित्य के निर्माण और प्रचार–प्रसार में पत्र–पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। साहित्य की अनेक विधाओं को जन्म देकर उन्हें विकसित, परिष्कृत और समृद्ध बनाने मकें पत्र–पत्रिकाएं अधिक समर्थ होती हैं। यद्यपि रचनाकार मंचों एवं विचार–गाष्ठियों के माध्यम से भी अपनी रचनाओं को लोगों तक संप्रेषित कर सकता है, किंतु इन माध्यमों से उक्त सामग्री एक वर्ग विशेष या क्षेत्र विशेष तक ही पहुंचाई जा सकती है। व्यापक स्तर पर साहित्य का प्रचार–प्रसार पत्र–पत्रिकाओं के द्वारा ही हो सकता है, क्योंकि पत्र–पत्रिकाएं सामान्य पाठक को कम मूल्य में अधिकाधिक सामग्री देने के साथ–साथ उनकी नियमित पठनवृत्ति को भी प्रोत्साहित करती हैं। पत्र–पत्रिकाओं के रूप में रचनाकारों को एक स्वतंत्र प्रकाशन मंच प्राप्त होता है, जहां वे अनेक साहित्यिक समस्याओं को सुलझाकर साहित्य जगत में नई मान्यताएं स्थापित कर सकते हैं।

प्रचार–प्रसार की दृष्टि से पत्र–पत्रिकाओं के प्रायः तीन स्तर होते हैं। पहले स्तर की वे पत्रिकाएं होती हैं, जिनके पाठक देश–विदेश तक फैले रहते हैं। इनमें प्रायः प्रतिष्ठित लेखकों की ही रचनाएं देखने को मिलती हैं। इन पत्र–पत्रिकाओं पर प्रायः पूंतीपतियों का ही स्वामित्व होता है, किंतु इनका संपादन विभाग वैतनिक एवं साहित्यक मर्मज्ञ लोगों के

हाथ में होने से पाठकों को स्तरीय सामग्री पढ़ने को मिलती है। लेखकों को भी आकर्षक पारिश्रमिक मिलता है, जिससे उन्हें अपने लेखन को निखारने तथा परिष्कृत करने की प्रेरणा मिलती है।

दूसरे स्तर की पत्र–पत्रिकाएं मध्यम श्रेणी की होती हैं। यह पत्र–पत्रिकाएं प्रांतीए स्तर पर बड़े–बड़े नगरों से प्रकाशित होती हैं। इनमें साहित्यिक सामग्री तो स्तरीय होती है, किंतु पर्याप्त पूंजी के अभाव में वांछित साज–सज्जा एवं प्रचार–प्रसार न हो पाने के कारण इनका पाठक वर्ग सीमित होता है। प्रायः इन पत्र–पत्रिकाओं में लेखकों के लिए पारिश्रमिक या तो आंशिक रूप में या बिल्कुल नहीं होता है। इनमें प्रतिष्ठित लेखकों के साथ संभावनाशील रचनाकारों की सार्थक रचनाएं भी प्रकाशित होती हैं।

तीसरे स्तर की पत्र–पत्रिकाएं जनपदीय अथवा आंचलित क्षेत्रों से प्रकाशित होती हैं। इन्हें लघु पत्र–पत्रिकाएं भी कहते हैं। इनके व्यवस्थापकों के पास प्रायः पूंजी का अभाव रहता है। छोटे–मोटे विज्ञापनों तथा अपने लेखकों से प्राप्त वार्षिक सदस्यता राशि के सहारे इन्हें प्रकाशन जगत में संघर्ष करना पड़ता है। कभी–कभी साधनों के अभाव में इनका प्रकाशन अनियमित होते–होते स्थगित या बंद भी हो जाता है। इन लघु पत्र–पत्रिकाओं में क्षेत्र विशेष के नवोदित रचनाकारों की रचनाएं प्रकाशित करके उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है। इन पत्र–पत्रिकाओं के संपादकों को यथासंभव स्तर बनाए रखने के लिए रचनाओं के चयन और संपादन में पर्याप्त श्रम करना पड़ता है।

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य के विकास, समृद्धि एवं स्वरूप निर्माण में पत्र–पत्रिकाओं का बहुत महत्त्व रहा है। इन पत्र–पत्रिकाओं ने हिन्दी ग़ज़ल साहित्य के साथ–साथ अनेक हिन्दी ग़ज़लकारों को भी जन्म दिया। इनमें जहां हिन्दी ग़ज़ल साहित्य को नई संभावनाएं मिलीं, वहीं साहित्य जगत में एक स्वतंत्र विधा के रूप में मान्यता भी प्राप्त हुई।

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य के प्रचार–प्रसार एंव विकास में रुचि रखनेवाली पत्रिकाओं में टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, बंबई से प्रकाशित होती रही 'सारिका' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पहले इसकी प्रकाशन अवधि मासिक थी। इसके संपादक श्री कमलेश्वर थे। यह वह समय

था, जब दुष्यन्त कुमार हिन्दी ग़ज़ल के लिए उर्वर भावभूमि तैयार कर रहे थे। वे आपातकालीन स्थिति में आम आदमी के जीवन की व्यथा कथा को अपनी ग़ज़ल के माध्यम से अभिव्यक्त करके इन्हें जनमानस तक संप्रेषित कर रहे थे। दुष्यन्त कुमार तथा अन्य समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों की रचनाएं स्फुट रूप में 'सारिका' में प्रकाशित होती थीं, क्योंकि यह एक कथा–प्रधान मासिक पत्रिका थी। 30 दिसंबर, 1975 ई. को दुष्यन्त के दिवंगत होने के पश्चात 'सारिका' ने मई, 1976 में दुष्यन्त कुमार स्मृति अंक का प्रकाशन किया, जो हिन्दी ग़ज़ल साहित्य के विकास एवं दिशा–निर्देश की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसमें दुष्यन्त के पुरजन एवं परिजन साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत अनेक संस्मरणों के साथ–साथ उनकी चुनी हुई उत्कृष्ट ग़ज़लें भी प्रकाशित की गईं। हिन्दी ग़ज़ल से जुड़े हुए लोगों के लिए यह अंक एक संग्रहणीय अंक बन गया। इस अंक की व्यापक लोकप्रियता से प्रभावित होकर 'सारिका' ने प्रत्येक अंक में प्रायः दो या तीन ग़ज़लों का नियमित प्रकाशन आरंभ कर दिया। कालांतर में 'सारिका' का प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली से होने लगा। इसके संपादक कन्हैयालाल नंदन थे और यह पाक्षिक रूप से प्रकाशित होती थी। 'सारिका' के संपादन विभाग में श्री अवधनारायण मुद्गल और महेश दर्पण जैसे हिन्दी ग़ज़लकार होने के कारण पत्रिका के माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल के विकास को बहुमुखी आयाम मिलते जा रहे हैं। दुष्यन्त कुमार के अतिरिक्त 'सारिका' के अंकों में पाठकों का सर्वश्री महेश मंजर, देवेन्द्र गौतम, राम प्रसाद बिस्मिल, जयपाल नांगिया, आलम खुर्शीद, इक़बाल अंजुम, तारादत्त निर्विरोध, हरजीत सिंह, निंरकारदेव सेवक, बशीर, फ़ारूकी, मेहसर अफ़गानी, ज़फर सिरोंजवी, पीयूष अवस्थी, हरीश निगम, कलीम आनंद, जहीर, क़ुरैशी, अनिल उदित, अनिल खम्पारिया, शिवओम, अम्बर, डॉ.उर्मिलेश, कुंअर बेचैन, ज्ञानप्रकाश विवेक, शेरजंग गर्ग, भवानी शंकर, अवधनारायण मुद्गल, सुभाष पुरी, कृष्णकुमार खन्ना, प्रेम सक्सेना, अग्निवेश शुक्ल, ओंकार गुलशन, रऊफ़ परवेज़, नारायणलाल परमार, ओम प्रभाकर, माधुरी शुक्ल, रामबहादुर सिंह भदौरिया, रामकुमार कृषक, विट्ठलभाई पटेल, सुनील मिश्र, बशीर बद्र गोविंद व्यास, लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, सत्य नारायण, शिवप्रसाद

बागड़ी, हनुमंत नायडू, माधव कौशिक तथा अन्य सुपरिचित ग़ज़लकारों की रचनाएं मिल सकती हैं।

बंबई से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक 'धर्मयुग' में यदा–कदा एक–दो अच्छी हिन्दी ग़ज़लें देखने को मिलती रही हैं। 'धर्मयुग' के 16 नवंबर, 1980 के अंक में हिन्दी ग़ज़ल के कथ्य एवं शिल्प के संबंध में सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत करने वाले डॉ. राजेन्द्र कुमार तथा धनंजय वर्मा के प्रकाशित लेख काफी उपयोगी हैं। इस पत्रिका के संपादक डॉ. धर्मवीर भारती थे।

दिल्ली से प्रकाशति होने वाले 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में कभी–कभी उत्कृष्ट हिन्दी ग़ज़लें स्फुट रूप में देखने को मिलती रही हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सूर्यभानु गुप्त, चन्द्रसेन विराट, कुंअर बेचैन, भवानी शंकर, शेरजंग गर्ग सजीवन मयंक, बशीर अहमद मयूख, अमरनाथ श्रीवास्तक, श्याम बेबस, निर्मल विनोद आदि ग़ज़लें काफी प्रभावशाली हैं। पत्रिका के 29 जनवरी, 1978 के अंक में प्रकाशित प्रो. ख्वाजा अहमद फारूकी, डॉ. नगेन्द्र, रिफ़अत सरोश के लेख हिन्दी ग़ज़ल के संबंध में उपयोगी जानकारी प्रस्तुत करनेवाले हैं। उस समय पत्रिका का संपादन श्रीमती शीला झुनझुनवाला कर रही थीं। पत्रिका का सहयोगी पत्र दैनिक हिन्दुस्तान भी कभी–कभी अपने साहित्यिक परिशिष्टों में हिन्दी ग़ज़लें प्रकाशित करता है।

दिल्ली से ही प्रकाशि 'कादम्बिनी' मासिक पत्रिका भी यदा–कदा हिन्दी ग़ज़लें प्रकाशित करती है। वर्ष 1979 में 'कादम्बिनी' ने हिन्दी ग़ज़ल को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से एक सम्मिलित गीत–ग़ज़ल प्रतियोगिता का आयोजन किया था, जिसमें श्री ओंकार गुलशन तथा सुश्री राजकुमारी रश्मि की हिन्दी ग़ज़ल पुरस्कृत हुई थीं। पत्रिका के प्रकाशित अंकों में रामावतार चेतन, प्रकाश जैन, अनामिका आदि की हिन्दी ग़ज़लें देखी जा सकती हैं। पत्रिका के पूर्व संपादक श्री राजेन्द्र अवस्थी एक साहित्यिक अभिरुचि–संपन्न व्यक्तित्व के स्वामी थे।

दिल्ली प्रेस द्वारा प्रकाशित 'सरिका' और 'मुक्ता' के अंकों में यद्यपि ग़ज़ल या हिन्दी

ग़ज़ल में नाम से रचनाओं का प्रकाशन नहीं होता, किंतु अन्य शीर्षकों से रोमानी ग़ज़ल शैली में रचनाएं प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। इन पत्रिकाओं का संपादन एवं स्वामित्व श्री विश्वनाथ के हाथ में रहा है।

दिल्ली प्रकाशन द्वारा डॉ. मस्तराम कपूर के संपादन में 'दिल्ली' मासिक पत्रिका का प्रकाशन होता रहा है। इसके पुराने अंकों में श्री निरंकारदेव सेवक, अजय प्रसून, हनुमंत नायडू आदि की हिन्दी ग़ज़लें पढ़ने को मिल सकती हैं। आजकल यह पत्रिका दिखाई नहीं देती है।

प्रकाशन विभाग दिल्ली से प्रकाशित 'आजकल' मासिक पत्रिका भी हिन्दी ग़ज़लों एवं उससे संबंधित सैद्धांतिक सामग्री के प्रस्तुतीकरण में रुचि लेती है। इस पत्रिका ने मई, 1981 में हिन्दी ग़ज़ल विशेषांक प्रकाशित किया, जिसमें त्रिलोचन शास्त्री, रामावतार त्यागी, कुंअर बेचैन, सरस्वती कुमार दीपक, शेरजंग गर्ग, धनंजय सिंह, भवानी शंकर, कलीम आनंद, नरेन्द्र वशिष्ठ, तारादत्त निर्विरोध आदि हिन्दी ग़ज़लें संकलित हैं। इसी अंक में ग़ज़ल के संबंध में सुश्री माज़दा असद, विनय संकोची, सवाई सिंह शेखावत, गोपाल कृष्ण कौल आदि के समालोचनात्मक लेख तथा श्री महेश दर्पण द्वारा आयोजित परिचर्चा का प्रकाशन किया गया है।

नई दिल्ली नगरपालिका द्वारा पिछले बारह वर्षों से 'पालिका समाचार' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन होता आ रहा है। इसके संपादन विभाग में श्री श्याम सुंदर शर्मा एवं इनके सहयोगी श्याम निर्मम साहित्यिक रूचि–संपन्न व्यक्ति हैं। इस पत्रिका में कभी–कभी एक–आधा हिन्दी ग़ज़ल ईद के चांद की भांति दिखाई दे जाती है। पत्रिका के फरवरी, 1984 के अंक में प्रस्तुत शोधार्थी द्वारा आयोजित 'हिन्दी ग़ज़लःदशा और दिशा' नामक परिचर्चा प्रकाशित हुई है, जिसमें संबंधित विजय पर श्री शिवओम अंबर, जहीर कुरैशी, विद्यासागर वर्मा, डॉ. उर्मिलेश, भवानी शंकर के तथ्यात्मक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। दिल्ली से प्रकाशित 'मधुप्रिया' तथा बंबई से प्रकाशित 'नवनीत' एवं 'माधुरी' में भी हिन्दी ग़ज़लों का स्फुट रूप में प्रकाशन होता रहता हैं।

हिन्दी ग़ज़ल के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य ये वाराणसी से डॉ. सत्येन्द्र ज़फ़ा के संपादन में 'निर्झरिणी' मासिक पत्रिका का प्रकाशन अक्तूबर, 1977 से आरंभ हुआ। डॉ. ज़फ़ा यद्यपि भौतिक विज्ञान के शोध विद्वान तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक हैं, फिर भी वे हिन्दी ग़ज़ल एवं नई कविता के प्रति समर्पित साधक हैं। इस पत्रिका के माध्यम से सर्वश्री नज़ीर बनारसी, कतील शिफ़ाई, शिवराज सिंह, सलीम शहजाद, पी. पयाम, ईश्वर सरन नज़्मी सलोनवी, दुश्मन जौनपुरी, प्रो. रामचन्द्र वर्मा, सुकोमल निज़ामुद्दीन साक़िब, ज़फ़ा बनारसी, हज़ार लखनवी, लंठ आज़मगढ़ी, अशोक कुमार अज्ञात, जयनारायन बुधवार, सुरेन्द्र विमल, हैरत पहाड़पुरी, सूर्यभानु गुप्त, भारत यायावर, डॉ. रामजीत, चन्द्रदेव सिंह, नवीन त्यागी, पूरण निर्दोष, सजीवन मयंक, डॉ. हनुमंत नायडू, शिवकुमार गुप्त पराग, नीरज, अजय प्रसून, प्रेमवार वर्टनी, जहीर कुरैशी, श्याम अग्रवाल, मसऊद हयात, दिल लखनवी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, हरिओम, सिंहल, बेढब बारसी, असलम मीर, बेकल उत्साही, अहद प्रकाश, शंकरलाल ताम्बी, विजयकुमार सिंहल आदि प्रतिष्ठित एवं संभावनाशील हिन्दी ग़ज़लकारों की रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। पत्रिका का जून–जुलाई, 1979 अंक हिन्दी ग़ज़ल विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया, जिसमें पी. पयाम तथा फ़िराक़ गोरखपुरी के लेख हिन्दी ग़ज़ल की विकास–यात्रा तथा शिल्प पर शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करनेवाले हैं। व्यवस्था एवं साधनों के अभाव में यह पत्रिका अपनी अल्पायु ही में बंद हो गई, किंतु इसके संपादक महोदय इसे नए रूप में पुनः प्रकाशित करने की योजना बना रहे हैं।

हिन्दी में व्यंग्यपरक ग़ज़लों के प्रकाशन तथा प्रोत्साहन की दृष्टि से बंबई से प्रकाशित 'रंग चकल्लस' द्वैमासिक पत्रिका ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। पहले इसके संपादक सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार श्री रामावतार चेतन थे, बाद में इनके सुपुत्र श्री असीम चेतन इसका संपादन कार्य कर रहे हैं। 'रंग चकल्लस' के अंकों में हास्य–व्यंग्य कथाओं के अतिरिक्त राजेन्द्र पांडेय, सजीवन मयंक, विश्व–बंधु द्विवेदी, अनिल खम्पारिया, रामेश्वर वैष्णव, सूर्यकुमार पांडेय, गिरिराजशरण अग्रवाल, प्रदीप चौबे, वीरेन्द्रकुमार जैन निरंकुश,

हरिओम बेचैन, कृष्णानन्द चौबे तथा प्रस्तुत शोधार्थी की व्यंग्यपरक ग़ज़लें देखी जा सकती हैं।

कलकत्ता से प्रकाशित 'रविवार' साप्ताहिक में श्री विजयकिशोर मानव, जहीर कुरैशी, भवानी शंकर आदि हिन्दी ग़ज़लकारों की रचनाएं यदा–कदा पढ़ने को मिलती हैं।

नई दिल्ली से प्रकाशित होनेवाली 'योजना' पत्रिका ने गिरिमोहन गुरु, केदारनाथ कोमल तथा अन्य हिन्दी ग़ज़लकारों की रचनाएं प्रकाशित की हैं। नई दिल्ली से ही पद्मश्री चिरंजीत के संपादन में 'सर्वप्रिय' मासिक पत्रिका का प्रकाशन होता आ रहा है। इसके 1981–82 के अंकों में हिन्दी ग़ज़ल बनाम उर्दू ग़ज़ल के संबंध में तथ्यपरक सामग्री प्रस्तुत की गई है। पत्रिका में हिन्दी ग़ज़लें भी बहुलता से प्रकाशित होती रहती हैं। दिल्ली की अन्य पत्र–पत्रिकाओं में 'सैनिक समाचार', 'सार्थक', 'सुषमा', 'पांचजन्य' ने भी हिन्दी ग़ज़लों के लिए प्रकाशन मंच उपलब्ध कराया है।

हैदराबाद से प्रकाशित 'कल्पना' मासिक में दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें और इसी परिप्रेक्ष्य में उनका आत्मकथ्य प्रकाशित हुआ था। बंगलौर से प्रकाशित 'कंचन काबेरी' नामक मासिक पत्रिका में अनेक संभावनाशील ग़ज़लकारों की रचनाओं को स्थान दिया जा रहा है।

पटना से श्री शंकर दयाल सिंह के संपादन में प्रकाशित 'मुक्त कंठ' मासिक पत्रिका द्वारा हिन्दी ग़ज़ल विशेषांक निकालकर हिन्दी ग़ज़लों के साथ–साथ संबंधित विषय पर सारगर्भित सामग्री प्रस्तुत की जा चुकी है। पटना से भी बालक प्रकाशन द्वारा 'आनंद डाइजेस्ट' मासिक का प्रकाशन कुछ वर्ष पूर्व ही आरंभ हुआ है। इसमें यदा–कदा हिन्दी ग़ज़लें पढ़ने को मिल जाती हैं। 'बिहार पुलिस' नामक पत्रिका हिन्दी ग़ज़लकारों को प्रोत्साहित करती रहती है।

लखनऊ से 'उत्तर प्रदेश', 'मानवी, 'नींव के पत्थर', 'युवा रश्मि', 'अवध पुष्पांजलि', 'ताम्रपणी', 'सुकवि–विनोद' आदि पत्र–पत्रिकाएं भी हिन्दी ग़ज़ल साहित्य से प्रचार–प्रसार में लगी हुई हैं। अन्य सभी लघु पत्रिकाएं हैं, जो लघु विज्ञापनों एवं वार्षिक सदस्यता राशि

के बल पर संघर्षरत हैं। इनके पाठक प्रायः साहित्यिक वर्ग से संबद्ध हैं।

अनेक दैनिक समाचारपत्र अपने साहित्यिक परिशिष्टों में हिन्दी ग़ज़लें प्रकाशित करते रहते हैं। इन समाचार–पत्रों में दैनिक 'जागरण', 'दैनिक 'आज', 'स्वतंत्र भारत', दैनिक 'नई दुनिया', दैनिक 'भाष्कर',दैनिक 'वीर अर्जुन', हिन्दी 'ट्रिब्यून', 'अमर उजाला', 'सन्मार्ग', 'नवभारत टाइम्स', 'अमृत प्रभात' आदि प्रमुख हैं, जो देश के विभिन्न भागों से प्रकाशित होकर जनसाधारण तक पहुंचते हैं, इनमें प्रकाशित होनेवाले मिले–जूले हिन्दी ग़ज़लकारों में कूंअर बेचैन, जहीर कुरैशी, माहेश्वर तिवारी, श्याम प्रकाश अग्रवाल, विद्यासागर वर्मा, राजेश मेहरोत्रा, शिव ओम अम्बर, मृदुल तिवारी, निरंकारदेव सेवक, गीतारानी पांडेय, पवन बाथम, अजय प्रसून, सूर्यभानु गुप्त, सत्येन्द्र कुमार रघुवंशी, अखिलेश अंजुम, प्रमोद तिवारी, पंकज परदेशी, प्रशान्त उपाध्याय, रामेश्वर शुक्ल अचंल, डॉ. नरेश, संजीव भारद्वाज, संतोष पांडेय, रंजना सक्सेना आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कानपुर से दैनिक 'जागरण' की सहयोगी मासिक पत्रिका 'कंचन प्रभा', लखनऊ से 'स्वतंत्र भारत' की साप्ताहिक पत्रिका 'स्वतंत्र भारत सुमन' तथा वाराणसी से 'आज' की सहयोगी पत्रिका पाक्षिक 'अवकाश' का प्रकाशन भी आंरभ हुआ। इनमें से 'कंचन–प्रभा' तथा 'स्वतंत्र भारत सुमन' व्यवस्था एवं साधनों के अभाव में बंद हो चुकी हैं, किंतु 'अवकाश' के माध्यम से आज भी यदा–कदा अच्छी हिन्दी ग़ज़लें देखने को मिल जाती हैं।

विगत एक–दो वर्षों से अलीगढ़ से प्रमोद कुमार के संपादन में 'हिन्दी ग़ज़ल तथा रमेश राज के संपादन में 'तेवरी' नामक हिन्दी ग़ज़ल को समर्पित, किंतु संघर्षरत पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ। इनके अतिरिक्त 'जर्जर कश्ती' तथा 'संक्रांति' नामक लघु पत्रिकाएं भी अलीगढ़ से आरंभ हुई हैं, जिनमें हिन्दी ग़ज़लों के प्रकाशन हो उचित प्रतिनिधि ात्व प्रदान किया गया है। हाथरस से बालकृष्ण गर्ग के संपदान में प्रकाशित 'संगीत' मासिक में भी कभी–कभी संगीत–संयोजन योग्य हिन्दी ग़ज़लें पढ़ने को मिलती हैं।

लघु एवं मध्यम स्तरीय साप्ताहिक पत्र–पत्रिकाओं में निर्मल पब्लिकेशंस भोपाल से 'हिन्दी हेराल्ड़', इंदौर से 'प्रभात किरण', रुड़की से 'ग्रामीण जनता', जयपुर से 'लोक

शिक्षक', उन्नाव से 'पथिक', हरदोई से 'हरदोई समाचार', 'यह समता राज', विप्लवी मज़दूर' आदि का प्रकाशन हो रहा है। देश के समस्त जनपदीय एवं आंचलित स्तरों से अनेकानेक साप्ताहिक, मासिक एवं अनियतकालीन पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं, जिनके माध्यम से नवोदित एवं संभावनाशील हिन्दी ग़ज़लकारों को प्रोत्साहन प्राप्त होता रहता है।

अन्य पत्र–पत्रिकाओं में सुल्तानपुर में 'नए पुराने', मिर्जापुर से 'अनामिका', 'अर्पण', आगरा से 'युवक', बंबई से 'जनसभा', उदयपुर से मधुमती', चंड़ीगढ़ से 'जागृति', इंदौर से 'ऋतुचक्र', 'उन्नाव से 'अनुमेहा' तथा 'सानुबंध', गाजियाबाद से 'सर्वोदय विश्व–वाणी' व 'राष्ट्र–माणिक्य', लोक–संपर्क विभाग हिमाचल प्रदेश प्रशासन शिमला से 'हिमप्रस्थ', कलकत्तासे से 'सीप', कानपुर से 'कविप्रिया', 'निकष', 'प्रतिशीर्षक', रामपुर से 'मार्गदीप', जनकपुर रोड से 'अम्बालिका', मुज्ज़फ़रपुर से 'बेला', देहरादून से 'नवोदित स्वर', जीन्द, हरियाणा से 'विशाखा', इंदौर से 'लघु आघात', विदिता से 'क्रमश', दिल्ली से 'मंजुली दर्पण' तथा शाहजहांपुर से 'राही' के नाम उल्लेखनीय हैं। पाठकों के लिए अन्य सामग्री के साथ–साथ हिन्दी ग़ज़लों भी इन पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती हैं, किंतु साधनों के अभाव में इनमें से 'नए–पुराने, 'कविप्रिया' आदि पत्रिकाएं बदं हो चुकी हैं।

हरदोई से एक संभावनाशील त्रैमासिक कविता पत्रिका 'काव्योत्कर्ष' का प्रवेशांक अप्रैल, 1979 में प्रकाशित हुआ था, जिसमें कुछ स्तरीय हिन्दी ग़ज़लें देखने को मिलीं, किंतु व्यवस्था और सहयोग के अभाव में इसे भी दम तोड़ना पड़ा।

इनके अतिरिक्त कुछ स्फुट पत्र–पत्रिकाएं भी देश के विभिन्न भागों से प्रकाशित होकर हिन्दी ग़ज़ल को पाठकों तक पहुंचाने का गुरुत्तर भार वहन कर रहीं हैं। इनमें 'हिन्दी एक्सप्रेस', 'जनमोर्चा', 'श्रीवर्षा', 'इतिवृत्त', 'चतुर श्रेणी', 'ब्लिट्ज', 'विश्ववीणा', 'लेखनी, 'वनप्रिया','सुपर ब्लेज', 'हिन्दी करेन्ट,'आरती, 'वातायन', 'उदीषा' इत्यादि प्रमुख हैं।

हिन्दी में बाल ग़ज़लें लिखने का जो प्रयोग चल रहा है, उसे यदा–कदा दिल्ली से 'पराग', इंदौर से 'कुटकुट', मथुरा से 'बाल–पताका' तथा कानपुर से 'बाल साहित्य–समीक्षा'

व 'बाल–दर्शन' जैसी मासिक बाल–पत्रिकाएं समर्थन प्रदान कर रही हैं।

इस प्रकार हिन्दी ग़ज़ल साहित्य के उन्नयन में पत्र–पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विशेष रूप से दुष्यन्त के बाद से तो पत्र–पत्रिकाओं में हिन्दी ग़ज़लों के प्रकाशन की धूम मच गई।

इसके अतिरिक्त अनेक परिचर्चाएं आयोजित की गई, जिनके माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल के कथ्य और शिल्प के संबंध में विद्वानों एवं प्रतिष्ठित ग़ज़लकारों द्वारा नई मान्यताएं स्थापित की गई। नए एवं संभावनाशील रचनाकारों को अध्ययन एवं मनन के नए आयाम उपलब्ध हुए और आज हिन्दी ग़ज़लकारों की एक लंबी सूची हिन्दी ग़ज़ल साहित्य की श्रीवृद्धि करने में सन्नद्ध है। यही उपलब्धियां हिन्दी ग़ज़ल की संभावनाओं एवं उसके उज्ज्वल भविष्य की प्रतीक हैं।

'kks/k lkjka'k

igyk v/;k; &

fgnh xty dk l)kfrd i{k ¼1975 l vc rd ½

हिंदुस्तान ही नहीं अपितु दुनियां की कई देशो में गजल साहित्य की गौरवशाली परम्परा रही है। हिंदुस्तान में सदियों से गजल सभी वर्गों को प्रभावित करती आ रही है। गजल ने धीरे धीरे काल और परिवेश के अनुसार स्वं को आम बोलचाल की भाषा में ढाल लिया है। जिससे गजल को खासो –आम ने सर आँखों पर बिठाया है। य।पि गजल जीवन की सभी विषयो पर अपना हस्ताक्षर करता है ,तथापि आम आदमी की पीड़ाओ, कुंठाओ, और सामाजिक ,राजनैतिक ,आर्थिक विद्रुप्तावों पार जिस शिद्दत के साथ स्वतन्त्रोत्तर काल में गजले नज्मे कही गयी ,उससे पहले नहीं । दुष्यंत कुमार की गजल संग्रह श्साये में ध ूप श्ने देश–विदेश में नए कीर्तिमान स्थापित किये है ,इसी परम्परा में आज देश भर के सैकड़ो रचनाकार गजले कह रहे है, और पूरी शिद्दत के साथ कह रहे है । हिंदी साहित्य में गजल कहने वालो की संख्या में खासी वृद्धि हुई है,यही कारण है की आज गजल पर पी.एच.डी.और डी .लिट. जैसे शोध प्रबंध लिखे जा रहे है और लिखे जा चुके है।

nljk v/;k; &

समकालीन गजल के प्रमुख हस्ताक्षर . (1975 से अब तक)

य।पि हिंदी साहित्य में गजल लेखन और गजलगोई की परम्परा प्राचीन है। तथापि ये परिपुष्ट परम्परा को ले कर हिंदी गजल की परिपूर्णता और दिनों दिन अग्रसर हो रही है । समकालीन हिंदी गजल लेखन लगभग 1974–75 में शुरू हुआ था , जबकि हिंदी कविता में गजल के नए रंग अमीर खुसरो एवं कबीर के काव्य में भी देखने को मिलते है ,तत्पश्चात तो मनो गजल काव्य विधा का मनो एक बाढ़ ही आ गयी । भारतेंदु हरिश्चंद्र ,सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ,शमशेरसिंह ,त्रिलोचन ,बलबीर सिंह 'रंग', शम्भूनाथशेष, हरीकृ

ष्ण प्रेमी,चिरंजीव 'नीरज',रामावतार त्यागी आदि आदि ने इस परम्परा को सम्मान पूर्वक गति देने में अविस्मर्णीय भूमिका का निर्वहन किया है ,य।पि उक्त परम्परा में परीपुष्ठ्ता हिंदी गजल में दुष्यंत कुमार में ही आयी उनका स्पष्ट विद्रोह ,क्रांति ,चुनौती आम आदमी की बदहाली का दृश्य ,जो दुष्यंत कुमार ने खींचा है ,उससे ही उनके गजल एवं कलम की ताकत को आँका जा सकता है ,उनकी युग प्रवर्तिक रचना के कारण ही संभवतया उन्हें समकालीन हिंदी गजल का सूत्रधार और नए युग का सूत्रपात माना गया ।

'बहर' फिर 'काफिये' और उसके बाद 'रदीफ' हिंदुस्तान में गजल की ऐसी ही परिपक्व जमीन है जहाँ पर आज मुन्नवर राणा ,निदां फाजली,डॉ.जानकी प्रसाद,राहतइन्दौरी,बकौल कुमार 'बरतर',डॉ.कुंवर 'बेचौन' आर.पी.शर्मा,डॉ.दरवेश भारती 'महर्षि',डॉ.रामदशरथ मिश्र ,डॉ.शेरजंग गर्ग, डॉ.अमेन्द्र,कमलेश्वर, माणिक वर्मा, पुरुषोत्तम 'यकीन',अदम 'गोंडवी' डॉ.शम्भुनाथ तिवारी,दीक्षित दनकौरी,जाहिर कुरौशी आदि गजलकारों ने इस गजल की परम्परा को पुर जोर तरीके से आगे बढ़ाया है ,इनकी गजलों में आम बोलचाल की भाषा में आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिल रही है इसी परम्परा में पत्र–पत्रिकाओ ने भी अपना स्थाई स्तम्भ के रूप में गजल को स्थान दिया है ,'दीक्षित दनकौरी' ने 'गजल दुष्यंत के बाद' में समकालीन हिंदी गजल १६७५ के बाद लगभग सभी गजलकारो की गजलों का संकलन किया है ।

rhljk v/;k;

ledkyhu xty e: thou n'ku vkj çe[k çofr;k -

हिंदी साहित्य के 1936 के बाद में प्रगतिशील आन्दोलन ने हिंदी और उर्दू अदब के साहित्यकारों को अतीत की रौशनी में भविष्य सोचने और समझने का मार्ग प्रशस्त करता है उस मार्ग का एक पड़ाव समकालीन हिंदी गजल बनें जहाँ से अनेकानेक रस्ते फूटे और अपनी–अपनी मंजिल की तलाश में गजलगोई चलती रही, दुष्यंत कुमार के पश्चात् एक पूरा का पूरा लब्ध प्रतिष्ठित गजलकारों का समूह ,मनीषी विद्वानों साहित्यकारों का गजल चिंतन का बेबाक काफिला तैयार हो गया जिसमे बड़ी सिद्दत के साथ बेबाकी से जीवन के

हर पहलु को छुआ है,संवारा है, साधा है गजल के लिए सबसे आवश्यक है स्वस्थ कल्पना,परिपक्व सोच ,भाव तथा भावाभिव्यक्ति तथा इन सभी के लिए आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त कथादेश,आज–कल ,नया–ज्ञानोदय,वसुधा,पहल,हंस,विभिन्न साहित्य अकादमी की पुस्तकों में भी गजलों को स्थाई स्तम्भ के रूप में रखा गया है, जिससे गजल साहित्य की धरा का सतत प्रवाह हो रहा है ,आवश्यकता इस बात की है की हिंदी में महत्वपूर्ण गजल विधा का निष्पक्ष, तठस्थ, एवं वस्तुपरक आंकलन किया जाना चाहिए ताकि समकालीन हिंदी गजल, हिंदी में भी वो अपना स्थान बना सके जिसकी वो अधिकारनी है।

pkFkk v/;k;

ledkyhu xtyk dk oxhdj.k -

इस प्रकार भाषा की दृष्टि से उर्दू–फारसी गजलों का अध्ययन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अपनी प्रारंभिक अवस्था में गजलें अरबी–फारसी भाषा में कही गई हैं। फारसी कवियों में अमीर खुसरो अवश्य ऐसे कवि हो गए हैं, जिन्होंने फारसी गजलों के अतिरिक्त ऐसी गजलें भी कहीं हैं, जिनमें हिंदी का सम्मिश्रण पाया जाता है। दूसरे दौर में मुसलमानों का प्रभुत्व स्थापित हो जाने से हिंदी शब्दों का बहिष्कार करके गजलों में उर्दू–फारसी भाषा का प्रयोग होने लगा और गजल जनसाधारण की समझ से दूर होती चली गई। तीसरे दौर में मौलाना हाली के सद्प्रयत्नों से पुनः गजलों में उर्दू–फारसी की क्लिष्ट शब्दावली के स्थान पर हिंदुस्तानी या दैनिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग होने लगा। आज की उर्दू गजल हिंदी के काफी समीप आ गई है। इसकी लोकप्रियता का यह भी एक प्रमुख कारण है।

प्रत्येक भाषा का काव्य अनेक रूपों में वर्गीकृत होने के साथ–साथ अपने शिल्प–सौष्ठव से संपन्न होता है। वैसे तो यदि अर्थ स्पष्ट करने की क्षमता हो तो कविता का आंशिक रसास्वादन हो ही सकता है, किंतु संपूर्ण रूप से रसास्वादन के लिए काव्यशास्त्र संबंधी आध ाारभूत तत्त्वों का अध्ययन अति आवश्यक है। गजल उर्दू–फारसी का एक प्रमुख काव्य रूप

है, जिसका अपना एक अलग शिल्प–विधान है। उर्दू–फारसी गजल कुछ निश्चित बहों अथवा लयखंडों पर आधारित होती है। इसके अतिरिक्त काफिया, रदीफ, मिसरा, शेर आदि गजल के प्रमुख अंग हैं।

ikpok v/;k;

^ledkyhu fgnh xty f'kYi -

उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लों के कथ्य को अधिक प्रभावोत्पादक तथा संप्रेषणीय बनाने के लिए मुहावरों के प्रयोग पर बल दिया गया है। वास्तव में मुहावरा ही भाषा का प्राण है। ग़ज़ल के शेरों में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लकारों ने मुहावरों का प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से न केवल भाषा में चुस्ती एवं प्रवाह उत्पन्न होता है, अपितु अभिव्यक्ति में तीव्रता भी आती है। निस्संदेह मुहावरों के सफल प्रयोग से ग़ज़ल में साधारण शेर भी उत्कृष्ट कोटि के प्रतीक होने लगते हैं। चूकि ग़ज़ल में थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहना पड़ता है, अतः मुहावरों के माध्यम से अपनी बात कहकर ग़ज़लकार अर्थ–गांभीर्य उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। इसीलिए उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में उर्दू–फ़ारसी के मुहावरों का प्रयोग करते हुए ग़ज़ल साहित्य के सौंदर्य में अभिवृद्धि की है।

हिन्दी में उर्दू–फ़ारसी मुहावरों को दो रूपों में अपनाया गया है। एक तो सीधे ही फ़ारसी मुहावरों का जो अनुवाद उर्दू में कर लिया गया, उसे अपना लिया। जैसे 'अंगुश्त' के स्थान पर दांतों तले उंगली दबाना तथा 'आव शुदन' के स्थान पर पानी–पानी होने का प्रयोग इसी आधार पर हिन्दी में प्रचलित हुआ। दूसरी प्रकार के उर्दू के वे मौलिक मुहावरे हैं, जिन्हें हिन्दी में ज्यों ता त्यों ग्रहण कर लिया गया। इन मुहावरों में सर कलम करना, ख़ाक में मिलना आदि आते हैं। उर्दू–फ़ारसी ग़ज़लों में प्रयुक्त मुहावरे मुस्लिम सभ्यता एवं संस्कृत में पले जीवन से लिए गए हैं, जबकि हिन्दी ग़ज़लों में प्रयुक्त मुहावरे हमारे देश के सर्वहारा वर्ग के जीवन से ग्रहण किए गए हैं। वस्तुतः मुहावरा उस प्रक्रिया का नाम हैं, जिससे मनुष्य जीवन के विभिन्न अवयवों से प्रगाढ़ परिचय प्राप्त कर लेता है। यही कारण है कि कथ्य को व्यापक आयाम देने के लिए उर्दू–फ़ारसी एवं हिन्दी ग़ज़लकारों ने मुहावरों

का प्रयोग अपनी—अपनी भाषागत सीमाओं में रहकर किया है।

रस—प्रयोग के संदर्भ में भी उर्दू—फ़ारसी ग़ज़ल एवं हिन्दी ग़ज़ल में साम्य एवं वैषम्य दृष्टिगोचर होता है। उर्दू—फ़ारसी ग़ज़ल दीर्घकाल से रोमानी भावधारा से जुड़ी रही है। उसका वर्ण्य विषय लौकिक या आध्यात्मिक स्तर पर प्रेम, यौवन एवं सौंदर्य से संबद्ध रहा है। अतः इन ग़ज़लों में श्रृंगार रस की ही प्रधानता रही है। इसके विपरीत हिन्दी ग़ज़ल ने प्रेम की विविध दशाओं के अतिरिक्त सर्वहारा वर्ग के दुःख—दर्द, परिवेशगत विसंगतियों, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों तथा यथार्थवादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति प्रदान की है। हिन्दी में बच्चों के लिए बाल मनोभावों के अनुरूप विषय—वस्तु का चयन करके बाल—ग़ज़लें लिखने का प्रयोग भी आरंभ किया गया है। इसलिए हिन्दी ग़ज़लों में श्रृंगार के अतिरिक्त हास्य, करुण, रौद्र, वीभत्स, शांत, वात्सल्य एवं भक्ति रस का भी प्रयोग यत्र—तत्र मिलता है।

ग़ज़ल के विभिन्न अंगों यथा शेर, मक़ता, मतला, रदीफ़, क़ाफ़िया आदि की दृष्टि से भी उर्दू—फ़ारसी ग़ज़ल एवं हिन्दी ग़ज़ल में काफी समानता पाई जाती है। हिन्दी ग़ज़लकार 'मक़ता' में उपनाम के प्रयोग के संबंध में उर्दू—फ़ारसी ग़ज़लकारों की भांति एकनिष्ठ नहीं है।

NBk v/;k;

ledkyhu xty vkj thou n'ku dh pukfr;k - ¼1975 l vc rd ½

एक छंद के रूप में जिस गीतिका की चर्चा पिंगलशास्त्रियों ने की है, उसके प्रत्येक चरण में छब्बीस मात्राएं होती हैं। प्रत्येक चरण के अंत में लघु गुरू होता है। चौदह और बारह मात्राओं पर यति होती है। इसकी तीसरी, दसवीं और चौबीसवीं मात्राएं सदा लघु रहती हैं। वास्तव में यह 'गीतिका' छंदशास्त्र के नियमों के आबद्ध, अभिव्यक्ति की एक शैली है, जबकि गजल उर्दू—फारसी छंदशास्त्र के अनुरूप एक विधा है, जिसके माध्यम से हृदयगत भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है।

एक अन्य अर्थ में 'गीतिका' का प्रयोग संक्षिप्त गीतों, प्रगीतों या लघु गीतों के रूप में

किया जा सकता है। साधारण रूप में सुख–दुःख की भाववेशमयी अवस्था विशेष या गिने–चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। दूसरे शब्दों में गीत यह विधा है, जिसके माध्यम से कवि अपने अंतर की पीड़ा एवं भावानुभूतियों को नपे–तुले शब्दों में इतने प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करता है कि उसकी पीड़ा जन–जन की पीड़ा बन जाती है।

यद्यपि हिंदी साहित्य में विस्तृत आयामवाले गीत भी मिलेंगे, किंतु चूंकि संक्षिप्तता गीत की विशेषता है, अंत उन्हीं गीतों को सफलता प्राप्त होती है, जो संक्षिप्त होते हुए भी तीव्रानुभूति कराने में सक्षम हों। ऐसे ही संक्षिप्त गीतों को कभी–कभी लघु गीत या गीतिका की संज्ञा दे दी जाती है। 'निशा–निमंत्रण' में संकलित बच्चनजी के अति संक्षिप्त गीत ऐसे ही हैं। इन्हें लघु गीत या गीतिका कहा जा सकता है। इन गीतों का मुख्य वर्ण्य विषय प्रेम का वियोग पक्ष है, क्योंकि यह कवि की प्रथम पत्नी के देहावासन के पश्चात की मनःस्थिति के हैं, जिनमें पीड़ा की छटपटाहट, विरह–व्याकुलता, शोक एवं अवसाद के मिले–जुले स्वर मुखरित होते हैं। संक्षिप्तता इन गीतों की मूल विशेषता है।

lkrok¡ v/;k;

fgUnh vkSj mnwZ xty dk rqyukRed v/;;u -

समकालीन ग़ज़लों में हिन्दी और उर्दू तथा अन्य भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन इस अध्याय में की गई है जिसकी भाषिक सरंचना फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र के निर्देशानुसार की गई है। इन ग़ज़लों में उर्दू–फ़ारसी की भारी–भरकम समास–गुंफित शब्दावली का प्रयोग मिलता है। उर्दू–फ़ारसी लिपि का प्रयोग भी इन ग़ज़लों में हुआ है। हिन्दी के आरंभिक ग़ज़लकारों ने भी उर्दू–फ़ारसी की शब्दावली का प्रयोग बहुलता से किया है। आधुनकि हिन्दी ग़ज़लकारों में भाषिक संरचना की दृष्टि से दो वर्ग मिलते हैं। एक वर्ग उन लोगों का है, जो हिन्दी ग़ज़ल के लिए हिन्दी संस्कृत की तत्सम शब्दावली के प्रयोग पर बल देते हैं, जबकि दूसरे वर्ग में वे लोग आते हैं, जिन्होंने उर्दू एवं हिन्दी के मध्य सामंजस्य स्थापित करते हुए दैनिक बोलचाल की हिन्दूस्तानी भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया

है। भाषिक प्रयोगों को लेकर सुधी समीक्षकों में मत–मतांतर एंव भ्रांतियों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। उर्दू–फ़ारसी व्याकरण–शास्त्र के नियमानुसार भारी–भरकम शब्दावली का प्रयोग करके देवनागरी लिपि में लिखी गई ग़ज़लें हिन्दी ग़ज़लें कदापि नहीं कहीं जा सकतीं। इस दृष्टि से दुष्यन्त कुमार की कतिपय ग़ज़लों को भी हिन्दी ग़ज़ल मानने में अनेक तकनीकी समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। हिन्दी ग़ज़ल से हमारा अभिप्राय देवनागरी लिपि में लिखी गई उन ग़ज़लों से है, जो हिन्दी–संस्कृत की तत्सम शब्दावली या दैनिक बोलचाल की सरल हिन्दुस्तारी भाषा में लिखी गई हों।

उर्दू–फ़ारसी के वे ही शब्द हिन्दी ग़ज़ल में खप सकते हैं, जो सर्वहारा वर्ग की बोलचाल की भाषा में घुल–मिलकर एकाकर हो गए हों।

कुछ लोग भ्रांतिवश मुसलमान कवियों की ग़ज़लों को उर्दू–फ़ारसी तथा हिन्दी कवियों की ग़ज़लों को हिन्दी ग़ज़ल मान लेते हैं। वास्तव में इन दोनों के मध्य सूक्ष्म अंतर विद्यमान है। जहीर कुरैशी की आम आदमी की भाषा में लिखी गई ग़ज़लों को हिन्दी ग़ज़ल ही माना जाएगा, जबकि शमशेरबहादुर सिंह तथा दुष्यन्त कुमार की उन ग़ज़लों को उर्दू ग़ज़ल ही माना होगा, जिसमें फ़ारसी व्याकरण शास्त्र के अनुरूप उर्दू–फ़ारसी शब्द–विन्यास का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल एवं हिन्दी ग़ज़ल के मध्य अंतर स्पष्ट करने में भाषिक संरचना की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

mi lgkj

हिंदी साहित्य में यद्यपि गजल काव्य विधा का अपने प्रखर रूप में प्रदुर्भाव नहीं हुआ ,था इसको मानने–जानने वालेतथा गजल को कहेने –समझने वाले और आलोचक एवं समालोचक की खासी तरक्की इस बात का सुबूत है की गजल एवं शेश्र में कहीं न कहीं आस– पास की जमीनी मिटटी की सुगंध आती है गजल में हिंदी की अन्य काव्य विधा का समवेश है. बैतों अथवा अशआरो (शेश्रों)से सुसज्जित गजलों की व्याख्याकार ये जानकारी तो देते है ,मगर ये नहीं बताते की अरब में गजलों की शुरुआत कैसे हुयी?कहीं– कहीं यह भी देखने में आया है की गजल का जन्म तो अरब में हुआ है मगर वहां के श्गजल कहने

वाले शाईरों का कुछ खास अता पाता नहीं चलता ,अब ये तो संभव नहीं है की किसी काव्य शैली का जन्म जिस भू –भाग में हो वहीँ के रचनाकरो का पता ना चले ,कठिनाई दरअसल कुछ और ही है ,हिंदी में गजल की व्याख्या करने वाले मूल स्त्रोत तक नहीं पहुँच पाते अतः इधर –उधर से प्राप्त सामग्री से ही अपना काम चला लेते है । जबकि वास्तविकता यह है की अरब में गजल का सिर्फ जन्म ही नहीं हुआ ,अपितु अरबी भाषा में रचित गजल रचना की एक समृद्ध परम्परा भी कायम हुई है ।

संदर्भ-ग्रंथ

1. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, 'बोलचाल', 2013 वि.; हि.सा.क., वाराणसी।
2. आशा किशोर, (डॉ.) 'आधुनिक हिन्दी गीति काव्य का स्वरूप और विकास', 1971; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. अर्श मल्सियानी, 'ग़ालिब : कवि और मानव', प्रथम संस्करण प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
4. केशरी नारायण शुक्ल (डॉ.), 'आधुनिक काव्यधारा', 1943; सरस्वती मंदिर, बनारस।
5. इन्द्रनाथ मदान, 'आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य', 1978; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. एज़ाज हुसैन (प्रो.), 'उर्दू साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', 1955; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

fgUnh ¼vkykpukRed½

7. अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, 'हिन्दी पर फ़ारसी का प्रभाव', 1948; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
8. गुलाब राय (डॉ.), 'सिद्धांत और अध्ययन', 1970; आत्माराम एंड संस लि. दिल्ली।
9. गणेश खरे (डॉ.), 'आधुनिक प्रगीत काव्य', 1965; अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर।
10. जगदीश कुमार, 'शमशेर–कविता लोक', 1982; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. चानन गोविंदपुरी 'ग़ज़लः एक अध्ययन', 1980; सी. आर. पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।
12. जय शंकर प्रसाद, 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध', प्रथम संस्करण; इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।
13. जीवन प्रकाश जोशी (डॉ.), 'आधुनिक हिन्दी गीत काव्यः विषय और शिल्प', 1974; सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली–7।
14. जगदीश बिहारी मिश्र (अनुवादक), 'अंग्रेजी साहित्य का इतिहास', 1963; हिन्दी समिति, लखनऊ।
15. दुर्गा शंकर मिश्र आचार्य, 'अनुभूति और अध्ययन', 1963; नवयुग ग्रंथागार, लखनऊ।
16. धीरेन्द्र वर्मा (सं.), 'हिन्दी साहित्यकोष', भाग–1, प्रथम संस्करण; ज्ञान मंदिर लि., वाराणसी।

17. नगेन्द्र (डॉ.) 'आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां', प्रथम संस्करण; सरस्वती सदन, हरदोई।

18. दुर्गा शंकर मिश्र आचार्य, 'हिन्दी कवियों की काव्य–साधना', 1952; नवयुग ग्रंथागार, लखनऊ।

19. नरेन्द्र वशिष्ठ (डॉ.), 'शमशेर की कविता', 1980; वाणी प्रकाशन।

20. नित्यानन्द शर्मा (डॉ.), 'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रतीक विधान', प्रथम संस्करण; सरस्वती सदन, हरदोई।

21. नरेश (डॉ.), 'आधुनिक कविता में उर्दू के तत्व', 1969; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

22. पद्मसिंह शर्मा कमलेश (डॉ.), 'निराला', 1969; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

23. पुत्तूलाल शुक्ल (डॉ.), 'आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना', 1914; वि. लखनऊ विश्वविद्यालय।

24. रघुपति सहाय फ़िराक़ गोरखपुरी, 'उर्दू कविता पर बातचीत', 1945; सरस्वती सदन, हरदोई।

25. पद्मसिंह शर्मा, 'हिन्दी–उर्दू–हिन्दोस्तानी', 1951; हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।

26. प्रकाश पंडित, 'आज के उर्दू शायर और उनकी शायरी', 1960; सरस्वती सदन, हरदोई।

27 पूर्णमासी राय, 'उर्दू आलोचनाः स्वरूप और विकास', प्रथम संस्करण; ग्रंथम, कानुपर।

28. बरसाने लाल चतुर्वेदी (डॉ.), 'हिन्दी साहित्य में हास्यरस', 1957; हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली।

29. बरसाने लाल चतुर्वेदी (डॉ.), 'हास्य की प्रवृत्तियां', '1965 राजश्री प्रकाशन, मथुरा।

30. मलिक मोहम्मद (डॉ.), 'अमीर ख़ुसरोः भावात्मक एकता के अग्रदूत', 1975; राजपाल एंड संस, दिल्ली।

31. रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', सं. 2003; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

32. रघुपति सहाय फ़िराक़ गोरखपुरी, 'उर्दू–भाषा और साहित्य', 1969; हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

33. प्रतापसिंह चौहान, 'कविता में प्रयोगवाद की परंपरा', 1960; नवयुग प्रकाशन,

लखनऊ।

34. ब्रजरत्न दास, 'उर्दू साहित्य का इतिहास, 1957; हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी।

35. मौलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली, 'मुकद्दमा–ए–शेर–ओ–शायरी', 1967; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

36. बैरिस्टर सिंह यादव (डॉ.), 'हिन्दी लोकसाहित्य में हास्य और व्यंग्य', 1978; राष्ट्रीय साहित्य सदन लखनऊ।

37. रामधारी सिंह दिनकर, 'मिट्टी की ओर', 1946, उदयाचल, पटना।

38. रमेश चन्द्र मेहरा, 'निराला का परवर्ति काव्य', 1963; अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर।

39. रामखिलावन तिवारी (डॉ.), 'माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य', 1966; ग्रंथ भारती, कानपुर।

40. रामनरेश त्रिपाठी, 'उर्दू ज़बान का संक्षिप्त इतिहास', 1940; हिन्दी मंदिर, प्रयाग।

41. रामनरेश त्रिपाठी, 'कविता कौमुदी', भाग–4, प्रथम संस्करण; सरस्वती सदन, हरदोई।

42. रामबहोरी शुक्ल, 'काव्य–प्रदीप', 1969; हिन्दी भवन, इलाहाबाद।

43. रामेशवर लाल, 'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य', प्रथम संस्करणः नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

43. विश्वम्भर मानव, 'हमारे प्रतिनिधि कवि', 1969; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

44. सुधेश (डॉ.), 'आधुनिक हिन्दी और उर्दू काव्य की प्रवृत्तियां', प्रथम संस्करण; ग्रंथम, कानपुर।

45. शांति द्विवेदी, 'सामयिकी', प्रथम संस्करण; सरस्वती सदन, हरदोई।

46. सुधीन्द्र, 'हिन्दी कविता में युगान्तर', 1950; आत्माराम एडं संस, दिल्ली।

47. रामचन्द्र शुक्ल, 'चिंतामणि', भाग–1, 1970; इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

48. क्षेमचन्द्र सुमन, 'दिवंगत हिन्दी–सेवा', प्रथम संस्करण, शकुन प्रकाशन, दिल्ली।

49. शम्भुदत्त झा, 'रिचड्र्स के आलोचना सिद्धांत', प्रथम संस्करण; भारती भवन, पटना।

50. सुशील चन्द्र गुप्त, 'बरेली : क़ौमी एकता का प्रतीक', 1981; सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, बरेली।

51. हरदेव बाहरी (डॉ.),'हिन्दी काव्य शैलियों का विकास', 1957; भारती प्रेस, इलाहाबाद।

52. सुरेशचन्द्र गुप्त (डॉ.),'आधुनिक हिन्दी–उर्दू काव्य समीक्षा', प्रथम संस्करण; प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

¼[k½ fgUnh ¼dk0;½

53. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, 'चुभते चौपदे', 1959; हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस।

54. अजय प्रसून, 'महानगर के बीच', 1984; ममस प्रसून प्रकाशन, लखनऊ।

55. अमीक हनफ़ी, 'सांसों का संगीत', 1960; चिंतन–गृह प्रकाशन, मथुरा।

56. ओम प्रकाशन मधुप, 'प्यासे आंसू', प्रथम संस्करण, भारती प्रकाशन, नई दिल्ली।

57. अंजनी कुमार दृगेश, 'बालगीत–2' 1983; हीरोज क्लब, इलाहाबाद।

58. कान्तानाथ पांडेय चोंच, 'चूनाघाटी', प्रथम संस्करण; चौधरी एडं संस,, बनारस।

59. कुंबर बेचैन (डॉ.), 'महावर इन्तजारों को', 1983, प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद।

60. कान्तानाथ पांडेय चोंच, 'खरी खोटी', प्रथम संस्करण; चौधरी एडं संस, बनारस।

61. कुंअर बेचैन (डॉ.),'शामियाने कांच के', 1983; प्रगीत प्रकाशन, गाज़ियाबाद।

62. कान्तानाथ पांडेय चोंच, 'छेड़छाड़'; प्रथम संस्करण; चौधरी एडं संस, बनारस।

63. केदारनाथ कोमल, 'कोहरे से निकलते हुए' 1975; पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली।

64. के.पी.गुप्ता, 'दिलकश ग़ज़लें, प्रथम संस्करण; अल्का पाकेट बुस्क, लखनऊ।

65. केदारनाथ कोमल, 'मेरे शब्द : मेरा लहू', 1983; नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल।

66. के.पी.गुप्ता, 'चुनी हुई ग़ज़लें, प्रथम संस्करण; अल्का पाकेट बुस्क, लखनऊ।

67. कृष्ण मित्र, 'सुन रे इतिहास पुरुष', प्रथम संस्करण; मुक्त प्रकाशन, गाजियाबाद।

68. गिरिराजशरण अग्रवाल (डॉ.), 'के.पी.गुप्ता, 'बेहतरीन ग़ज़लें, प्रथम संस्करण; अल्का पाकेट बुस्क, लखनऊ।

समकालीन हिंदी ग़ज़ल साक्षात्कार

समकालीन हिंदी गजल के बड़े शायर ,लिम्का बुक ऑफ वर्ड रिकॉर्ड में दुनियां की सबसे छोटी बहर में गजल लिखने के कारण नामजद शायर से एक मुलाकात साक्षात्कार

vo/k'k dekj tkgjh % पिछले कुछ बरसों से ये खयाल जाहिर किया जा रहा है कि समकालीन हिंदी गजल एकरसता का शिकार हो गयी है । इसकी भाषा और शैली और इसके पहले की गजल में कोई स्पष्ट फर्क महसूस नहीं होता । आप क्या महसूस करते हैं? और अगर ऐसा है तो इसका कारण क्या हैं?

edi'k ijokuk ^vtejh*% पहली बात तो ये है कि आप या दूसरे लोग तब्दीली से क्या अर्थ लेते हैं । अगर बिल्कुल ही नयी भाषा या नये काव्य–विषय आपके जेह्न में हों तो शायद ये मुम्किन नहीं है। मैं इस बात का कायल हूँ कि तमाम तब्दीलियाँ वध्क्त के साथ–साथ और साहित्य–विधा के मिघ्जाज के साथ–साथ होती हैं। रूप–स्वरूप के दृ ष्टिकोण से गजल की अपनी कुछ व्यापकता और कुछ limitations भी हैं । हर अच्छे शायर ने उन limitations में रहकर गजल में तब्दीलियाँ की हैं। यही वज्ह है कि मौघ्जूआत, भाषा और शैली के एतबार से आज की हिंदी गजल वो हिंदी गजल नहीं है जो मिसाल के तौर पर कुली कुतुबशाह या शाही की थी । खैर ये तो बहुतदूर की बात हो गयी। आज की हिंदी गजल कहीं–न–कहीं वली और सिराज की गजल से भी अलग है और तरक्ध्कीपसन्दों की हिंदी गजल से भी अलग है। आज की अच्छी हिंदी गजल लघ्फ्घ्जी परेडवाली हिंदी गजल भी नहीं है। यकीनन् इसमें तब्दीलियाँ भी हुई हैं, लेकिन वो तब्दीलियाँ मुम्किन है सरसरी नजर से देखने पर नजर न आयें। मेरा खयाल है कि अच्छे अदब की एक पहचान ये भी है कि वो अपने अतीतसे जुड़ा रहते हुए भी मौजूदा जिन्दगी को प्रतिबिम्बित करे और अदीब या शायर के जेहन और जज्बाती कैफियत की भी आईनादारी कर सके।

शायर भी समाज की एक इकाई है। समाज में होनेवाली तब्दीलियाँ उस पर भी

असरअन्दाज होती हैं, जिन्हें वो अपनी जिन्दगी के हालात, समस्याएँ और अपने जाति तजुर्बे और उन तजुर्बे से पैदा होनेवाली मनोवैज्ञानिक और वैचारिक मनरूस्थितियों के साथ मिश्रित करके शेर का रूप देता है। रही भाषा या शब्दावली की बात, तो अगर जिन्दगी बदल रही है तो भाषा को भी बदलना होगा। बहुत सारे पुराने अल्फाज, टकसाली अल्फ्फाघ्ज पीछे चले जायेंगे और उनकी जगह नये अल्फ्फाघ्ज ले लेंगे । मेरे अपने ख्याल के मुताबिघ्क नये अल्फ्फाघ्ज पैदा करना, इस्तेमाल करना या पुराने अल्फाज को नयी अर्थवत्ता प्रदान करना या कुछ जज्बाती और एहसासाती कैफियत के इज्हार के लिए वघ्क्घ्फों और उतार–चढ़ाव, श्हरावय जैसे कॉमा इत्यादि के द्वारा काम लेना,ये शायर की कलात्मक समझ और गुणवत्ता पर आधारित है। वैसे भी सियाह के मुघ्काबले में सफेद या अँधेरे के मुघ्काबले में नूर रख देना कोई अच्छी फनकारी नहीं और न इसमें कोई मौलिकता नवीनता नजर आती है, क्यूँकि ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लिखनेवाले ने राएजुल–वघ्क्त सिक्के (उस समय प्रचलित सिक्का) के दूसरे पहलू को ले लिया, तो ये काम तो बच्चा भी कर सकता है और इब्तिदाई क्लास में ही ये बातें सिखा दी जाती हैं। फनकार का इम्तिहान तो उस वघ्क्त होता है कि जब वो राएजुल–वघ्क्त से बिदकने के बजाय उनसे नये–नये विषय और शब्दार्थ तलाश करने या उनकी राएज तर्तीब (प्रचलित क्रम) में कुछ रद्दो–बदल करके नयी अर्थवत्ता पैदा कर ले। इसके अलावा भी एक बात है, वो लघ्फ्घ्ज अगर शायर की दिली कैफियत–ओ–जज्बात के इघ्ज्हार के लिए स्वतरू उत्पन्न होता है, तो यकीघ्कन् उसमें उसका जज्बा–ओ–एहसास भी शामिल होगा और क्यूँकि वो एहसास पहले के मुघ्काबले में नया होगा इसलिए लघ्फ्घ्ज की अर्थवत्ता में किसी हद तक नयापन भी आ जायेगा।

vo/k'k dekj tkgjh% अच्छे शेर या अच्छी शायरी की तारीघ्फ उलमा–ए–अदब ने अलग–अलग अन्दाज में की है । किसी के यहाँ मवाद (बवदजमदजे)की अहमियत है तो किसी के खयाल में तर्सील (communication)ही सबकुछ है। किसी की नजर में शैली (style) से बढ़कर कोई चीघ्ज नहीं।आपके नजदीक अच्छी और सच्ची शायरी की तारीघ्फ

क्या है?

e|d'k ijokuk ^vtejh*% अच्छी और सच्ची शायरी की अव्वलीन पहचान तो ये है कि वो अपने बाघ्जौघ्क सामे(श्रोता) या पाश्क को फौरी तौर पर अपनी तरफ मुतवज्जो(ध्यानार्किषत करना) करती है और वो तवज्जो मघ्जाघ्क उड़ाने या हँसी उड़ाने के लिए न हो, बल्कि कारी (पाश्क) और शायर के दरमियान पैदा होनेवाली मउचंजील (समानुभूति) का नतीजा हो, यानी कहनेवाले और सुननेवाले के जज्बात व एहसासात एक हो जायें । ये बातें बहुत पुरानी हैं, वली से लेकर आज तक हर शायर
ने ये बात कही है। गालिब का एक शेर सुनेंदृ

देखना तकरीर की लघ्ज्ज्जत कि जो उसने कहा !

मैंने ये जाना कि गोया ये भी मेरे दिल में है !!

vo/k'k d|ekj tkgjh% जदीदियत(आधुनिकता) के आघ्गाघ्ज में समकालीन हिंदी गजल के साथ–साथ आघ्जाद नज्म भी उसी शिद्दत से सृजित हो रही थी। इधर कुछ बरसों से अच्छी नज्में बहुत कम पढ़ने को मिल रही हैं, और नज्म लिखनेवालों की तादाद भी कम होती जा रही है। यद्यपि समकालीन हिंदी गजल के मुघ्काबले में आघ्जाद नज्म जकड़बन्दियों और फन्नी कैद (कलागत सीमाएँ) से अपेक्षाकृत ज्यादा आघ्जाद भी है। आजन मीम. राशिद नजर आते हैं, न अघ्ख्तर–उल–ईमान और काघ्जी सलीम मिलते हैं, न बलराज कोमल और निदां फाजली हैं, न अमीघ्क हन्घ्फी,इसके क्या कारण हैं?

e|d'k ijokuk ^vtejh*% देखिए हर दौर में कई तह्रीरें सामने आती हैं, लेकिन उनमें से चन्द ही पढ़नेवालों को मुतवज्जो करती हैं । नज्में तो आज लिखी जा रही हैं और अच्छी भी लिखी जा रही हैं, लेकिन ये भी सच है कि वो एक आम दस्तूर के मुताबिघ्क अच्छी और बुरी दोनों तरह की हैं । मस्लन् अतीघ्कउल्लाह, सादिघ्क, खलील मामून, अब्दुल अहद 'साघ्ज', अम्बर बहराइची, सलीम शहघ्जाद, जयन्त परमार वघ्गैरहय लेकिन आप कहेंगे ये तो सन् अस्सी से पहलेवाले हैं, तो उनके बाद नोमान शौघ्क, मुघ्जफ्घ्फर अब्दाली, फरहत एहसास, कौसर मघ्जहरी, जमाल उवैसी, ऐन. ताबिश, शकील आघ्जमी, चन्द्रभान ,खयाल,

राशिद अनवर वग़ैरह हैं। इनके अलावा भी कुछ अच्छे नज्मगो हैं, नाम याद नहीं आ रहे हैं। खवातीन में शहनाध्ज नबी, इघ्फ्घफत जरीन, मलिका नसीम और शाइस्ता यूसुघ्फ हैं। इन सभी ने गजलों के साथ उम्दा नज्में भी कही हैं। खुद आपके यहाँ ,खालिद सईद हैं, हामिद और आप खुद अवधेश जी जौहरी बहुत ही उम्दा गजलकार हैं और शायद साजिद हमीद भी खुद वहीं के हैं, सादिघ्का सहर हैं। आज के ,कारी(पाश्क) के साथ एक समस्या ये भी है कि लिखनेवाले और इसके पढ़नेवाले में वो जमीनी फासला (चमतपवकपब हंच) जो अदब की परख के लिए जरूरी होता है, नहीं है। इसलिए इस किस्म की गलतघ्फहमियाँ पैदा हो सकती हैं। सन् १६३५ से सन् १६४० की आलोचना देखिए, इसमें पेज मघ्ख्दूम, सरदार जाघ्फरी के नाम कहाँ नजर आते हैं। उस आलोचना की नजर में अहम नाम कुछ और थे, लेकिन वो आज भुला दिये गये हैं।

सन् १६८० के बाद के कई शायर कहीं–न–कहीं अपनी सलाहियतों(प्रतिभा) का एहसास डालते हैं। कुछ नज्में बहुत अच्छी हैं और कुछ अपेक्षाकृत कमघ्जोर, तो ये तो होता ही रहता है। अलबत्ता आपका ये खयाल बिल्कुल दुरुस्त है कि आज गजल के मुघ्काबले में नज्म कम कही जा रही हैं। तब्रीन के ये तमाम शायर नज्म के साथ हिंदी गजल भी कहते हैं, सिर्फ नज्म नहीं कहते। इसके कई कारण हैं जिन पर गौर करना पड़ेगा। मस्लन् मुशायराबाघ्जी, अदब को वघ्क्त–गुघ्जारी के लिए पढ़ना, पूर्वाग्रह–ग्रस्त होकर शेरी मज्मूओं की वरक–गर्दानी (पन्ने पलटना, पढ़ना) करना ।

vo/k'k dek j tkgjh 'रायगाँ'(बशर नवाघ्ज का काव्य–संग्रह) का शायर बिला शुब्हा(निरूसन्देह) जदीद शायर है और उसमें शामिल अधिकतर रचनाएँ जदीदियत(आध ुनिकता) के उरूज के दौर में लिखी गयी हैं। इसमें शामिल हिंदी गजलें–नज्में एक सन्तुलित और तर्कसंगत शेरी रवैये को प्रकट करती हैं, जो जदीदियत के उद्‌भव–काल की रचनाओं से स्पष्ट तौर पर भिन्न मालूम होती हैं। 'सूरज को चोंच में लिये मुघ्र्गा खड़ा रहा' और 'अरी साली जल्दी से जम्पर गिरा' या 'रेल चलती नहीं गिर जाता है पहले सिग्नल' या इसी तरह के और भी बहुत–से अश्आर, के चौंकाने और बहस का विषय बननेवाले शेरी

तौर–तरीध्कों ने आपको अपनी तरफ आकृष्ट क्यों नहीं किया?

e|d!'k i jokuk ^v tejh*% आपके पास मेरे मध्जामीन का मज्मूआ(लेखों का संग्रह) होगा और अगर होगा तोआपने पढ़ा भी होगा। इसमें पहला ही मज्मून हैं जिसमें मैंने अपनी शायरी के बारे में विस्तार से बातकी है। ये मध्ज्मून फारूकी ने लिखवाया था और ये वही जमाना था जब हमारी शायरी में कुछ मुर्ग्रे,बिल्लियाँ, कुत्ते वध्गैरह भी आये थेय और कुछ लोगों ने सूध्फियाना अन्दाध्ज से जिंसी मामलों पर शेर कहने शुरू कर दिये थे। बदध्किस्मती से उन लोगों के जेहन में नयी शायरी का तसव्वुर ही कुछ इस किस्म का था। आपने जितने मिस्रे दिये हैं वो सब मेरे बहुत अच्छे दोस्तों के हैं। इनके कलाम में इस किस्म के अश्आर आटे में नमक के बराबर हैं । जैसे पहला मिसरा निदा का है, दूसरा मिस्रा मुहम्मद अल्वी का है, तीसरा मिसरा सलीम अहमद का है। आप इन लोगों के मज्मूओं पर नजर डालें तो इस किस्म के अश्आर बड़ी तलाश के बाद मिलेंगे, लेकिन आप मुतवज्जो हुए और इन्हीं को निशानजद किया। उस जमाने में भी शायद उन लोगों के जेहन में यही था कि लोग फौरी तौरपर मुतवज्जो हो जायें, ताकि उनकी सच्ची शायरी की तरफ तवज्जो दी जा सके। वैसे ये रवैया कुछ कमध्जोरी का तो इध्ज्हार करता है। शायद जल्द–अध्ज–जल्द अपनी तरफ मुतवज्जो करने की ख्वाहिशया शायद आलोचकों को मुतवज्जो करने की ख्वाहिश (चाहे बुराई से ही क्यों न हो), बहरहालवो एक उबूरी दौर(संक्रमण–काल) था और उसके गुजर जाने के बाद ही सही जदीद अदब सामने आया। मैंने अपने उसी मध्ज्मून में लिखा था कि जब सैलाब आता है तो उसकी ऊपरी सतह पर घास–पूस, कूड़ा–करकट इस शिद्दत से नजर आते हैं कि असली इध्ज्हारात उनमें छुप जाते हैं। तब्दीलियों के दौर में भी ये होना था, सो हुआ। जहाँ तक मेरा मामला है मैं शुरू ही से अदब को इध्ज्हारात और व्यक्तिगत स्तर से समाज में होनेवाली तब्दीलियों के देखने और समझने का कायल हूँ। शायद इसी वज्ह से मैं इस किस्म की इन्तिहापसन्दियों(अतिवादिता) से बचा रहा। खैर ये बात अलग है कि मेरी शायरी में परम्परागत या रूढ़िगत तत्त्वों की निशानदेही तो किसी ने नहीं की, लेकिन उस जमाने में लध्फ्ध्ज 'रवायत'(परम्परा) ही बुराई के लिए इस्तेमाल

किया जाता था। दरअस्ल वो लोग रवायत की ताध्कत और रवायतीपन में फर्क नहीं कर सकते थे।

vo/k'k d|ekj tkgjh % प्रेमधन, श्रीधर पाठक , राम नरेश त्रिपाठी , निराला , शमशेर , त्रिलोचन आदि ने समकालीन हिंदी गजल के दामन को मालामाल किया, वहीं काध्जी सलीम और शध्फीध्क फातिमा 'शेअरा' जैसे नज्मनिगारों ने जदीद नज्म की व्यापकता और विशेषताओं की तलाश–ओ–जुस्तजू की और जदीद नज्म को नया रंगो–आहंग और एतबार बध्ख्शा। फिर भी ऐसा लगता है काध्जी सलीम और शध्फीध्क फातिमा 'शेअरा' का फन आलोचकों और विद्वानों से आज भी अपने मूल्यांकन की अपेक्षा करता है। इनके साथ आलोचना ने वो सुलूक नहीं किया जिसके वो बजा तौर पर हध्कदार हैं। उाहल्हा फनकारो के साथ ऐसा अक्सर होता है, क्यों?

e|d'k ijokuk ^vtej*% जैसे मैं अभी अर्ध्ज कर चुका हूँ कि जिस तरह किसी वाकिया या मौध्जू और फनकार में थोड़ा–सा फासला जरूरी होता हैय कुछ फनकारो और सुनने–पढ़नेवालों में जमीनी फासला (चमतपवकपब हंच) होना जरूरी होता है। वैसे आज 'शेअरा' पर भी बहुत मध्जामीन आये हैं, जिसमें उनकी शायरी का विस्तारपूर्वक जायजा लिया गया है। इसी तरह काध्जी सलीम पर भी लिखा जा रहा है और आइन्दा भी लिखा जायेगा।

vo/k'k d|ekj tkgjh % अपने मध्ज्मून 'कुछ जदीद शायरी के बारे में' में आपने नक्ध्कालों और फैशनपरस्त अदीबों की खूब शिनाध्ख्त की है, लेकिन ये बात भी सर्वमान्य है कि प्रतिभा(जमसमदज) की कमी के बावजूद पक्की रोशनाई में अपना नाम छपा देखनेवाले हर दौर में रहे हैं और उनकी तादाद भी काफी रही है। बुनियादी मस्अला इस तरह के लिखनेवालों की हिम्मत–अफ्जाई और पुश्तपनाही(पृष्ठ–पोषण) का है। क्या आपको नहीं लगता कि बेसिर–पैर की तह्रीरें और क्लिष्ट या निरर्थक अदब को विकसित करने में पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादकों–प्रकाशकों का रोल भी काध्फी अहम रहा है?

ed'k ijokuk ^vtejh*% नजरी तौर पर आपकी बात दुरुस्त मालूम होती है कि पत्रिकाओं में अच्छी अदबी चीध्ज्जों के साथ–साथ कुछ भर्ती की सामग्री भी प्रकाशित होती है, जो नहीं होनी चाहिए। मैं भी इस बात से सहमत हूँ, लेकिन इसके लिए व्यावहारिक पहलुओं को भी नजरअन्दाध्ज नहीं किया जा सकता। हर अच्छी पत्रिका को अपनी मुध्कर्रर तारीध्ख पर प्रकाशित किया जाना जरूरी है, क्योंकि हर पत्रिका से इसके खरीदार यही उम्मीद रखते हैं। अब ये सम्पादक की जरूरत कहिए या मज्बूरी कि उसे उपलब्ध सामग्री ही में से कुछ चुनिन्दा सामग्री प्रकाशित करना पड़ता है। मेरा ख्याल कि हर सम्पादक अपने पाश्कों से भी कुछ अपेक्षा रखता हैय यानी ये कि पाश्क खुदा भी उसके द्वारा उपलब्ध करायी सामग्री में से अपनी पसन्द की चीध्ज्जें चुन लें और बाध्की सामग्री को रद्द कर दें। मुझे याद नहीं कि किसका कथन है, शायद हीगल का, कि हर छपी हुई चीध्ज अदब नहीं होती। यहाँ हीगल लेखक या छापनेवाले के साथ–साथ पढ़नेवाले की ध्जिम्मेदारी की तरफ भी इशारा करते नजर आते हैं, कि पाश्क भी पक्की रोशनाई में छपी हुई हर लिखित सामग्री को अदब की कोटि में शामिल न करें। 'फुनून' ने जब जदीद हिंदी गजल गजल विशेषांक छापा तो उसमें कुछ ऐसी गजलें भी शामिल कीं जिनको हिंदी गजल कहना ही समकालीन हिंदी गजल पर जुल्म करना होगा, लेकिन इसका मतलब ये नहीं हुआ कि 'फुनून' के सम्पादक अहमद नदीम कासिमी उन हिंदी के गजलों को अच्छी गजल समझते थे। अपने सम्पादकीय में उन्होंने इसका जिक्र भी किया था कि कुछ जाने–पहचाने शायरों ने ऐसी हिंदी की एसी गजलें भेजी हैं कि मुझे हैरत हुई है, लेकिन वो हिंदी गजलें उन्होंने शायद इसलिए प्रकाशित की कि पाश्क को भी इस बात की इत्तिला हो जाये कि आजकल अदब के नाम पर क्या कुछ हो रहा है। कुछ यही सूरते–हाल हर पत्रिका के सम्पादक को पेश आती हैं। अब आप देखें कि 'शबध्खून', जिसने इस किस्म के तङ्काबों को बहुत बढ़ावा दिया था, जब अपनी ही पत्रिका का चालीस साला इन्तध्खाब छापता है तो उसमें जेर–बहस किस्म की तह्रीरों (लिखित सामग्री)में से कितनों को जगह मिलती है। मेरा खयाल है कि उस अंक में एक तह्रीर भी ऐसी नहीं है कि जिस पर गैर– अदब होने का

इल्ध्जाम लगाया जा सकता है। 'शबघ्खून' के तघ्करीबन् दो हघ्जार पृष्ठों से ज्यादा वहीं रचनाएँ ली गयीं जो अदब के मेआर पर भी पूरी उतरी हैं और पत्रिका के सम्पादक की नजर में भी अदब कहलाने की हघ्कदार हैं। इसके बावजूद मुम्किन है कुछ रचनाएँ किसी पाश्क के मेआर पर पूरी न उतरें और ये होना कोई अजूबा नहीं है। हर पढ़नेवाले की अपनी पसन्द और नापसन्द भी होती है और उसे ये हघ्क भी हासिल है कि वो कुछ चीघ्जों को कुबूल करे और कुछ को रद्द कर दे। हमें देखना ये होगा कि पाश्क की व्यक्तिगत पसन्द–नापसन्द से हटकर अदब के उसूलों पर वो रचनाएँ पूरी उतरती हैं या नहीं। यहाँ भी एक मुश्किल ये पेश आती है कि अदब के विभिन्न दृष्टिकोण हैं और हर दृष्टिकोण की कसौटी एक दूसरे से जुदा है, लेकिन इस बुनियादी हघ्कीघ्कत को नजरअन्दाघ्ज नहीं किया जा सकता कि उन परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों में भी कोई–न–कोई गुण या विशेषता उभयनिष्ठ है। हर घ्जबान की अपनी रवायत होती है, उसके कलीदी लघ्फ्घ्जों(प्रमुख या केन्द्रीय शब्दों) के साथ कुछ तलाघ्जमें(रिआयते–लघ्फ्घ्जी) होते हैं जो उस जबान के बोलनेवालों के लिए अर्थों की नई सतह उजागर करते हैंय मस्लन् ये कि हमारे यहाँ एक लघ्फ्घ्ज 'नकाब' अलग–अलग अर्थों में इस्तेमाल होता है। जिसका आशय कभी 'बड़े खूबसूरत और दिलकश' से है और कभी इसके बरअक्स भी होता है। मस्लन् नकाबपोश डाकू और चोर भी हो सकता है, कोई समाजी मुजरिम भी, और कोई हसीना भी। अब इस लफ्ज को इस्तेमाल करनेवाले पर ये निर्भर है कि वो जिस भाव को व्यक्त करने के लिए ये लघ्फ्घ्ज इस्तेमाल कर रहा है उसे ऐसे सियाघ्को–सबाघ्क(प्रसंग या परिप्रेक्ष्य) में इस्तेमाल करे कि पढ़नेवाला उसके भाव तक पूरी तरह न सही तो किसी–न–किसी हद तो पहुँच ही जाये। मिर्जा गालीब का एक मशहूर शेर है।

आराइशे–जमाल से फारिघ्ग नहीं हनोज
पेशे–नजर है आइना दायम नकाब में

यहाँ नकाब, आराइश, आइना सभी एक–दूसरे के तलाघ्जमे हैं और इस बात का भी इशारा करते हैं कि ये नकाब महघ्ज कपड़े का एक टुकड़ा नहीं है, बल्कि इसके अलावा भी बहुत

कुछ है। इस शेर को हम बड़ी आसानी से कायनात के सृजन से लेकर (इसकी निरन्तर निर्माण–प्रक्रिया जो हर लम्हा जारी–ओ–सारी है) पर इसे लागू(चसल) कर सकते हैं। अब अगर हम इसको तसव्वुघ्फ (भक्ति) के मस्अले से मिलाकर देखें कि कायनात को निर्मित करनेवाला जमील(रूपवान्‌, हसीन) है और वो अपनी कायनात के हुस्न को यानी घ्खुद अपने हुस्न को लगातार सँवारने में मस्रूघ्फ है तो शायद गालिब के इस शेर के साथ भी इंसाघ्फ कर सकेंगे और अपने जौघ्क के साथ भी। शायद इसी किस्म की बात इकबाल ने भी कतई दूसरे लघ्फ्घ्जों में कही है।

ये कायनात अभी नातमाम है शायद

कि आ रही है दमादम सदाए कुंफुदे

vo/kS'k dqekj tkSgjh %जदीदियत के असर में रचे गये अदब में बहुत–सी अलग–अलग आवाघ्जें मिल जाती हैं, शायरी में ज्यादा और फिक्शन में अपेक्षाकृत कम जहाँ तक इनफिरियादत (विशिष्ट या अद्वितीय) और तजुर्बापसंदी का सवाल है इस जमाने में ऐसी आवाघ्जों को उँगुलियों पर शुमार करना भी दुश्वार है। इसके बहुत–से कारणों में एक अहम वज्ह कलमकारों को 'शबघ्खून' जैसे प्लेटफार्म का मयस्सर आना भी मालूम होता है। 'शबघ्खून' के अलावा किसी और रिसाले ने शायद ही वो जुर्अत की हो कि हर तरह की तह्रीर(लिखित सामग्री), हर तरह की तज्रुबापसन्दियों को पाश्क तक पहुँचाया हो। अगर 'शबघ्खून' न होता तो शायद इतने तजुर्बा रंगों की रंग–बिरंगी तह्रीरें सामने न आतीं ,इस सिल्सिले में आप क्या कहना चाहेंगे?

eqdS'k ijokuk ^vtesjh*% आपका ये खयाल बिल्कुल सही है। विभिन्न और रंग–बिरंगी आवाजों को लोगों तक पहुँचाने के लिए कोई अच्छा और बावघ्कार जरिया होना .जरूरी है और ये हर दौर में होता रहा है। आपने यकीनन् पढ़ा होगा कि मौलाना सलाहुद्दीन अहमद की पत्रिका 'अदबी दुनिया' में तरक्घ्कीपसन्द और उस दौर के जदीद, दोनों तरह के अघ्फ्सानानिगारों की रचनाओं को इस तरह महिमा–मण्डित करके छापा गया कि वो नाम अघ्फ्सानवी अदब(कथा–साहित्य) का वघ्कार(शोभा) बन गये। कृ

ष्णचन्द्र(कृष्ण चन्दर), मण्टो, राजेन्दर सिंह बेदी, अघ्जीघ्ज अहमद वघ्गैरह की .खासियतों को पूरी तरह से उजागर करने में 'अदबी दुनिया' का बहुत बड़ा रोल रहा है। इसी तरह इसी पर्चे में मीराजी ने जदीद नज्म के बारे में बहुत कुछ लिखा और शायद कुछ नज्मों के तङ्काबों का भी सिल्सिला शुरू किया। 'साघ्की' में 'झलकियाँ' (मुहम्मद हसन अस्करी का कालम) के उन्वान के तहत उस दौर की नयी रचनाओं के बारे मुघ्ख्तसर अन्दाघ्ज में बड़े दिलकश और अर्थपूर्ण इशारे दिये जाते थे। दूर क्यों जाइए, हमारे यहाँ आघ्जादी के बाद 'सौघ्गात', 'सबा' और 'शबघ्खून' जैसे रिसालों ने नये अदब और नये अदीबों को पहचान दिलाने में घ्गैर–मामूली किरदार अदा किया है। कहने का मतलब ये है कि किसी प्लेटघ्फार्म का होना तो घ्जरूरी है, शर्त ये है कि उस पत्रिका का सम्पादक या सम्पादक–मण्डल .खुद भी इतनी ताघ्कत रखता हो कि वो अपनी पत्रिका की तह्रीरों से लोगों को परिचित करा सके या उन्हें महत्त्वपूर्ण ढंग से स्थान दिला सके और शायद इसीलिए हर अच्छी पत्रिका का एक मिघ्जाज होता है या होना चाहिए। 'शबघ्खून' में छपनेवाली चीघ्जों के सम्बन्ध में एक बात तो माननी पड़ेगी कि उन तज्रुबाती तह्रीरों की वज्ह से कुछ नया करने का एक रुज्हान तो पैदा हुआ। कई नये लिखनेवाले तब्दीलियों की तरफ मुतवज्जो(आकृष्ट) हुए और नये–नये अन्दाघ्ज की चीघ्जें सामने आने लगीं। इसको हम ये भी कह सकते हैं कि 'शबघ्खून' ने आघ्जादी के बाद पैदा होनेवाले अदबी जमूद(गत्यावरोध या ठहराव) को तोड़ने का काम अंजाम दिया। ये बात अलग है कि इसमें छपनेवाली कुछ तह्रीरें शायद पूरी तरह से अदबी मेआर पर खरी न उतर सवेंह्, जिसे .खुद बाद में 'शबघ्खून' ने रद्द कर दिया, लेकिन ताजुर्बबुत की एक अपनी अहमियत होती है। बाद में आनेवाले लोग उन तजुर्बात से कुछ सीख हासिल कर सकते हैं और कुछ बसीरत ।

vo/k'k d|ekj tkgjh '.खबरनामा शबघ्खून'–१८ में जनाब .जफर इकबाल का एक लेख नजर से गुघ्जरा जिसमें उन्होंने मज्रूह सुल्तानपुरी से लेकर बानी, .जेब .गौरी, मुहम्मद अल्वी, शहरयार और गुघ्फरान सिद्दीघ्की जैसे जदीद शोहरा को महघ्ज मौजूँगो .करार दिया है और ये भी कि भारत में जदीद समकालीन हिंदी गजल का दूर–दूर तक पता

नहीं। इन लब्ध प्रतिष्ठित जदीद शायरों को मौघ्जूँगो .करार देना कहाँ तक दुरुस्त है। इस तरह की बयानबाघ्जी को आप किस नजर से देखते हैं ? और जफर इकबाल की शायरी आपको किस कैफियात से दो–चार करतें है?

e|d|'k ijokuk ^vtej|h* ½ '.खबरनामा शबघ्खून'–१८ में जनाब .जफर इकबाल का एक लेख नजर से गुघ्जरा जिसमें उन्होंने मज्रूह सुल्तानपुरी से लेकर बानी, .जेब . गौरी, मुहम्मद अल्वी, शहरयार और गुघ्फरान सिद्दीघ्की जैसे जदीद शोहरा को महघ्ज मौजूँगो .करार दिया है और ये भी कि भारत में जदीद समकालीन हिंदी गजल का दूर–दूर तक पता नहीं। इन लब्ध प्रतिष्ठित जदीद शायरों को मौघ्जूँगो .करार देना कहाँ तक दुरुस्त है। इस तरह की बयानबाघ्जी को आप किस नजर से देखते हैं ? और जफर इकबाल की शायरी आपको किस कैफियात से दो–चार करतें है?

Sunday
Monday
Tuesday
Wednesday
Friday
Saturday
2018-5-6 19:05

उत्कृष्ट शिक्षा के 60 वर्ष

(1958-2018)

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य)

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

नेहरू नगर, नई दिल्ली-110065

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

दो दिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी

प्रमाणित किया जाता है कि

अवधेश कुमार जौहरी, शोधार्थी, भीलवाड़ा, राजस्थान

ने पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य) द्वारा 'केन्द्रीय हिन्दी संस्थान', मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के सहयोग से 2-3 नवम्बर, 2017 को 'भक्तिकालीन कविता : भारतीय संस्कृति के विविध आयाम' विषय पर आयोजित दो दिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया और 'भक्ति आन्दोलन और कबीर' विषय पर अपना प्रपत्र प्रस्तुत किया।

दिनांक : 3 नवम्बर, 2017

(डॉ. हरीश अरोड़ा)
संयोजक

(डॉ. रवीन्द्र कुमार गुप्ता)
प्राचार्य

सहभागिता प्रमाण पत्र

भारत पाकिस्तान बांग्लादेश भूटान नेपाल

अंतरराष्ट्रीय ग़ज़ल अकादमी के तत्वावधान में

अंजुमन प्रकाशन की प्रस्तुति

प्रथम अंतरराष्ट्रीय ग़ज़ल संगोष्ठी–इलाहाबाद, भारत

जश्न-ए-ग़ज़ल

10,11,12 अक्टूबर 2015

www.jashneghazal.com

श्री अवधेश कुमार जौहरी

अंतरराष्ट्रीय ग़ज़ल अकादमी के तत्वावधान में अंजुमन प्रकाशन के सौजन्य से संपन्न हुई त्रिदिवसीय अंतरराष्ट्रीय ग़ज़ल संगोष्ठी में आपकी गरिमामय उपस्थिति एवं उदार सहभागिता हमारे लिए गर्व एवं हर्ष का सुखद कारण बनी है। साहित्य-संवर्धन के सद्प्रयास में हम आपके अनवरत सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

आयोजक	समारोह स्थल
अंजुमन प्रकाशन	**हिन्दुस्तानी एकेडेमी**
942, आर्य कन्या चौराहा, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश (भारत)	12-डी, कमला नेहरू मार्ग इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश (भारत)
(वीनस केसरी)	(जनाब एम. ए. क़दीर)
अध्यक्ष : अंजुमन संस्था	अध्यक्ष : जश्न-ए-ग़ज़ल 2015

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

हिन्दी विभाग

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

द्वारा आयोजित एवं

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली तथा

आदिवासी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति संस्थान, जोधपुर

द्वारा प्रायोजित

द्वि- दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

'हिन्दी कथा साहित्य: नई सदी का स्वर'

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/सुश्री/श्रीमती/प्रो./डॉ. अवधेश कुमार पद शोधार्थी

संस्था ज्ञानकी देवी बजाज राजकीय महा., कोटा ने हिन्दी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर में

दिनांक 11-12 फरवरी, 2017 को आयोजित 'हिन्दी कथा साहित्य: नई सदी का स्वर' विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी में मुख्य वक्ता/सत्राध्यक्ष/

विषय-विशेषज्ञ/पत्र-वाचक के रूप में सक्रिय भाग लिया एवं नई सदी में बदलता साहित्यिक परिदृश्य समकालीन हिंदी ग़ज़ल की परंपरा

विषय पर पत्र-वाचन कर संगोष्ठी को गरिमा प्रदान की।

(प्रो. देवेन्द्र कुमार सिंह गौतम)
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

(प्रो. श्रवणकुमार मीना)
निदेशक, राष्ट्रीय संगोष्ठी

Jawaharlal Nehru Post Graduate Teacher's Training College

Sakatpura, Kota-324008 (Raj.)

Recognized by N.C.T.E. & Affiliated to university of Kota, Kota

National Seminar

जीवन निर्माण में मूल्य एवं शिक्षा की भूमिका

06-07 March, 2017

Estd. 1964

Certificate

This is to certify that Prof. / Dr. / Mr. / Ms. ....Avadhesh Kumar (Scholar)

of.....Kota University, Kota.......................................*has*

Participated / Presented a paper / Chaired the Session.

Title of Paper ..."जीवन मूल्यों के निर्माण में शिक्षा की भूमिका"

Dr. Sapna Joshi
Co-Coordinator

Prof. Sushma Singh
Principal & Coordinator

Smt. Mamta Sharma
Chairman

स्वामी विवेकानन्द शोधपीठ, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

राष्ट्रीय संगोष्ठी

"विज्ञान, आध्यात्म एवं विवेकानन्द"

(SSV-2017)

19 – 20 सितम्बर 2017

(चतुर्दशी – अमावस्या, कृष्ण पक्ष, अश्विन माह, विक्रम सम्वत् 2074)

आयोजक

सह आयोजक

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री/श्रीमती/श्री/डॉ./प्रो. AVDHESH KUMAR JOHRI

संस्था University of Kota, Kota (Govt. P.G. Girls College, KOTA) ने

''विज्ञान, आध्यात्म एवं विवेकानन्द'' विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में आमंत्रित वक्ता/प्रतिनिधि/प्रतिभागी के रूप में दिनांक 19-20 सितम्बर 2017 को भाग लिया एवं शोध पत्र हेतु आमंत्रित व्याख्यान/मौखिक/पोस्टर ✓ द्वारा विषय " स्वामी विवेकानंद और आध्यात्मिक चेतना " पर प्रस्ततीकरण किया।

डॉ. एन. एल. हेड़ा
आयोजन सचिव

डॉ. संदीप सिंह चौहान
कुलसचिव

डॉ. भवानी सिंह
संयोजक

पंजीकरण सं. 185/2006

साहित्यांचल

भीलवाड़ा, राजस्थान

राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के सौजन्य से

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री / सुश्री ....

पद नाम ....शोधार्थी....... संस्था .... ने साहित्यांचल, भीलवाड़ा द्वारा

आयोजित ''संत कबीर पर'' वर्तमान संदर्भों में संत कबीर - साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता''

विषय पर दिनांक 10 एवं 11 जून 2017 को राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी में सहभागिता की।

शोध पत्र का विषय ....

(डॉ. प्रभु चौधरी)
राष्ट्रीय अध्यक्ष
राष्ट्रीय शिक्षक संचेतना

(श्रीमती ममता मोदानी)
अध्यक्ष
साहित्यांचल

(सत्यनारायण व्यास 'मधुप')
सचिव एवं संपादक
साहित्यांचल

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

"नई सदी में बदलता साहित्यिक परिदृश्य समकालीन हिंदी ग़ज़ल की परम्परा"

अवधेश कुमार जौहरी
३-के-८ 'घरौंधा'चन्द्र शेखर आजाद नगर,
भीलवाड़ा (राजस्थान)पिन -3111001,
संपर्क -09001712728

हिंदुस्तान ही नहीं अपितु दुनियां की कई देशो में ग़ज़ल साहित्य की गौरवशाली परम्परा रही है | हिंदुस्तान में सदियों से ग़ज़ल सभी वर्गों को प्रभावित करती आ रही है | ग़ज़ल ने धीरे धीरे काल और परिवेश के अनुसार स्वं को आम बोलचाल की भाषा में ढाल लिया है | जिससे ग़ज़ल को खासो -आम ने सर आँखों पर बिठाया है | यद्यपि ग़ज़ल जीवन की सभी विषयो पर अपना हस्ताक्षर करता है ,तथापि आम आदमी की पीड़ाओ,कुंठाओ,और सामाजिक ,राजनैतिक ,आर्थिक विद्रुपावों पार जिस शिद्दत के साथ स्वतन्त्रोत्तर काल में ग़ज़ले नज़्मे कही गयी ,उससे पहले नहीं | दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल संग्रह 'साये में धूप 'ने देश-विदेश में नए कीर्तिमान स्थापित किये है ,इसी परम्परा में आज देश भर के सैकड़ो रचनाकार ग़ज़ले कह रहे है,और पूरी शिद्दत के साथ कह रहे है | हिंदी साहित्य में ग़ज़ल कहने वालो की संख्या में खासी वृद्धि हुई है,यही कारण है की आज ग़ज़ल पर पी.एच.डी.और डी .लिट. जैसे शोध प्रबंध लिखे जा रहे है और लिखे जा चुके है |

यद्यपि हिंदी साहित्य में ग़ज़ल लेखन और ग़ज़लगोई की परम्परा प्राचीन है | तथापि ये परिपुष्ट परम्परा को ले कर हिंदी ग़ज़ल की परिपूर्णता और दिनों दिन अग्रसर हो रही है | समकालीन हिंदी ग़ज़ल लेखन लगभग 1974-75 में शुरू हुआ था , जबकि हिंदी कविता में ग़ज़ल के नए रंग अमीर खुसरो एवं कबीर के काव्य में भी देखने को मिलते है ,तत्पश्चात तो मनो ग़ज़ल काव्य विधा का मनो एक बाढ़ ही आ गयी | भारतेंदु हरिश्चंद्र ,सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ,शमशेरसिंह ,त्रिलोचन ,बलबीर सिंह 'रंग', शम्भूनाथशेष, हरीकृष्ण प्रेमी,चिरंजीव 'नीरज',रामावतार त्यागी आदि आदि ने इस परम्परा को सम्मान पूर्वक गति देने में अविस्मर्णीय भूमिका का निर्वहन किया है ,यद्यपि उक्त परम्परा में परीपुष्ठता हिंदी ग़ज़ल में दुष्यंत कुमार में ही आयी उनका स्पष्ट विद्रोह ,क्रांति ,चुनौती आम आदमी की बदहाली का दृश्य ,जो दुष्यंत कुमार ने खींचा है ,उससे ही उनके ग़ज़ल एवं कलम की ताकत को आँका जा सकता है ,उनकी युग प्रवर्तिक रचना के कारण ही संभवतया उन्हें समकालीन हिंदी ग़ज़ल का सूत्रधार और नए युग का सूत्रपात माना गया |

कहाँ तो तय था चिरागां हरेक घर के लिए |

कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए ||

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine
(बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

कुछ विद्वानों का ग़ज़ल के सन्दर्भ में मानना है की ग़ज़ल विशुद्ध रूप से हिन्दुस्तानी सभ्यता की देन है, दुनियां में और कहीं पर हिंदुस्तान के आलावा दो लाइनों का दोहा नहीं मिलता है ,दोहा प्राकृत मात्रिक छंद है जिसका साहित्य में सबसे प्राचीन प्रयोग अंग जनपद के सिद्ध कवि 'सहरपा' के अंगीक भाषा में लिखे पदों से प्राप्त होते है ,यहाँ यह बता देना प्रासंगिक होगा की 'सहरपा' को हिंदी साहित्य के प्रथम कवि होने का गौरव भी प्राप्त है |

ग़ज़ल की भाषा काव्य भाषा है जो दो सम्प्रदायों को जोड़ने वाली सशक्त विधा है हिन्दुस्तानी ही नहीं दुनिया के कई देश भाषा के आधार पर सम्प्रदायों को देखते हैं ,उर्दू भषा को इस्लाम का प्रतीक और हिंदी भाषा को हिन्दू का प्रतीक मानते है ,यह आग अंग्रेजों ने आज़ादी से पहले लगाई थी ,परन्तु समकालीन हिंदी ग़ज़ल ने दोनों ही भाषाओ और सम्प्रदायों को भाव भूमि प्रदान कर नए युग का सूत्रपात किया है, ग़ज़ल सिर्फ ग़ज़ल है ये कोई हिंदी या उर्दू की भाषिक विवाद का विषय नहीं है अपितु इससे उठ कर उन्मुक्तता की उड़ान भरने वाली एक भावपूरित साधना है |

उर्दू की नर्म शाख़ पर रूद्राक्ष का फल है |
सुंदर को शिव बना रही हिंदी की ग़ज़ल है ||

हालांकि पूर्व में संकेत किया जा चूका है की काव्य के क्षेत्र में ग़ज़ल का इतिहास बहुत पुराना है ,हिंदी में 'अमीर खुसरो' और उर्दू में 'वाली' को प्रथम गज़लकार माना जाता है | तेरहवीं शताब्दी में सूफी गज़लकारअमीर खुसरो जब ---

जेहले मिसकी मकुन तगाफुल ,दूरी नैना बताये बतियाँ |

किताबे हीजरा न दारमें, जांन लेहूँ काहें न लगाये छतिया ||

जैसा शे'र कह कर ब्रज भाषा का पुट ग़ज़ल में लेते दिखाई देते हैं तो वहीँ 'कबीर' जैसे युग प्रवर्तक ने अपने सधुक्कड़ी भाषा में कहा है –

हमन है इश्क़ मस्ताना हमन को होशियारी क्या |

रहे आज़ाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या ||

वहीँ प्रेम दीवानी मीरा ने भी " ओ कान्हा " कह कर हिंदी राजस्थानी भाषा का परिचय दिया ये ग़ज़ल के आरंभ का युग था जब सभी भारतीय भाषाओँ और बोलियों में ग़ज़ल बड़े शिद्दत और सम्मान के साथ प्रवेश कर रही थी ग़ज़लगो अपनी उड़ान के लिए भाव भूमि तैयार कर रही थी |

सोलहवीं शती में गोलकुंडा के बादशाह कुतुबशाह ने ग़ज़ल में दाख़िहनी हिंदी का प्रयोग किया ,जिसको 'वाली' ने गति प्रदान की फिर क्या कहना था की 'मीर' की ग़ज़लगोई की मिठास ,मिर्ज़ा ग़ालिब का अंदाज़ेबयां ,'ज़ौक़' के नए व्याकरण तथा 'बहादुरशाह ज़फर आदि युग प्रवर्तक ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साज़ और आवाज़ का प्रतीक बनाया ,वाही मुहम्मद इकबाल ने हिंदुस्तान में शुद्ध रूप से इस परम्परा को राष्ट्रीय

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

स्तर प्रदान किया , राष्ट्रीयता,और देश भक्ति को समर्पित गजलों को हिंदुस्तान के हवाले किया | ग़ज़ल को प्रगतिशील रंग देने वाले ग़ज़लकारों में सरदार ज़ाफरी ,कैफ़ी आज़मी ,साहिर लुधियानवी आदि का नाम बहुत ही सम्मान के साथ लिया जाता है आज़ादी के जंग में शामिल होने वाले नामी शायर थे 'रामप्रसाद बिस्मिल' अशफाक उल्लाह खान तथा ग़ज़ल को दार्शनिक स्पर्श देने वालों ग़ज़लकारों में 'फ़िराक गोरखपुरी' तथा 'बशीर बद्र ','वसीम बरेलवी ;कातिल शफ़ाई जैसे नामी-ग्रामी शायरों का नाम बड़े ही सम्मान के साथ लिया जाता है |

समकालीन हिंदी ग़ज़ल से पूर्व ग़ज़ल की परम्परा हिंदी कवियों के नाम से जोड़ी जाती रही है | आधुनिक युग के प्रथम कवि 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' ने 'रसा' उपनाम से गज़लें कही ,तो 'अयोध्या सिंह उपाध्याय ने 'हरिऔध' के नाम से ग़ज़ल के व्याकरण को पोषित किया , 'निराला' और 'प्रसाद' ने भी हिंदी में गज़लें कही है, जय शंकर 'प्रसाद' द्वारा रचित प्रेम की एक छटा देखिये –

सरासर भूल करते है उन्हें जो प्यार करते है |

बुराई कर रहे है और अस्वीकार करते है ||

उन्हें अवकाश ही इतना कहाँ है मुझसे मिलने की |

किसी से पूछ लेते है बस यही उपकार करते है ||

इसी परम्परा में श्री रूप नारायण त्रिपाठी ,एवं श्री बलबीर सिंह जी का नाम हिंदी ग़ज़ल की परम्परा में बड़ा नाम माना जाता है,और त्रिलोचन जी और शमशेर सिंह जी हिंदी ग़ज़ल की परम्परा के बहुत नामचीन व्यक्तित्व में गणना की जाती है, जिनके गज़लों में हिंदी और उर्दूपन का मणि कांचन सामंजस्य दीखता है |

यद्यपि पूर्व में हिंदी ग़ज़लों में कहीं न कहीं परम्परा ही मुखरित थी | परन्तु जब दुष्यंत कुमार की गज़लें प्रकाश में आयी तो निश्चित तौर पर नया तेवर ,नया आक्रोश,व्यंग था ,आम आदमी की व्यथा थी ,अतृप्ति थी ,असंतोष था ,सुगबुगाहट, छटपटाहट और, नयेपन का शंखनाद था काव्य की दुनिया में परिवर्तन की मशाल थी | ये सभी परिवर्तन १९७६ में पत्रकारिता के क्षेत्र से शुरू हुआ ,जिसका नाम था 'सारिका' जिसमें मूल विषय था "दुष्यंत-स्मृति-विशेषांक" इस प्रकाशन ने साहित्य में एक नए अध्याय के द्वार खोल दिए इस अंक में कुछ गज़लें थी जो शासन और प्रशासन की गड़बड़ व्यवस्था पर आक्रोशित होती हुई,आम आदमी की पीड़ा ,कुंठा, अतृप्ति ,असंतोष का स्वर मुखरित करती है चीखती पुकारती गज़लें कहती है –

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं|

मेरी कोशिश है की सूरत बदलनी चाहिए ||

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में ही सही |

हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए ||

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine
(बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

जैसी युगांत करी शे'र दुष्यंत कुमार ने कहे जिसका अनुसरण हजारो बार सम्मेलनों में साहित्य जगत में राजनीती जगत में लोगो ने आपनी बात को वज़न देने के लिए कहे अभी समाज की समस्याओं को लेकर कालांतर में सिने कलाकार आमीर खान ने 'सत्य मेव जयते' में भी इसी शे'र से धारावाहिक शुरू की थी | दुष्यंत कुमार की युगांतकारी ग़ज़लें व्यवस्था की पोल खोलती हुई कहती है –

गूंगे निकल पड़े है ज़ुबां की तलाश में |

सरकार के खिलाफ ये साज़िस तो देखिये ||

गूंगी बहरी सरकार के खिलाफ जनता की जुबान बन दुष्यंत कुमार ने वर्षों से त्रस्त जनता ,ठगी जनता को आत्म विश्वास का भाव पैदा करने में आहम भूमिका का निर्वहन किया , उन्होंने कहा

कौन कहता है आसमाँ में सुराख़ नहीं होता |

एक पत्थर तो तबियत से उछलो यारों ||

कहा जाता है है की 'सारिका' में जब "दुष्यंत –स्मृति-विशेषांक" छपा तो एक पत्रिका के चाहने वालों की संख्या एक दिन में एक लाख से अधिक था,चुकी इस पत्रिका ने सभी बंधन तोड़ दिए थे ये सिर्फ साहित्यकार वर्ग के पास ही नहीं अपितु आम जनता के पास आपनी पहुँच बनाने लग गयीजिससे साहित्य भी जिससे साहित्यजगत ने भी आपने पुराने घिसे पिटे अवधारणाओ को छोड़ने का संकल्प लिया, तब ही से हमे समकालीन हिंदी ग़ज़ल की शुरुआत मान लेना चाहिए |

अब दौर ऐसा आगया की हिंदी में ग़ज़ल एक आदत सी हो गयी और आदत कभी जाती नहीं जाहिर है की मंचों पर ग़ज़ल हावी हो गए, समकलीन हिंदी ग़ज़ल के इस तेवर से अन्य भाषाएँ भी प्रभावित होने लगी ,नतीजा ये था की अन्य भारतीय भाषाओ में भी ग़ज़ल कहने की परम्परा का सूत्रपात हो गया ,अब आलम ये है की अंग्रेजी भाषा में भी ग़ज़ल कही जा रही है ,इंग्लैण्ड के अनेक कवि मसलन –ब्रियान हेनरी ,डेनियल हाल ,और शेरोन ब्रियान जैसे नमी ग्रामी कवि बाकयदा अंग्रेजी भाषा में ग़ज़ल को आपनी कलम की ताकत बना रहे है ,उर्दू भाषा की निकलने वाली 'शाइर' नमक पत्रिका ने "अंग्रेजी ग़ज़ल और ग़ज़लकार" नमक शीर्षक से इनके बारे में छपा है |

यद्पि समकलीन हिंदी ग़ज़ल साहित्य की बात दुष्यंत कुमार से शुरू होती है हिंदी साहित्य में दुष्यंत कुमार 'नई कविता दौर के अत्यधिक सशक्त हस्ताक्षर थे ,तथापि ग़ज़ल साहित्य की बनावट और बुनावट का जहाँ तक प्रश्न है ,वहाँ ग़ज़ल साहित्य हिंदी भाषा की अपनी उपज की नहीं है,ये सिर्फ हिंदी में स्थापित किया गया है, एक अमूल्य धरोहर के रूप में और ग़ज़ल साहित्य के लिए भी बहुत सही है ,की उसको अपने अस्मिता के विकास के लिए सुधि पाठको और रचनाकरों द्वरा हिंदुस्तान की सर ज़मीन मुहय्या करवाया गया | जहाँ उसको फलने और फूलने के लिए बहुत विस्तृत भाव भूमि तैयार मिल गयी |

ISSN 2454-2725
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

ग़ज़ल शब्द अपने आप में सौंदर्य का बोधक है ,भावानुभूति प्रधान प्रेरणा दायक बहुआयामी शब्दों वाला अविस्मर्णीय काव्य विधा है,भौतिकवादी प्रतिपादन के आधार पर समकालीन ग़ज़लों को पूर्ण रूप से समझ पाना मुश्किल है क्योंकि परिस्थितियों में गुणात्मक परिवर्तन हुआ है ,समकालीन हिंदी ग़ज़लों के सामने वातावरण और परिस्थिति की कड़ी चुनौती का दौर भी है ,दुष्यंत कुमार के सामने विचारो का पूरा कुनबा हुआ करता था, पर आज विचारों में दूषित वातावरण भी है ,जिसको कुछ विद्वान् बौद्धिक आतंकवाद के नाम से जानते है, ग़ज़ल के लिए भावना और विवेकशीलता का लयात्मक सम्प्रेषणीयता की आवश्यकता होती है तथा प्रगतिशाली चेतना ने इस काव्य विधा को अत्यंत तीक्ष्ण और पैना बना दिया है जिससे दुष्यंत कुमार के बाद ग़ज़ल साहित्य का तेवर और अधिक सर पर चढ़ के बोलने लगा है | अब ग़ज़लकार की पैनी निगाहें सब कुछ देख लेती है ,स्कलिन हिंदी ग़ज़ल विषयवस्तु में सामाजिक विषमतायें ,ज्वलंत समस्याएँ ,विसंगतियां ,विरोधाभास था, विद्रूपताए आदि आदि अनेक विषयों ने अपना अधिकार ग़ज़ल साहित्य पर किया है |

दुष्यंत कुमार के बाद ग़ज़ल साहित्य अपने सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार आपने आपको उस मुकाम पर प्रतिष्ठित करता है जहाँ भाषिक भेद गौण हो जाते है और मानवीय भावना परक बाते श्रेष्ठ हो जाती है ,जहाँ पाठक और लेखक का संसार मानवीय चेष्ठाओं और जटिलताओं को यूँ का यूँ ग़ज़ल में उतार कर अभिव्यक्ति प्रदान किया जाने लगा है दैनन्दिन ग़ज़ल पाठको और ग़ज़लकारों की बढ़ती संख्या में वृद्धि इस बात का प्रमाण है | गम के गलियारे से संसद के दरवाजे तक बड़े सम्मान से इसका नाम लिया जाता है | ये बात सर्व विदित है की ग़ज़ल मध्य युग में सिर्फ बुद्धिजीवियों और धनाढ्य वर्ग में ही प्रचलित थी समकालीन हिंदी ग़ज़ल ने आम आदमी तक पंहुचाया, पहले ग़ज़ल का विषय सिर्फ प्रेम और शृंगार हुआ करता था जो अब आम आदमी की रोजमर्रा की पीड़ा संवेदना भी समाहित हो गयी हिंदी साहित्य के **1936** के बाद में प्रगतिशील आन्दोलन ने हिंदी और उर्दू अदब के साहित्यकारों को अतीत की रौशनी में भविष्य सोचने और समझने का मार्ग प्रशस्त करता है उस मार्ग का एक पड़ाव समकालीन हिंदी ग़ज़ल बनें जहाँ से अनेकानेक रस्ते फूटे और अपनी-अपनी मंजिल की तलाश में ग़ज़लगोई चलती रही, दुष्यंत कुमार के पश्चात् एक पूरा का पूरा लब्ध प्रतिष्ठित ग़ज़लकारों का समूह ,मनीषी विद्वानों साहित्यकारों का ग़ज़ल चिंतन का बेबाक काफ़िला तैयार हो गया जिसमे बड़ी सिद्दत के साथ बेबाकी से जीवन के हर पहलु को छुआ है,संवारा है, साधा है ग़ज़ल के लिए सबसे आवश्यक है स्वस्थ कल्पना,परिपक्व सोच ,भाव तथा भावाभिव्यक्ति तथा इन सभी के लिए आवश्यक है 'बहर' फिर 'काफिये' और उसके बाद 'रदीफ़' हिंदुस्तान में ग़ज़ल की ऐसी ही परिपक्व जमीन है जहाँ पर आज मुनव्वर राणा ,निदा फ़ाज़ली,डॉ.जानकी प्रसाद,राहतइन्दौरी,बकौल कुमार 'बरतर',डॉ.कुंवर 'बेचैन' आर.पी.शर्मा,डॉ.दरवेश भारती 'महर्षि',डॉ.रामदरश मिश्र ,डॉ.शेरजंग गर्ग, डॉ.अमेन्द्र,कमलेश्वर, माणिक वर्मा, पुरुषोत्तम 'यकीन',अदम 'गोंडवी' डॉ.शम्भुनाथ तिवारी,दीक्षित दनकौरी,ज़ाहिर कुरैशी आदि ग़ज़लकारों ने इस ग़ज़ल की परम्परा को पुर जोर तरीके से आगे बढ़ाया है ,इनकी गज़लों में आम बोलचाल की भाषा में आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिल रही है इसी परम्परा में पत्र-पत्रिकाओ ने भी अपना स्थाई स्तम्भ के रूप में ग़ज़ल को स्थान दिया है ,'दीक्षित दनकौरी' ने 'ग़ज़ल दुष्यंत के बाद' में समकालीन हिंदी ग़ज़ल १९७५ के बाद लगभग सभी गज़लकारो की गज़लों का संकलन किया है | इसके अतिरिक्त कथादेश,आज-कल ,नया-ज्ञानोदय,वसुधा,पहल,हंस,विभिन्न साहित्य अकादमी की पुस्तकों में भी गज़लों को स्थाई स्तम्भ के रूप में रखा गया है, जिससे ग़ज़ल साहित्य की धरा का सतत प्रवाह हो रहा है ,आवश्यकता इस बात की है की हिंदी में महत्वपूर्ण ग़ज़ल विधा का निष्पक्ष,तठस्थ, एवं वस्तुपरक आंकलन

जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine ISSN 2454-2725
(बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine) www.jankritipatrika.in

किया जाना चाहिए ताकि समकालीन हिंदी ग़ज़ल, हिंदी में भी वो अपना स्थान बना सके जिसकी वो अधिकारनी है।

अवधेश कुमार जौहरी
३-के-८ 'परौंधा'चन्द्र शेखर आजाद नगर,
भीलवाड़ा (राजस्थान)पिन -3111001,
संपर्क -09001712728

सन्दर्भ सुचि

1. अच्छी ग़ज़लें – सं.रमेश चन्द्र श्रीवास्तव (कुसुम प्रकाशन,इलहाबाद)
2. अमीर खुसरो और उनका साहित्य - सं. डॉ.भोला नाथ तिवारी
3. आधुनिक हिंदी काव्य में यथार्थवाद – सं. डॉ.नरेश (राजपाल एंड संस, दिल्ली १९७३)
4. आवाजो के घेरे – सं. दुष्यंत कुमार (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९६३)
5. ग़ज़ल विधा – सं. आर .पी .शर्मा 'महर्षि'
6. उर्दू की बेहतरीन शायरी – सं. प्रकाश पंडित (हिंदी पॉकेट बुक्स,दिल्ली १९८०)
7. ग़ज़ल एक यात्रा – सं.सूर्य प्रकाश शर्मा (विश्व भारती प्रकाशन,नागपुर(१९८८)
8. जलते हुए वन का बसंत – सं दुष्यंत कुमार (अनादी प्रकाशन ,इलहाबाद)
9. दुष्यंत कुमार ;रचनाएँ और रचनाकर – सं.गणेश अष्टेकर (पञ्चशील प्रकाशन,जयपुर)१९८१

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine
(बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-9231

अंजुमन

साहित्यिक छमाही पत्रिका

वर्ष1, अंक1, जनवरी 2016

प्रकाशक

अंजुमन प्रकाशन

942, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) पिन- 211003

www.anjumanpublication.com

अनुक्रमणिका

4 / **वीनस केसरी** हम अभी से क्या बताएँ क्या हमारे दिल में है

5 / **राणा प्रताप सिंह** जश्न-ए-ग़ज़ल के बारे में

आलेख

7/ **शम्सुर्रहमान फ़ारुक़ी** क्लासिकी ग़ज़ल की शेरीआत

17/ **गोपीचन्द नारंग** भारतीय चिंतन व दर्शन और उर्दू ग़ज़ल

20/ **जावेद अख़्तर** उर्दू साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन

30/ **निश्तर ख़ानक़ाही** ग़ज़ल की विधागत संरचना

35/ **डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल** हिंदी-ग़ज़ल की अस्मिता का प्रश्न

38/ **प्रो. अहमद महफ़ूज़** क्लासिकी उर्दू ग़ज़ल की तसव्वुराती दुनिया

40/ **प्रो. शहपर रसूल** नई ग़ज़ल की रबअ सदी

43/ **सुल्तान अहमद** ग़ज़ल पर गुस्सा कब और क्यों आता है?

51/ **आसिफ रोहतासवी** भोजपुरी ग़ज़ल का एक जायज़ा

56/ **अब्दुल बिस्मिल्लाह** ग़ज़ल को ग़ज़ल क्यों कहें

62/ **डॉ. मो. आज़म** इल्मे-बयान

65/ **ज्ञान प्रकाश विवेक** हिंदी ग़ज़ल का मिज़ाज

70/ **डॉ. नरेश** हिन्दी-ग़ज़ल : दशा-अवलोकन

77/ **सौरभ पाण्डेय** आंचलिक भाषा, विशेषकर भोजपुरी भाषा में ग़ज़ल परम्परा – इतिहास और वर्तमान

84/ **एहतराम इस्लाम** हिन्दी वाङमय और ग़ज़ल

89/ **डॉ. साएमा बानो** नारी अस्मिता और हिन्दी ग़ज़ल

93/ **पूनम देवी** समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में प्रकृति चेतना का सांकेतिक रूप

97/ **आशीष अन्चिन्हार** मैथिली ग़ज़ल के बारे में

100/ **डॉ. शहनवाज़ आलम** उर्दू ग़ज़ल के ग़ालिब तरीन मौज़ूआत

106/ **आवाज शर्मा** नेपाली भाषा में ग़ज़ल

112/ **डॉ. असलम इलाहाबादी** उर्दू की क़दीम और जदीद शायरात के शायरी के बदलते मंजरनामे

115/ **पवन कुमार** ग़ज़ल- एक सफ़र : नौजवान शुअरा और शायरी का मुस्तक़बिल

118/ **अवधेश कुमार जौहरी** कुछ बातें, ग़ज़ल की

120/ **आसिम पीरज़ादा** उर्दू ग़ज़ल में तंज़ो-मज़ाह

ग़ज़ल

29 फ़रमूद इलाहाबादी

34 अजय कुमार

55 राम नाथ शोधार्थी

61 अनुराग अनुभव

64 गिरिराज भण्डारी

69 मोहन बेगोवाल

83 सज्जन धर्मेन्द्र

96 धीरेन्द्र शुक्ल

99 अवधेश कुमार जौहरी

105 सुरेखा कादियान 'सृजना'

111 भारत भूषण 'जोश'

114 अजीत शर्मा 'आकाश'

39, 117 भारत भूषण 'जोश'

123 शिज्जु शकूर

123 राजेश कुमारी

124 नन्दल हितैषी

124 विनीत अग्रवाल

125 एहतराम इस्लाम

125 सौरभ पाण्डेय

126 मिथिलेश वामनकर

126 बैद्यनाथ 'सारथी'

127 विपिन श्रीवास्तव दिलकश

127 ज्ञान प्रकाश पाण्डेय

128 पवन कुमार

128 राकेश दिलबर

129 सबा खान

129 फ़रहत एहसास

130 डॉ. असलम इलाहाबादी

130 रवि शुक्ल

131 त्रिवेणी पाठक

131 अख़्तर अज़ीज़

132 डॉ. अमिताभ त्रिपाठी

132 मारूफ़ रायबरेलवी

अवधेश कुमार जौहरी

कुछ बातें, ग़ज़ल की

ग़ज़ल क्या है ?

(1) ग़ज़ल में एक निश्चित बहर/मापनी होती है,जो वास्तव में मात्राओं का एक निश्चित क्रम है जैसे -212 212 212 212 अथवा 'गालगा गालगा गालगा गालगा' अथवा 'फाइलुन फ़ाइलुन फाइलुन फाइलुन' ! ग़ज़ल के सभी मिसरे/पंक्तियाँ/पद एक ही बहर/मापनी में होते हैं !
(2) ग़ज़ल में दो-दो मिसरों/पंक्तियों के कम से कम पाँच शेर होने चाहिए ! प्रत्येक शेर का अर्थ अपने में पूर्ण होना चाहिए अर्थात वह अपने अर्थ के लिये किसी दूसरे शेर का मुखापेक्षी नहीं होना चाहिए ! ग़ज़ल के शेर की एक विशेष कहन होती है, जिसे अंदाज़-ए-बयाँ, वक्रोक्ति,अन्योक्ति,बाँकपन या व्यंजना के रूप में भी देखा जा सकता है, ऐसा कुछ भी न हो तो सपाट बयानी या अभिधा से ग़ज़ल का शेर नहीं बनता है अर्थात लक्षणा और व्यंजना ही आनी चाहिए (3) पहले शेर के मिसरे तुकान्त होते है, इसे 'मतला' कहते हैं ! बाद के प्रत्येक शेर की पहली पंक्ति अनिवार्यतः अतुकांत होती है जिसे 'मिसरा ऊला' कहते हैं तथा दूसरी पंक्ति तुकांत होती है, जिसे 'मिसरा सानी' कहते हैं !
(4) पूरी ग़ज़ल में तुकान्त एक सामान रहता है जिसमे दो खंड होते है -- अंत के जो शब्द सभी पंक्तियों में सामान होते हैं उन्हें 'रदीफ़-पदान्त' कहते हैं,तथा उसके पहले के शब्दों में जो अंतिम अंश सामान रहता है उसे 'क़ाफ़िया-समान्त' कहते हैं ! कुछ ग़ज़लों में 'रदीफ़-पदांत' नहीं होता है, ऐसी ग़ज़लों को 'ग़ैर मुरद्दफ़' ग़ज़ल कहते हैं !
(5) आख़िरी शेर में यदि रचनाकार का उपनाम आता है तो उसे 'मक़ता' कहते हैं !
(6) संक्षेप में कोई रचना तभी ग़ज़ल हो सकती है जब उसमे पाँच बातें हों -- 1. बहर-मापनी 2. रदीफ़-काफ़िया या तुकान्त 3. मतला 4. कम से कम पांच शेर (अश'आर) 5. ख़ास कहन !

हिंदी ग़ज़ल : -

हिंदी ग़ज़ल के विषय में बहुत मत भिन्नता रही है, जो आवश्यक भी है, मतभिन्नता नहीं होगी तो साहित्य में विविधता कहाँ से आयेगी ! हिंदी ग़ज़ल के बारे में सामान्य विचार यह है कि
(1) हिंदी ग़ज़ल में हिंदी शब्दों का प्रयोग प्रमुखता से होना चाहिए.
(2) इसके साथ हिंदी भाषा की एक अलग संस्कृति है,उसका वर्चस्व होना चाहिये,
(3) इतर भाषाओं जैसे उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है तो उन शब्दों का प्रयोग उसी रूप में होना चाहिए जिस रूप में वे हिंदी में बोले जाते हैं और उन शब्दों पर वर्तनी और व्याकरण हिंदी की लागू होना चाहिए ! कुछ उदहारण केवल बात को स्पष्ट करने के लिए --
शह्रशहर, नज़्र नज़र, फस्ल फसल, नस्ल नसल
काबिले-तारीफ़ तारीफ़ के क़ाबिल,
दिलो-जान्न दिल - जान, सुबहो-शाम्न सुबह - शाम,
आसमां आसमान, ज़मीं ज़मीन
अश'आर शेरों को, बहूर को बहरों को, सवालात कोसवालों को, मोबाइल्स को मोबाइलों को, चैनेल्स को चैनलों को
अलिफ़ वस्ल (जैसे हम अपना को हमपना पढ़ना) का हिंदी ग़ज़ल में